वर्ष 01 अंक 04 अक्तूबर से दिसम्बर -2023 ISSN– 2993 4648

Dedicated for Research

Shodh Utkarsh

शोध उत्कर्ष

Shodh Utkarsh

A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary QuarterlyE-Journal

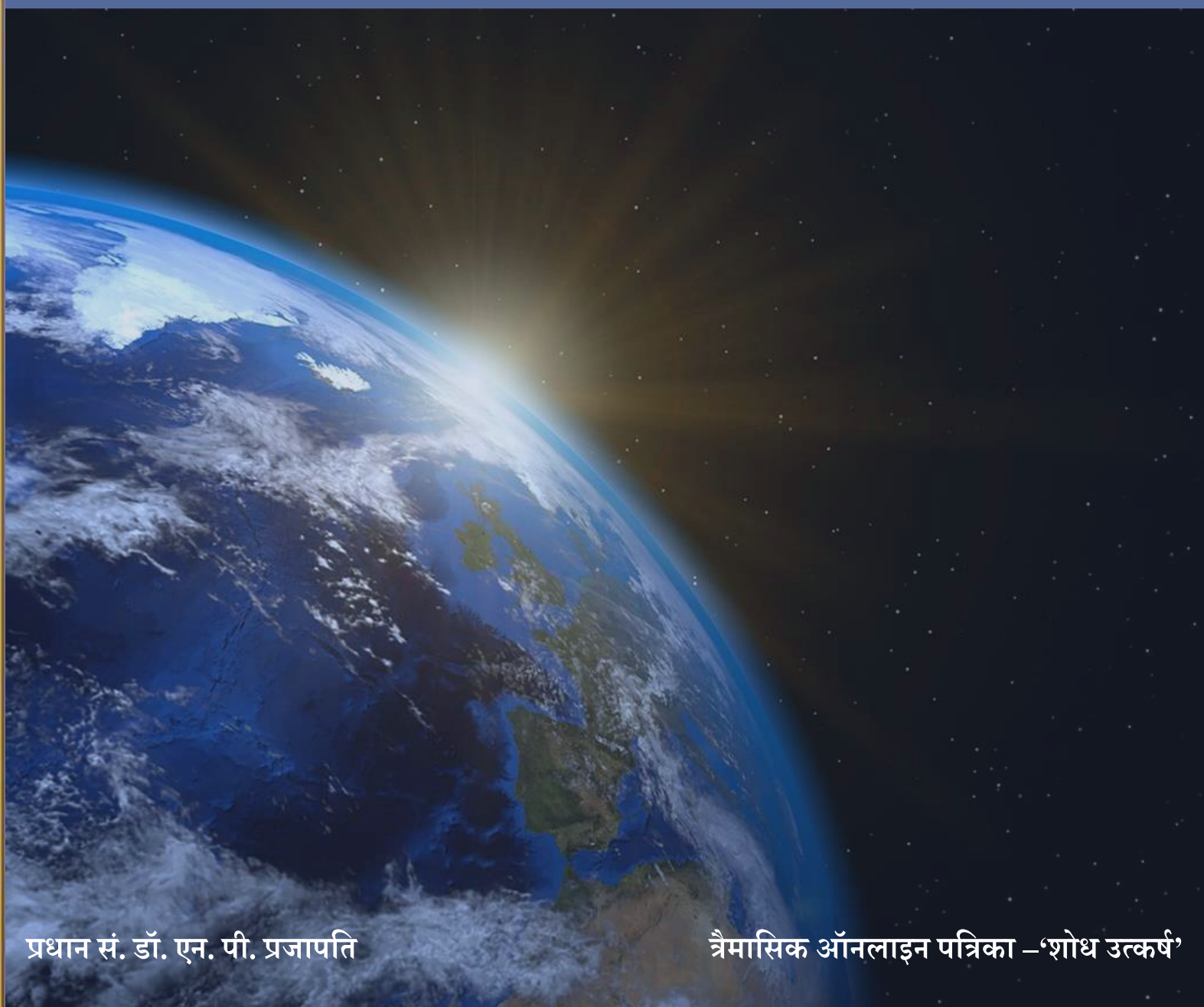

अक्तूबर से दिसम्बर -2023

प्रधान सं. डॉ. एन. पी. प्रजापति

त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका –'शोध उत्कर्ष'

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal
वर्ष-01 अंक -04 अक्तूबर- दिसम्बर - 2023

सलाहकार मण्डल (Peer Review Committee)

प्रो. दिनेश कुशवाह,रीवा (म.प्र.)
डॉ. कन्हैया त्रिपाठी पूर्व (OSD),महामहिम राष्ट्रपति 'भारत'
प्रो. एम.यू. सिद्दीकी, सिंगरौली (म.प्र.)
डॉ.अजय चौधरी,नागपुर
डॉ. रेणु सिन्हा,रांची- झारखंड
डॉ. निशा मुरलीधरन,वड़पलनी-चेन्नई
डॉ. एस. एल. प्रजापति,रीवा (म.प्र.)
डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय सीधी-(म.प्र.)
डॉ.गोविन्द बाथम ग्वालियर (म.प्र.)
प्रो. मोहन लाल आर्य,मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)
श्री पांडुरंग एस. जाधव बेंगलुरु, (कर्नाटक)
डॉ. अंजलि एस. एर्नाकुलम, (केरल)

संपादक मंडल

प्रधान संपादक -डॉ. एन. पी. प्रजापति
सह संपादक -डॉ. मंजुला चौहान
कार्यकारी संपादक -डॉ. संतोष कुमार सोनकर (English)
डॉ. अवधेश प्रताप सिंह (हिंदी)

लेख भेजने के लिए –Mail-ID-shodh utkasrsh@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें-
Website:–http://www.shodhutkarsh.com
दलित उत्कर्ष समिति द्वारा प्रकाशित

शोध उत्कर्ष
Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly Research E-Journal
वर्ष-01 अंक -04 अक्तूबर- दिसम्बर - 2023

Table of Content

S.N.	Title and Name of Author(s)	Page No.
	सम्पादकीय -	03
1.	भारत में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम - **डॉ.धनंजय शर्मा**	4-7
2.	सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में चित्रित प्रवासी -**जीवन - शमीम पी**	8-11
3.	ग्रामीण जनों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन - **डॉ. विनीत कुमार पाण्डेय**	11-14
4.	युग प्रवर्तक कवि हरिवंशराय बच्चन - **डॉ.पुष्पा गोविंदराव गायकवाड**	14-16
5.	महादेवी वर्मा की गद्य रचना एवं स्त्री - **प्रियंका सिंह**	16-18
6.	कोरकू जनजाति में लोक कथाओं का प्रकार्य : मानवशास्त्रीय विश्लेषण - **विवेक कुमार & महेंद्र कुमार जायसवाल**	19-21
7.	मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत - **डॉ.षीना.वी.के**	22
8.	शक्ति व शान्ति एक दूसरे के पूरक - **डॉ.अजय कुमार पाण्डेय**	23-24
9.	हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप- **कनक राज पाठक**	24-26
10.	दलित साहित्य का स्वरूप: प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ - **डॉ.वंदना शर्मा**	27-28
11.	संत कबीर और तुलसी के श्रीराम- **रमेश प्रसाद पटेल & डॉ. अमित शुक्ला**	28-32
12.	माड़ा की गुफाओं का अध्ययन - **डॉ. गोविन्द बाथम**	32-33
13.	Exploring Secondary School Students' Learning Styles and Their Impact on Achievement in Social Sciences - **Dr. Rajkumari Gola**	34-36
14.	Human Resource Management in the IT Industry: A Comprehensive Analysis in the National Capital Region - **Suchika Joshi & Dr. M. C. Sharma**	37-41
15.	The Crucial Role of Leadership Styles in Motivating Teaching Staff in Secondary Schools - **Dr.Mohan Lal 'Arya'**	41-44
16.	Social media's impact on modern literary works - **Dr. Gaurav Gaud**	44-46
17.	A Comprehensive Study on the Aspiration Levels of General and Special Students of Rampur District - **Umra Idrees & Dr. Rajkumari Gola**	47-50
18.	मध्य भारत की जनजातियों में आजीविका के पारंपरिक स्रोत - **रमेश लाल केवट**	50-58
19.	Water crisis in India – Contemporary Perspectives and Paradigms- **Saurabh Shubham & T.N. Mishra**	58-62
20.	आज का सार्वभौमिक प्रश्न: युद्ध या मानवाधिकार? - **प्रो. कन्हैया त्रिपाठी**	62-66
21.	बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में बौद्ध मूर्ति शिल्पांकन (छतरपुर,तेवर त्रिपुरी,के विशेष सन्दर्भ में)- **डॉ. प्रमेश दत्त शर्मा**	66-69
22.	विस्थापन के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी साहित्य - **डॉ.जयचंद्रन.आर**	70-72
23.	सूरीनाम की हिंदी कविता: सूरीनामी संस्कृति का धरोहर - **ब्लेस्सनराजू &डॉ.आर.जयचंद्रन**	72-74
24.	आंचलिकता के विविध आयाम-**राहुल झा**	73-77
25.	महिला लेखकों की कहानियों में अभिव्यक्त आर्थिक परिप्रेक्ष्य : दो हज़ार दस के बाद के संदर्भ में - **अंजना .एम &डॉ.आर.जयचंद्रन**	78-79
26.	अमिताभ घोष के चुनिंदे उपन्यासों में पारिस्थितिक चिंतन:एक अध्ययन - **अरुंधती मोहन & डॉ.आर.जयचंद्रन**	80-81
27.	Use of Multilingual Setting with Group Activities as a Teaching-learning Strategy in Teaching and learning of English (esl) in Rural School - **Paramjeet Kaur**	82-85
28.	प्राचीन बौद्ध स्मारकों का सांस्कृतिक महत्व - **दिव्या सिंह**	85-87
29.	नासिरा शर्मा की कहानियों में सांप्रदायिकता - **डॉ.शेख़ बेनज़ीर**	88-89
30.	पैरोल एक सुविधा (सतना केंद्रीय जेल के संदर्भ में) - **डॉ. पनम शर्मा**	89-90
31.	कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलांवर होणारा परिणाम : विशेष संदर्भ वाशिम व यवतमाळ जिल्हा-**कोमल दिलीपराव पतंगराव & डॉ. एस. एन. शिंदे**	91-93
32.	आधुनिकता के सम्बंध में डॉ. रामविलास की मान्यताएँ - **अश्विनी कुमार लाल**	94-96
33.	An Analytical Study on the Unsegmented Neckband Crimes in India with Particular Reference to Corporate Zones - **Abhishek Raizada & Dr. Waseem Ahmad Ansari**	97-100

सम्पादकीय .....

कालजयी कृतियों की आत्मशक्ति की पहचान आवश्यक

साहित्य में संवाद की पूरी संभावना होती है। शोध के लिए साहित्य का उद्दात्त होना आवश्यक नहीं है अपितु साहित्य में तथ्य-कंटेंट होना अधिक आवश्यक होता है। अब साहित्य में जो सृजित हो रहा है उसके भीतर कंटेंट सूचनात्मक ही बनते जा रहे हैं। इसका असर यह है कि प्राप्त साहित्य से शोध जो हो रहे हैं, उसमें गुणवत्तापूर्ण शोध परिणाम की आमद नहीं हो पा रही है। सूचनात्मक सामग्री से तो केवल कोटापूर्ति होती है।

हमारे यहां कालजयी कृतियों के प्रति आकर्षण इसलिए अभी बना हुआ है क्योंकि उस साहित्य के शब्दार्थ भिन्न-भिन्न कोटि में भी अपने अधुनातन अर्थविन्यास देने में सक्षम हैं। साहित्यकारों की बेचैनी से सृजित निवर्तमान साहित्य पर निरंतर इसीलिए शोध हो रहे हैं। भारत की कालजयी कृतियाँ भारत के कालजयी लेखकों के चिंतन और उनकी सुचिंतित मीमांसा की विवेचना करती हैं। शोध की दिशा में वे लेखक अब भी हमारे लिए पठनीय व विचारणीय इसीलिए बने हुए हैं।

ऐतिहासिक छानबीन करें तो पश्चिम के भी कालजयी लेखकों में भी लगभग वही तात्विक दृष्टि है, जो भारत में है। वस्तुतः रचनाकार या कृतियों का सार्वभौमिक होना उनके तात्विक सामग्री के कारण संभव हुआ है। यदि वे अपने भीतर के सार्वकालिक या सार्वजनीन विषय वस्तु को प्रकट करने में अक्षम होतीं, तो उनका कोई आज़ नामलेवा नहीं होता। लेकिन ऐसा कदाचित उन सर्जनाओं में नहीं रहा है इसलिए वे आज़ भी प्रासंगिक, विमर्श के केंद्र में और सार्वभौमिक बनी हुई हैं। उनके रचनाकार आज़ सबके बीच में इतने सहित्योत्पादन के बीच आदर वे पात्र बन हुए हैं।

आज़ हमारे बीच जो लिखा-पढ़ा जा रहा है उसके कालजयी होने की स्थिति नहीं दिखती। इसके पीछे के कारणों को रचनाधर्मीयों द्वारा समीक्षा की जानी चाहिए। आज़ के परिप्रेक्ष्य से उस दौर के परिप्रेक्ष्य को समझना चाहिए। आज़ कोई भी बड़ा लेखक यह दावा करने की स्थिति में नहीं है कि उसके द्वारा आज़ सृजित की जा रही साहित्य-सामग्री आने वाले समय में सबके मानस पटल पर विद्यमान होकर कालजयी बनेगी। सर्जना के इस पराभव को आज़ प्रश्नांकित किया जा रहा है, तो इसके पीछे कारण हैं। आज़ यह भी विचार किया जा रहा है कि हमारे बीच ठीक-ठीक लेखन के लिए श्रम भी नहीं हो रहे हैं। श्रम क्या अब असाध्य हो गया है और साहित्य में सर्जन इतनी कठिन, जो किसी कसौटी पर कसे जाने से बचना चाहती हैं?

यह हमारे चिंतन का दारिद्र्य है। यह हमारी सोच का पराभव है। आज़ शोध के लिए हमारे पास अच्छे साहित्य की आवश्यकता है जो हर काल खंड में अपनी ऊष्मा से संतुलित व जनोपयोगी परिणाम देने में सक्षम हों। निःसंदेह शोध उत्कर्ष मंच पर जो लेखक व सर्जक सम्मिलित हो रहे हैं उनके सामने भी समान चुनौतियाँ हैं। अच्छा यही होगा कि हम संवेद-स्वर में गुणवत्तापूर्ण सर्जना करने की प्रतिबद्धता दुहराएं। संभवतः साहित्य में जो खाई आज दिख रही है, वह पट जाए और हम कालजयी, सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सार्वजनीन और सुखकारी, समरस भविष्योन्मुखी व अमूलचूल परिवर्तनकारी समय में भी सकारात्मक साहित्य अपने लिए व आने वाली पीढ़ी के लिए दे सकें।

विश्वास व आशा पर आधारित इस मनुष्य सभ्यता के लिए सकारात्मक बात यह भी रही है कि हम आगत का स्वागत भी उम्मीद बांधकर करते हैं और अपना मनोबल टूटने नहीं देते। भविष्य में हमारे आज़ के रचनाकार शोध व साहित्य का उत्कर्ष हमें देंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। मुझे यह भी विश्वास है कि सभी साहित्य की साधना मनोयोग से करेंगे।

वर्ष 2023 में अनेक ऐसे साहित्यकार जो अब हमारे बीच नहीं रहे, उनके प्रति मेरी ओर से और शोध उत्कर्ष संपादकीय परिवार की ओर से श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ। नववर्ष 2024 की आप सभी को अशेष शुभकामनाएँ.

दिनांक - 31.12.2023

(कन्हैया त्रिपाठी)
महामहिम राष्ट्रपति जी के पूर्व विशेष कार्य अधिकारी
एवं सदस्य, 'शोध उत्कर्ष, सलाहकार मंडल

****

भारत में महिला सशक्तिकरण के विभिन्न आयाम

डॉ.धनंजय शर्मा
सहायक प्रध्यापक (समाजशास्त्र)
रानी धर्म कुवंर राजकीय महाविद्यालय, दल्लावाला-खानपुर
हरिद्वार, (उत्तराखण्ड) मो0न0-9451301712,Mail ID -dsbhu2008@gmail.com

शोध सार:- *विकास के लिए महिलाओं के सशक्तिकरण से अधिक प्रभावी तरीका कुछ नहीं है.....इस बयान से अधिक सटीक तरीके से महिलाओं की क्षमता का परिचय और कोई नही हो सकता। भूमिका चाहे पारंपरिक हो या आधुनिक, बहुत कुछ नही है, जो महिलाएं हासिल नही कर सकी है। मॉ के रूप में वे अनंत काल से ही दुनिया के भावी नागरिकों को जन्म देने और पालने-पोसने का काम खूबसूरती के साथ करती आई है। बहनो, बेटियों और पत्नियों के रूप में उन्होंने कई तरह से पुरूषो का साथ दिया है। अधिक आधुनिक भूमिकाओ में वे शिक्षक, प्रबंधक, राजनेता आदि रही हैं, पिछले कुछ समय में तो उन्होंने लैंगिक बाधाए भी लॉघी है और पर्वतारोही, पायलट बनने के साथ सशक्त सेनाओं में लडती हुई भी नजर आई है।*

भारत में महिलाओं को सम्पति का अधिकार, मताधिकार और विवाह तथा रोजगार के मामले मे समान नागरिक अधिकार के लिए शताब्दी तक संघर्ष करने के बाद ही प्राप्त हुआ है। भारत की आजादी के बाद संविधान निर्माताओं और राष्ट्रीय नेताओ ने महिलाओं को पुरूषों के समान स्थान दे दिया। एक के बाद एक सरकारों नें महिलाओं को आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में समान दर्जा देने के लिए कई उपाय किये गये। स्वामी विवेकानंद- ''जब तक महिलाओं कि स्थिति नहीं सुधरती तब तक विश्व के कल्याण की कोई संभावना नहीं पक्षी के लिए एक ही पंख से उड़ना संभव नहीं है। परिवार ही नहीं बल्कि राष्ट्र और विश्व को भी नेतृत्व प्रदान करने की महिलाओं की क्षमता कि सुन्दरता से व्याख्या करती है।

मुख्य शब्द:- सशक्तिकरण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, विधिक, महिला, सांस्कृतिक, शैक्षिक

प्रस्तावना:- भारत के इतिहास में प्राचीन काल से आधुनिक युग तक नजर डाले तो भारतीय समाज में स्त्रियों का योगदान पुरूषो के मुकाबला कम नही है, बदलते समय के साथ-साथ स्त्रियों ने भी पुरूषो के समान ही हर क्षेत्र में तरक्की की है, जिस पर कभी पुरूषों का वर्चस्व हुआ करता था, जैसे राजनीति सामाजिक एवं आर्थिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में स्थियों के अच्छी कार्य क्षमता एवं बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन को नकारा नही जा सकता, लेकिन आज भी हमारे समाज में स्त्रियॉ असुरक्षित महसूस करती है। उन्हें अत्याचार एवं शोषण का शिकार होना पड़ता है, वैसे तो सरकार ने महिला योग जैसे संस्थानो का निर्माण कर रखा है, पर सभी के लिए उसका लाभ उठा पाना संभव नही हो पाता। भारतीय समाज में पुरूष महिलाओं के प्रति अपनी सोच में बदलाव लायें ताकि किसी भी महिला को पुरूष प्रधान समाज एवं संस्थान में कार्य करने में असुविधा महसूस न हो। भारत मे वैदिक काल से ही स्त्रियों को पुरूषों से श्रेष्ठ माना गया है। स्त्री पालन करने वाली है, पालने योग्य है। उसके बिना खुशहाल जीवन और सृष्टि की रचना पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। रानी कर्मावती, अहिल्याबाई, गार्गी, मैत्रेयी, लक्ष्मीबाई, इंदिरा गॉधी जैसे कर्मठ, साहसी व विदुषी महिलाओं का वजूद किससे छिपा है। मीरा बाई का प्रेम व समर्पण, तत्कालीन सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ने का साहस, किरण बेदी का साहस व शौर्य और कल्पना चावला की वैज्ञानिकता और अंतरिक्ष की सीमा भेदने की क्षमता का गुणगान करते हुए, यह समाज थकता नहीं है।

महिला सशक्तिकरण:-

सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से जागरूकता, कार्यशीलता, बेहतर नियंत्रण के लिए प्रयास के द्वारा व्यक्ति अपने विषय में निर्णय लेने के समर्थ एवं स्वतंत्र होता है। इस दृष्टि से देखे तो नारी का सशक्तिकरण एक सर्वांगीण व बहुआयामी दृष्टिकोण है। यह राष्ट्र निर्माण की मुख्य धारा में महिलाओं की पर्याप्त व सक्रिय भागीदारी में विश्वास रखता है। एक राष्ट्र का सर्वांगीण व समरसता पूर्ण विकास तभी संभव है, जब महिलाओं को समाज में उनका यथोचित स्थान व पद दिया जाए। उन्हें पुरूषों के साथ-साथ विकास की सहभागी माना जाए। सशक्तिकरण के अंतर्गत महिलाएं अपने अधिक स्वालम्बन, राजनैतिक भागीदारी व सामाजिक विकास के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों पर पहुंच व नियंत्रण प्राप्त करती है, अपनी शक्तिओं व सम्भावनाओं, क्षमताओं व योग्यताओं तथा अधिकारों व जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता होती है।

'**सशक्तिकरण**' शब्द का विच्छेद है। स-शक्ति-करण जिसमें 'स' उपसर्ग है। शक्ति संज्ञा है, विशेषण तथा करण प्रत्यय से मिलकर शब्द बना है- सशक्तिकरण। इसका ध्वनि अर्थ है- शक्ति सहित गत्यात्मकता (गति)। सशक्तिकरण एक विकासात्मक प्रक्रिया है, निरन्तर चलने वाली, निर्बल के सबल बनने की प्रक्रिया एक पूर्ण सशक्त व्यक्ति वह है जो अपने जीवन

से संबधित विषयों पर घरेलू अथवा सामाजिक स्तर पर किसी प्रकार का दबाव न हो, इस प्रकार स्त्रियों के संदर्भ में सशक्तिकरण की अवधारणा अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

डॉ. दिग्विजय सिंह *के अनुसार, ''महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानों में स्त्रियों की साझेदारी से है, निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का अर्थ है।*

उनके द्वारा समाज की वर्तमान व्यवस्था और तौर-तरीकों को चुनौती में समान अवसर, राजनैतिक व आर्थिक नीति निधारण में भागीदारी, समान कार्य के लिए समान वेतन कानून के तहत सुरक्षा, प्रजनन का अधिकार आदि।''

डॉ0 अरूण कुमार सिंह *के अनुसार, ''महिला सशक्तिकरण का अर्थ है, महिला को शक्ति सम्पन्न बनाना ताकि वह सहजता से अपने जीवन-यापन की व्यवस्था कर सकें।''*

महात्मा गॉधी *के अनुसार, ''हमारा पहला प्रयास अधिक से अधिक महिलाओं को उनके वर्तमान स्थिति के प्रति जागरूक करना होना चाहिए।''*

सशक्तिकरण से अभिप्राय आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति को व्यक्ति और समुदाय में बढ़ाने से है। इसके फलस्वरूप क्षमतावान, सशक्त, विकासशील और आत्म विश्वास से युक्त महिला समूह निर्मित हो सकता है। महिलाओं और लड़कियों के लिए वैश्विक अभियान, संयुक्त राष्ट्र महिला शाखा (UNIFEM) को दुनिया भर में स्त्रियों की जरूरतों को पूरा करने में तेजी लाने के लिए स्थापित किया गया।

महिला सशक्तिकरण की पहल सर्वप्रथम नैरोबी में सन् 1985 में आरम्भ हुई। इसके बाद विश्व के अनेक भागो मे इस पहल ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया । वस्तुतः महिला सशक्तिकरण का सामान्य अर्थ है- महिला को शक्ति सम्पन्न बनाना, परन्तु पूर्ण रूप से इसका अभिप्राय सत्ता प्रतिष्ठानां एवं जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की सुनिश्चित समान भागीदारी से है। निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का एक बडा मानक कहा जा सकता है।

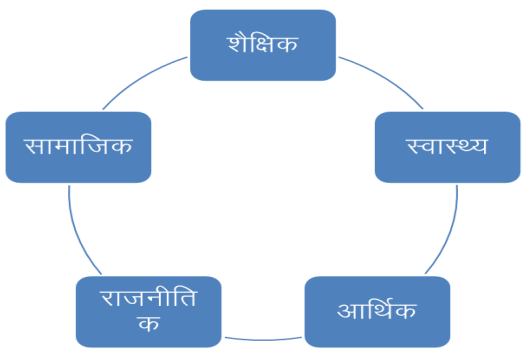

इसके फलस्वरूप महिलाओं को वैधानिक, राजनैतिक, शारीरिक मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों मे पुरूषों के बराबर निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है।

महिला सशक्तिकरण के आयाम:- महिला सशक्तिकरण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विभिन्न आयामो को समझना आवश्यक है। इस धारण के मूल में स्त्री-पुरूष को एक दूसरे के पूरक समझते हुए, समतामूलक व्यवस्था विकसित करने की भावन निहित है। इस प्रक्रिया के विभिन्न आयाम है। जैसे-

सामाजिक सशक्तिकरण:- समाजिक सशक्तिकरण के अन्तर्गत उत्पीड़ित महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्वास करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा जिला स्तर पर अल्पावास गृह की स्थापना की जा रही है। अनैतिक व्यापार रोकथाम अधिमियम, 1896 तथा हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005 के अनुसार महिलाओं एवं किशोरियों की खरीद-फरोख्त से बचाने तथा घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं को संरक्षण एवं सुरक्षा देना अल्पावास गृह का मुख्य उद्देश्य है। इसके अंतर्गत अभी हाल ही में बिहार सरकार ने विशेष रूप से कामकाजी महिलाएं जिन्हें अपने कार्य के दौरान 5 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चो को कार्य स्थल पर रखने में सुविधा होती है। जिनके परिवार में बच्चों की देख-रेख करने वाला उनके सिवाय कोई नही है, राज्य सरकार ने वैसे बच्चो के लिए राज्य में 100 पालनघर खोलने है। जिसमें स्वादिष्ट एवं पौष्टिक अल्पाहार, अन्य उपकरणो की व्यवस्था तथा खिलौने एवं खेलने के अन्य साधनो के साथ-साथ मनोरंजन का भी प्रावधान किया गया है।

यदि देखा जाय तो सामाजिक सशक्तिकरण प्रक्रिया की शुरूआत परिवार से होती है। क्योंकि विभिन्न परिवारों के योग से ही समुदाय तथा समाज का निर्माण होता है। यदि परिवारो में स्त्रियों के साथ समानता का व्यवहार हो तो वे स्वयमेव सामाजिक रूप से भी सशक्त हो जायेगी। इसके लिए परिवार में पुत्र-पुत्री भेदभाव, घरेलू प्रबंधन में पत्नी को सेविका मानने की बजाय सहयोगिनी मानना, उनके साथ अभद्र व्यवहार अथवा अपशब्दो के प्रयोग पर पूरी तरह रोक लगाने के साथ समान व्यवहार करना आदि शामिल है। इस प्रक्रिया में समाज के बड़े-बूढो का सहयोग तथा बाल्यावस्था से ही पुत्रों को अपनी बहन, माता तथा सड़क पर चलने वाली लड़कियों के साथ सम्यक व्यवहार करने करने की दीक्षा भी शामिल है, क्योंकि व्यक्ति बचपन में जो भी अपने परिवार में देखता, सुनता और समझता है, अधिकांशतः उसे ही युवा होने पर दोहराता है। साथ ही ऐसी परंपराएं जिसमें महिलाओं के निम्न अथवा हेय समझा जाता है। उसे बदलने में भी परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। जैसे एक बड़े घराने में बिटिया की शादी थी। उस शादी में लड़की की कुछ ही बर्ष पूर्व विधवा हुई बुआ जी आई थी, परन्तु अलग-थलग बैठी थी, जैसे ही संगीत का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ लड़की के माता-पिता बुआ जी को लेकर आए और कहने लगे जब तक जसोदा नही नाचेगी तब तक संगीत का कार्यक्रम कैसे हो सकता है, सभी ने बुआ जी

की तरफ देखा और अवाक हो गये। रंगीन धोती में बुआ जी को थामे कामता प्रसाद अपनी पत्नी के साथ खड़े थे। उसके बाद बुआ जी अपनी भतीजी की शादी में ऐसा नाची कि सभी दंग रह गये, बाद में कामता प्रसाद ने अपनी बहन का पुनर्विवाह भी कराया।महिलाओं में कानून का व्यवहारिक ज्ञान बढ़ाने के लिए सामाजिक जागरूकता अभियान चलाया जा रहा है। नुक्कड़ नाटको के जरिये सक्षम वातावरण के निर्माण के उद्देश्य से दहेज उत्पीड़न ट्रैफिकिंग, बाल-विवाह, भ्रूण हत्या, कानूनी साक्षरता, आर्थिक स्वालंबन के मुद्दे पर लोक कलाओं की प्रस्तुति करके महिलाओं को सामाजिक रूप से सशक्त किया जा रहा है।

आर्थिक सशक्तिकरण:-महिलाएं आज भी आर्थिक रूप से आत्मर्निभर और स्वतंत्र नही है कोई भी निर्णय चाहे वह स्वयं के भविष्य के निर्माण के लिए ही क्यूं न हो, नही ले सकती है। प्रत्येक निर्णय में परिवार और समाज का काफी दबाव होता है। महिलाएं आज भी समाज में हिंसा का शिकार होता है, और यह हिंसा जो कि बलात्कार, अपहरण, दहेज मृत्यू, यंत्रणा, यौन उत्पीड़न शामिल है, जो कि महिलाओं के प्रति हमारी विकृत मानसिकता को दर्शाता है। जब तक महिलाओं की शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, सामाजिक, राजनैतिक एवं लिंग समानता नही होगी तब तक हम किसी भी स्वास्थ्य, परिपक्व एवं प्रगतिशील समाज और देश की कल्पना भी नही पायेंगे। महिला सशक्तिकरण की दिशा में सरकारों, गैर सरकारी संस्थाओं एवं निजी संस्थाओं ने कई प्रयास भी किये है और कर भी रहे है।

महिला सशक्तिकरण में स्व-सहायता समूहो की भूमिका:-

स्व-सहायता समूह (SHG) आन्दोलन समूह एकजूटता और माइक्रोफाइनेंस के सिद्धांतो पर आधारित है। भारत में किसी न किसी रूप में 50 वर्षो से अस्तित्व में है। 1972 से जिसकी जड़े स्व-नियोजित महिला संध (सेवा) के गठन से जुड़ी है। स्व-सहायता समूहों की परिवर्तनकारी क्षमता ने कोविड-19 की जमीनी प्रतिकिया में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के माध्यम से उदाहरण के तौर पर महिला सशक्तिकरण के माध्यम से ग्रामीण विकास के आधार के रूप में कार्य किया है।भारत में लगभग 1.2 करोड़ स्वयं सहायता समूह (SHG) है। जिनके 88 प्रतिशत सम्पूर्ण महिला SHG है। इसमें सफलता की कहानियों में केरल में कुदुम्बश्री, बिहार में जीविका, महाराष्ट्र में महिला आर्थिक विकास महिला मंडल (MAVIM) और हाल ही में लूम्स ऑफ लद्दाख शामिल है।1992 में शुरू की गई स्वयं सहायता समूह-बैंक लिंकेज परियोजना (SHG-BLP) दुनिया की सबसे बड़ी माइक्रो फाइनेंस परियोजना बन गयी है। स्वयं सहायता समूह आन्दोलन जो अब अपने 30 वें वर्ष में है, छोटे और सीमांत वर्गो को शामिल करने के लिए एक शक्तिशाली मध्यस्थ के रूप में उभरा है। वर्तमान में बैंक से जुडें स्वयं सहायता समूहों को केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों गैर सरकारी संगठनो आदि के माध्यम से बढ़ावा दिया जाता है। बैंको से ऋण लेने के लिए इन्हें नियमित बैठको, नियमित बचतों नियमित अंतर ऋण, समयानुसार पुनर्भुगतान और लेखो की अद्यतित पुस्तको के 'पंचसूत्र' का अभ्यास करना होता है। 31 मार्च 2022 की स्थिति के अनुसार हितधारको के सक्रिय सहयोग से SHG-BLP में रूपये 47240.5 करोड़ की बचत राशि वाले 119 लाख SHG के माध्यम से 14.2 करोड़ परिवार शामिल है। 31 मार्च 2022 तक रूपये 151051.30 करोड़ के बकाया संपार्श्विक-मुक्त ऋण वाले 67 लाख समूह शामिल है। पिछले दस वर्षो (विगत वर्ष 2022) के दौरान SHG क्रेडिट लिंक्ड की संख्या 10.8 प्रतिशत सीएजीआर (CAGR) से बढ़ी है। जबकि इसी अवधि के दौरान प्रति एसएचजी क्रेडिट संवितरण 5.7 प्रतिशत सीएजीआर से बढ़ी है, विशेष रूप से, स्वयं सहायता समूहो का बैंक पुनर्भुगतान 96 प्रतिशत से अधिक है, जो उनके ऋण अनुशासन और विश्वसनीयता को रेखांकित करता है।

स्वयं सहायता समूह का प्रभाव: सशक्त महिला, सशक्त गॉव:-महिलाओं के आर्थिक स्वः सहायता समूह से महिलाओं के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण पर सकरात्मक, सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, साथ ही विभिन्न तरीको से प्राप्त सशक्तिकरण पर सकरात्मक प्रभाव पड़ता है। जैसे पैसे की संभालने, वित्तिय निर्णय लेने, बेहतर सामाजिक नेटवर्क, सम्पत्ति का स्वामित्व और आजीविका विविधीकरण के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

स्वयं सहायता समूहों के कार्य करने के कारण महिलाओं के आत्म विश्वास, स्वभिमान, आत्म-गौरव इत्यादि में वृद्धि होती है, क्योंकि घरेलू परिधि के बाहर एक समूह के रूप में छोटी-छोटी बचत इकट्ठी कर, ऋण लेकर लघु उद्यम स्थापित कर समूह की बैठको की कार्यवाही संचालित कर महिलाएं आम्मनिर्भर हुई है। स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में महिलाएं आर्थिक रूप से निर्भर बनती है।

राजनैतिक सशक्तिकरण:- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का अभूतपूर्व योगदान रहा है। देश के राजनैतिक परिदृश्य में महिलाओं की बराबर और प्रभावी भूमिका सुनिश्चित करने की दृष्टि से विभिन्न स्तरो पर महिला आरक्षण का प्रावधान रखा गया, स्थानीय और राष्ट्रीय निकायों के चुनाव में भी महिलाओं के आरक्षण की व्यवस्था है। पंचायचो में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण के फलस्वरूप गॉव की सत्ता में महिलाओं को भागीदारी का अवसर मिला है। इस प्रकार ये सत्ता भागीदारी के फलस्वरूप महिला समूह एक ऐसे संगठन के रूप में उभर कर आएं, जिनमें महिलाएं गॉव के विकास के बारे में सोचने लगी। ऐसे कई उदाहरण सामने आए है। जब महिला प्रतिनिधियों ने ग्रामीण समस्याओं पर प्रशासन का ध्यान आकर्षित किया और उन्हे हल करने की पहल की हालांकि अभी भी संसद और विधान सभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना शेष है। राजनीति में सक्रिय

महिलाओं में पूर्व राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवी पाटिल, पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी, कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गॉधी, पूर्व मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश सुश्री मयावती, पश्चिम बंगाल का मुख्यमंत्री सुश्री ममता बनर्जी, तमीलनाडू की मुख्यमंत्री सुश्री जयलतिता, दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित, सदन में विपक्ष की नेता श्रीमती सुषमा स्वराज आदि महिला नेत्रियो नें भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिसे हम राजनैतिक सशक्तिकरण के रूप में देख सकते है।

शैक्षिक सशक्तिकारण:-भारत के विकास में महिला शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पिछले कुछ दशको से ज्यो-ज्यो महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है, भारत के विकास के पक्ष पर अग्रसर हुआ है।महिलाओं के शिक्षित होने से न केवल बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिला, बल्कि बच्चों के स्वास्थ्य और सर्वांगिण विकास में भी तेजी आयी है। क्योंकि बच्चे की प्रथम गुरू माता ये ही होती है। यदि माता सुशिक्षित होगी तो भावी पीढ़ी भी शिक्षित होने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

सांस्कृतिक सशक्तिकरण:- महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत महिलाओं के सांस्कृतिक सशक्तिकरण के लिए मुख्य रूप से मेला का आयोजन किया जाता है। जिसका उद्देश्य परम्परागत कौशल तथा लोक चित्रकला, लोक नाट्यकला, लोकगीत आदि को जीवित रखना है। स्वयं सहायता समूह के द्वारा उत्पादित बस्तुओं का प्रदर्शन करना भी मेला का एक अहम उद्देश्य होता है। विलुप्त होती सांस्कृतिक परम्पराओं और इन कलाओं से जुड़े समुदायों के बीच कला की व्यावसायिक गुणवत्ता को बढ़ाकर तथा आजीविका के साथ जोड़कर राष्ट्रीय पहचान स्थापित करना इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।

विधिक सशक्तिकरण:- भारतीय संविधान पुरूष और महिला को बराबरी का दर्जा देती है। संविधान की दृष्टि में दोनो समान है। स्वतंत्रता के बाद भारत में महिलाओं की दशा सुधारने के लिए अनेक प्रयास हुए है। इन प्रयासों को दो श्रेणियों में बॉटा जा सकता है पहली श्रेणी मे वे प्रयास रखे जा सकते है। जिन्होंने महिलाओं को शोषण और उत्पीड़न से मुक्त करने के लिए अनेक विधिक प्रावधान और कानून बनाये है। घरेलू हिंसा का कानून ऐसा ही एक महत्वपूर्ण कानून है। दूसरी श्रेणी में प्रयास आते है, जिनमें नारी क्षमता की संवर्धन के लिए प्रोत्साहन की योजनायें बनाई गयी। अपनी उन्नति और विकास के लिए महिला को उप समस्त विधिक आयामों का ज्ञान होना चाहिए जो उसे शोषण से मुक्ति दिलाने और अवसरो का लाभ उठाने के योग्य बनाते है।संविधान में 93वें एवं 94वें संशोधन के द्वारा ग्राम पंचायतो में एक तिहाई सीटे महिलाओं के लिए आरक्षित की गई है। किन्तु कुछ राज्यों में महिलाओं की हिस्सेदारी 50 प्रतिशत या इससे अधिक भी है। उदाहरण के लिए- बिहार में पंचायत में महिलाओं की भागीदारी लगभग 54 प्रतिशत है।महिलाओं को निर्णय लेने , का प्रभावी अधिकार और आर्थिक सामाजिक तथा नागरिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी है।महिलाओं को सही अर्थो मे सशक्त और समर्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है। कि सबसे पहले उन्हें घरेलू मामले मे निर्णय का अधिकार मिले तथा परिवार या कार्य स्थल पर भी उन्हें पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त हो।

निष्कर्ष:-भारत की स्वतंत्रता के बाद संविधान द्वारा अपनायी गयी लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अंतर्गत सभी व्यक्तियों को समान अधिकार समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और विधिक न्याय व अवसर की समानता बिना किसी भेदभाव के प्रदान की गयी। किन्तु सामाजिक व्यवस्था में अपेक्षित परिवर्तन देखने को नहीं मिलता, लेकिन भारत सरकार ने समय के साथ-साथ अनेक कानूनों का निर्माण महिलाओं के अधिकारो की रक्षा के लिए किया परन्तु कानूनों का सही प्रवर्तन न होने के कारण आज भी दयनीय स्थिति बनी हुई है। महिला संगठनों को एकजुट होकर सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन चलाने की जरूरत है। महिला सशक्तिकरण सिर्फ कागज पर न हो बल्कि इसमे पूरे समाज की भागीदारी होनी चाहिए माताओं को भी अपनी बेटियों को महत्व देकर उनमें एक ऐसी परिपक्व सोच एवं समझ विकसित कर नई पीढ़ी के रूप में तैयार करना होगा जो अपने साथ-साथ समाज को नई दिशा दे सके। क्योंकि आज की महिला जीवन के हर क्षेत्र में कदम बढ़ा रही है। आज की नारी अपने कर्त्तव्य को गृह कार्यो की इतिश्री ही नही समझती है। अपितु अपने सामाजिक दायित्वो के प्रति भी सजग है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.सिंह, डॉ0वी0एन0 (2010), ''आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण'' रावत पब्लिकेशन, अन्सारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, पृ0सं0-210
2.स्वामी विवेकानन्द, (2003), ''भारतीय नारी'' ब्रह्मस्थानन्द, नागपुर, पृ0सं0-41
3.पाण्डे, डॉ0 सरोजनी, (2003), ''भारतीय धर्म, समाज और नारी'', ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर, पृ0सं0-10
4.दुबे, श्यामाचरण, (1996), ''समय और संस्कृति'' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0200
5.श्रीवास्तव, परमानन्द, (2008), ''आजाद और कितनी आजाद'' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-17
6.सेतिया, सुभाष, (2009), ''स्त्री अस्मिता के प्रश्न'' कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ0सं0-10
7.माहेश्वरी, सरला, (2001), ''नारी प्रश्न'' राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-97
8.चक्रवर्ती, उमा, (2001), ''नारीवादी राजनीति'' (सं0 साधना आर्य, आदि) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ0सं0-11
9.करात, वृंदा, (2008), ''जीना है तो लड़ना होगा'' सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0-9
10.आर्थिक समिक्षा (2022-23), ''सामाजिक अवसंरचना और रोजगार: व्यापक व्यवस्था'' भारत सरकार, वित्त मंत्रालय आर्थिक कार्य विभाग, नार्थ ब्लाक, नई दिल्ली, पृष्ठ-164-170
11.जैन, देवकी, (2016), ''महिलाओं की भूमिका: सामाजिक ढ़ांचे की आवश्यकता'' योजना, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, सितम्बर, 2016 पृ0सं0-20-24
12.सिंह, वी0एन0 एण्ड सिंह, जनमेजय, (2018), ''नारीवाद'' रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0सं0-107
13.-------- (2018), ''नारीवाद'' रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0सं0-220
14.--------(2018), ''नारीवाद'' रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृ0सं0-256

- 695304 . 7356108164

40

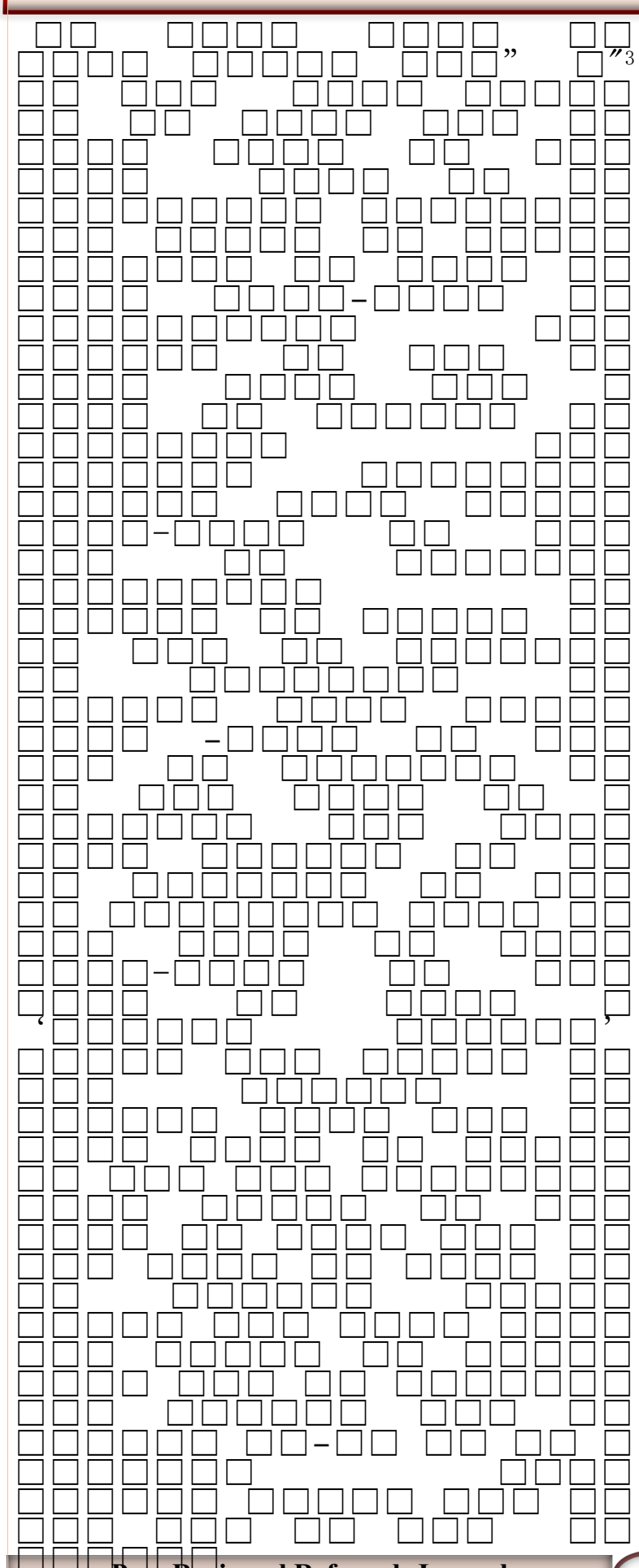

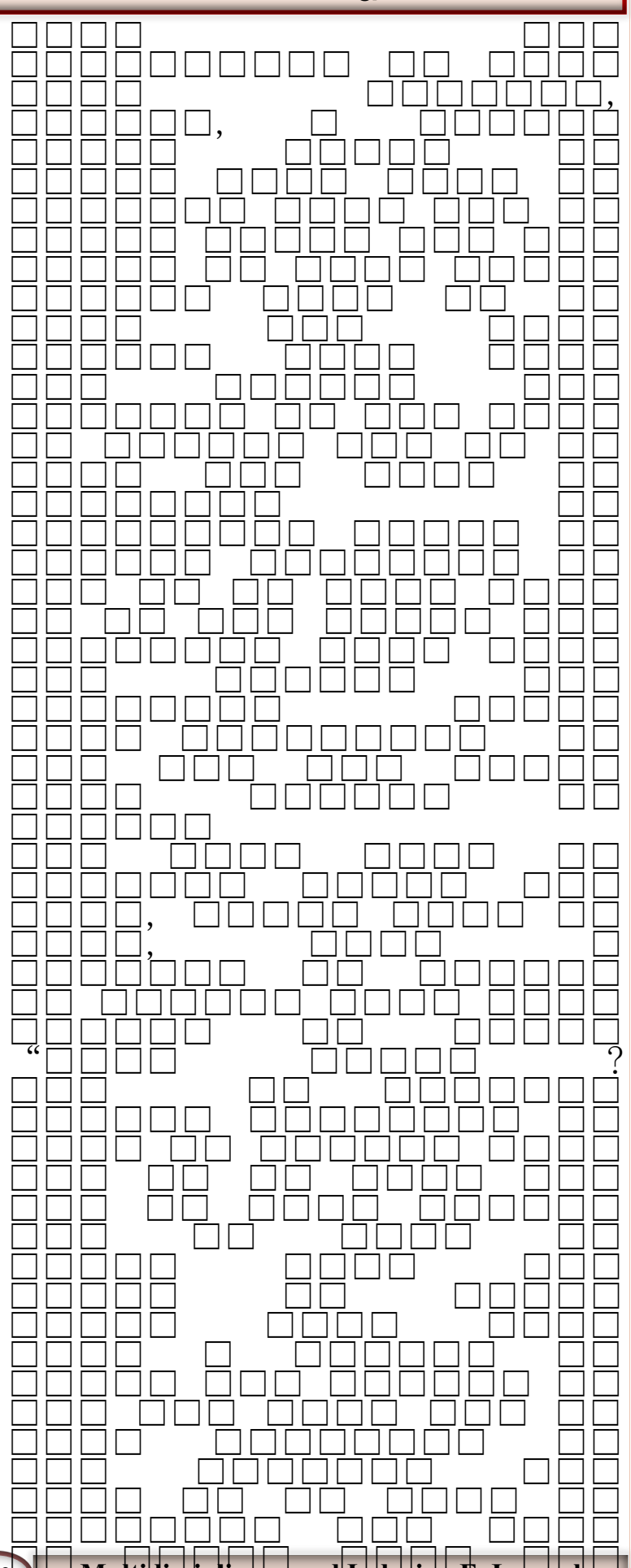

ग्रामीण जनों में स्वच्छता के प्रति जागरूकता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. विनीत कुमार पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर
समाजशास्त्र विभाग, बी.आर.डी.बी.डी.पी.जी. कालेज
आश्रम बरहज देवरिया (उ.प्र.)

प्रस्तावना-भारत को गॉवो का देश कहा जाता है तथा गॉव का प्रत्यक्ष सम्बधं प्रकृति से होता है। प्रकृति द्वारा मानव जीवन के लिए वायु, जल, वातावरण, पर्यावरण नदियॉ, पहाड़ आदि स्वतः प्राप्त हुए। लेकिन जैसे-जैसे शहरीकरण, नगरीकरण, औद्योगीकरण की प्रक्रियाऐ प्रारम्भ हुई पर्यावरण प्रदूषित होने लगा। निश्चित ही हम विकास की गति को आगे बढ़ाते चले जा रहे है लेकिन बढ़ता प्रदूषण, गंदगी हमारे शरीर एवं मन दोनो को प्रभावित करते जा रहे है। कहा जाता है कि श्स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता हैश् और यह हमें स्वच्छता से ही प्राप्त होगा ओ.डी. एफ. (खुले में शौच) से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते जा रहे है। जिस पर सरकार द्वारा ओ.डी. एफ. (खुले में शौच पर प्रतिबन्ध) द्वारा नियत्रित करना चाहती है

सार संक्षेप-स्वच्छता, ओ.डी.एफ., पर्यावरण प्रदूषण, औद्योगीकरण।

भारतीय संस्कृति में स्वच्छता का एक विशेष स्थान दिया गया है। देवी-देवताओं की पूजा करने के पहले वहॉ साफ-सफाई की जाती है। उसमें व्यक्तिगत स्वच्छता भी पाई जाती है। स्वच्छता के लिए राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी ने भी कहा था कि श्मुझे स्वच्छता एवं स्वतंत्रता में से चुनना होगा तो ही स्वतंत्रता के पहले स्वच्छता का चयन करूगा पर्यावरणीय स्वच्छता एवं वैयाक्तिगत स्वच्छता उनकी प्राथमिकता थी। डॉ.बी.आर. अम्बेडकर, बाबा राघव दास संत गाडगे जैसे महापुरूष ने भी स्वच्छता के लिए आंदोलन चलाया था।

स्वतंत्रता बाद **1986** में केन्द्रिय ग्रामीण स्वच्छता योजना चलायी गयी बाद मे **1999** में देश में सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान चलाया गया। जिसके अन्तर्गत**1990** से **2008** के बीच के तथ्यों द्वारा यह संकेत मिला कि स्वच्छता से सम्बन्धित मुद्दो पर असफलता ही प्राप्त हुआ नागरिको के खराब स्वास्थ्य को देश की समृद्धि से देखा जा सकता है। इसी कारण देश के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने **2** अक्टूबर **2014** को स्वच्छ भारत मिशन की शुरूआत की। जिसका लक्ष्य महात्मा गॉधी के **150** की जयंती **2** अक्टूबर **2019** तक भारत को खुले मे शौच से मुक्त कराना रहा। **5** सितम्बर **2016** तक ऐसे **17** जिलों तथा **80000** गॉवों में खुले मे शौच की बुराई से मुक्त हो चुके थे। भारत मे ओ.डी.एफ. अर्थात खुले मे शौच की समस्या स्वच्छता के लिए एक चुनौती है शौचालयों का अपर्याप्त उपयोग सीधे तौर पर भारत में बिमारियों तथा मृत्यु की उच्च दर को बढ़ावा देता है। प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण जनो मे स्वच्छता के प्रति जागरूकता पर आधारित है। जिससे यह

जानने का प्रयास किया गया है। कि ग्रामीण लोग स्वच्छता को किस नजरिये से देखते है इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य है।

उद्देश्य-

1.ग्रामीण जनो से व्यक्तिगत स्वच्छता के बारे मे जानकारी प्राप्त करना।
2.ग्रामीण जनों की शैक्षणिक स्थिति का पता लगाना।
3.ग्रामीण लोगो में कचरा प्रबंधन के प्रति झुकाव का पता लगाना।
4.स्वच्छ भारत अभियान के प्रति ग्रामीण जनो में जागरूकता की जानकारी प्राप्त करना।
5.खुले मे शौच के बारे मे ग्रामीण जनो से जानकारी प्राप्त करना।

शोध उपकल्पना- सामाजिक अनुसंधान में बिना उपकल्पना के शोध कार्य को आगे नही बढ़ाया जा सकता अतः इस अध्ययन की निम्नलिखित उपकल्पनाए मानी गयी है।

1.शिक्षा का बढ़ता स्तर स्वच्छता के प्रति जागरूकता को बढ़ाता है।
2.स्वच्छता का ऊँचा स्तर व्यक्तिगत रोगो को कम करता है।

निदर्शन एवं अध्ययन पद्धतिः-निदर्शन क्षेत्र का चुनाव दैव निदर्शन की लाटरी पद्धति के द्वारा क्रिया गया। देवरिया जनपद के बरहज विकास खण्ड के पचौहॉ गॉव को चयनित किया गया। **2011** की जनगणना के अनुसार यहॉ की कुल जन सं. **1688** रही है तथा मकानो की संख्या सं0 **269** है। जिसमें दलित बस्ती का चयन उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए किया गया। जहॉ घरो की सं0 **92** एवं जनसंख्या **350** है जो वार्ड नं.- **1** के अन्तर्गत प्रत्येक घर से **1** उत्तरदाता का चयन करते हुए **80** उत्तरदाताओं से तथ्यों का संकलन किया गया।

इस अध्ययन में वर्णनात्मक शोध प्ररचना का प्रयोग किया है तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनो ही श्रोतों से क्रिया गया है। और तथ्यों का संकलन साक्षात्कार-अनुसूची के माध्यम से किया गया। सभी उत्तरदाता ग्रामीण क्षेत्र मे निवास करते है।

परिणाम एवं व्याख्याः-

सारणी संख्या-**01**

उत्तर दाताओं में शैक्षणिक स्तर

भौक्षणिक स्तर	संख्या	प्रति"ात
परास्नातक	02	2.50
स्नातक	10	12.50
इण्टरमीडिएट	14	17.50
हाईस्कूल	25	31.25
जू0 हाईस्कूल	12	15.00
प्राइमरी	12	15.00
अ"ाक्षित	05	06.25
योग	80	100.00

परोक्त सारणी के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि निदर्शन क्षेत्र के उत्तरदाताओं में सर्वाधिक **31.25** प्रतिशत हाईस्कूल तक **17.50** प्रतिशत इण्टरमीडिएट प्राइमरी एवं जू. हाई स्कूल तक **15.00** प्रतिशत **12.50** प्रतिशत स्नातक **2.50** प्रतिशत परास्नातक स्तर के है। वही **06.25** प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित भी पाये गये । अतः शिक्षा के स्तर मे सुधार हो रहा हैऔर शिक्षा के प्रति जागरूकता भी बढ़ी है।

सारणी सं**0-02**

घर में शौचालय की स्थिति

भौचालय	संख्या	प्रति"ात
हॉ	76	95
नही	04	05
योग	80	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उत्तरदाताओ में **95.00** प्रतिशत के पास शौचालय पाया गया। मात्र **5** प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे थे जिनके पास शौचालय नही पाया गया। जिन्होने आर्थिक स्थिति ठीक न होना बतलाया।

सारणी सं.**-03**

शौचालय के प्रयोग सम्बंधी विवरण

भौचालय का	संख्या	प्रति"ात
हॉ	64	80
नही	16	20
योग	80	100.00

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि **80** प्रतिशत उत्तरदाता शौचालय का प्रयोग करते है जो स्वच्छता एवं विमारियों की जानकारी रखते है। वही **20** प्रतिशत उत्तरदाता शौचालय का प्रयोग नही करते क्योकि सुबह उन्हे टहलने एवं लोगो के बात-चीत करना अच्छा लगता है।

सारणी सं.**-04**

ओ0डी0एफ	संख्या	प्रति"ात
हॉ	26	32.50
नही	54	67.50
योग	80	100.00

ओ.डी.एफ. के प्रति जानकारी का विवरण

ओ**0**डी**0** एफ (व्चमद क्ममिबंजपवद थ्तमम) खुले मे शौच मुक्त जो भारत सरकार द्वारा स्वच्छता एवं सफाई को बनाये रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है के प्रति जानकारी में **67.50** प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नही में उत्तर दिया जबकि **32.50** प्रतिशत उत्तरदाताओं ने हॉ में उत्तर दिया। जिनको यह पता है कि इससे उल्टी दस्त, हैजा, डायरिया सहित **80** प्रकार की बिमारी या रोग होता है अभी इस अभियान को जन-जन तक पहुचाने की जरूरत है।

सारणी सं.**-05**

कचरा प्रबंधन सम्बधित जानकारी का विवरण

कचरा प्रबंधन का	संख्या	प्रति"ात
हॉ	48	60.50
नही	32	40.50
योग	80	100.00

कचरा प्रबंधन स्वच्छता के लिए आवश्यक कार्य होता है जिसमें कचरों को एक जगह एकत्र करके उसका निपटारा किया जाता है जिससे जन स्वास्थ्य में सुधार आता है। इस प्रक्रिया में अवशेषो को कम करना, पुनः उपयोग करना, रिसायकल करना, पुर्न प्राप्त करना होता है। निदर्शन क्षेत्र में तथ्य संकलन करने पर यह पता चला कि **60** प्रतिशत उत्तरदाता कचरा प्रबंधन से परिचित है जबकि **40** प्रतिशत उत्तरदाता इसे नही जानते है अतः लोगों को कार्यक्रमों के मध्यम से जागरूक करना आवश्यक है। लोग कचरों को सड़क तथा खेतों मे फेक देते है।

सारणी सं.**-06**

नाबदान सम्बन्धी जानकारी का विवरण

नाबदान सम्बन्धी	संख्या	प्रति"ात
खेतो में	12	15.00
सार्वजनिक नाली	53	66.25
गढ्ढे मे	15	18.75
योग	80	100.00

नाबदान का पानी बहना

नाबदान घर की गंदगी को बाहर ले जाने का एक रास्ता है। तथ्य संकलन के दौरान सर्वाधिक **66.25** प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सार्वजनिक नाली के प्रयोग के बात की लेकिन **15** प्रतिशत ने खेत मे तथा **18.75** उत्तरदाताओं ने गढ्ढे में एकत्र करने की बात कही। इससे स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक नाली होते हुए इसका पूरा प्रयोग नही हो रहा है। इसका मुख्य कारण नाबदान की सफाई की न होना है। नाबदान मे पानी एकत्र होने से मलेरिया, डेगू एवं बदबू का सामना करना पड़ता है। सार्वजनिक नाली की सफाई भी समय-समय पर होना चाहिए।

प्लास्टिक सम्बन्धी जानकारी	संख्या	प्रति"ात
हॉ	08	10.00
नही	72	90.00
योग	80	100.00

सारणी सं.**-07**

प्लास्टिक संम्बन्धी प्रयोग की तालिका (सिंगल यूज प्लास्टिक)

प्लास्टिक की बोतले, कण्टेनर, किराना बैग आदि ये पर्यावरण को दूषित बनाती है। भारत में सलाना **35** लाख मिट्रीक टन प्लास्टिक का कचरा पैदा होता है।इस संदर्भ में उत्तरदाताओं से जानकारी ली गयी तो **90** प्रतिशत उत्तरदाताओं को सिंगल यूज प्लास्टिक के बारे मे जानकारी नही थी मात्र **10** प्रतिशत लोगो ने हॉ मे जबाब दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि जानकारी के अभाव मे लोग प्लास्टिक का दुरूपयोग कर रहे है। जो समाज के लिए हानिकारक है।

सारणी सं.**-08**

सरकार द्वारा चलायी जा रही स्वच्छता सम्बन्धी योजना की जानकारी

जानकारी	संख्या	प्रति"ात
हॉ	68	85.00
नही	12	15.00
योग	80	100.00

सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के संदर्भ में ग्रामीण जनों से तथ्य संकलन किया गया है तो सर्वाधिक **85** प्रतिशत उत्तरदाताओं ने हॉ में जबाब दिया जिनको समाचार पत्रों, टेलीविजन, मोबाईल फोन तथा लोगो से बात-चीत से पता चला। लेकिन **15** प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नही में जबाव दिया।

निष्कर्ष- ग्रामीण जनो मे स्वच्छता के प्रति जागरूकता सम्बन्धी अध्ययन से सम्बन्धित उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर **निष्कर्षत:**

यह कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओ में सर्वाधिक हाईस्कूल तक अध्ययन करके अपने व्यवसाय में लग गये। **95** प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास शौचालय है लेकिन जाते नही बाहर जाते है। खुले मे शौच मुक्त जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है **67.50** प्रतिशत उत्तरदाताओं को इसकी या इससे होने वाले लाभ एवं हानि के बारे मे जानकारी ही नही है। वही कचरा प्रबंधन जो पर्यावरण को नुकसान होने से बचाता है **60** प्रतिशत उत्तरदाताओं को जानकारी है, लेकिन करते नही है लगभग सभी उत्तरदाताओं के घर में नाबदान है लेकिन व्यवस्थाऐ अलग-अलग है। **66** प्रतिशत उत्तरदाता सार्वजनिक नाली का प्रयोग करते है। सिंगल यूज प्लास्टिक की जानकारी लगभग **90** प्रतिशत उत्रदाताओं को नही है। इसी प्रकार सरकार द्वारा चलाई जा रही स्वच्छता सम्बधी जानकारी भी **85** प्रतिशत उत्तरदाताओं को ही है।

सुझाव-

भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे स्वच्छता सम्बन्धी अभियान को एक आन्दोलन का रूप देना होगा। आज गॉव में शिक्षा का स्तर तो बढ़ता जा रहा है लोगो को जानकारी भी है लेकिन क्रियान्वयन का अभाव है। ग्रामीण जनो में पर्यावरण प्रदषण के प्रति जागरूकता लाना होगा। स्वच्छता को अपनी आदतो मे शमार करना होगा। दैनिक सफाई, साप्ताहिक सफाई,

मासिक सफाई, वार्षिक सफाई एवं आकस्मिक सफाई को अपनाना होगा। स्वच्छता की शुरूआत स्वयं से करना होगा जब हमारा समाज बिमारी एवं गंदगी से दूर रहेगा तभी प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा।

****

संन्दर्भ सूची:-

1.नागला, बी**0**के**0** **(2023)** श्स्वच्छता का समाजशास्त्रश् रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृ**0 1-15**
2.कुमार गौरव **(2015)** श्सामाजिक मानसिकता में बदलाव से ही संभव है स्वच्छ भारतश् योजना **2015** पृ**0-61**
3.पिल्लई के**0** विजयन एवं पारेख रूपल **2015**श्भारत में स्वच्छता एवं सामाजिक परिवर्तनश् योजना पृ**0-9-15**
4.सिंह आशुतोष कुमार **(2015)** श्स्वच्छ भारत से ही साकार होगा स्वस्थ भारतश् योजना अंक **1** पृ**0-37**
5.गिरी, राजीव रंजन **(2016)** श्ग्रामीण स्वच्छता एवं गॉधी जीश् कुरूक्षेत्र, अक्टूबर अंक-**12** पृ**0 41-44**
6.तोमर, नरेन्द्र सिंह **(2016)** श्स्वच्छ भारत मिशनः व्यवहार परिवर्तन से समाजिक परिवर्तन तकश् कुरूक्षेत्र अंक-**12** पृ**0-67**
7. दास डी**0** के**0** लाल **(2023)** श्समाजिक शोध सिद्धांत एवं व्यवहारश् रावत पब्लिकेशन, जयपुर पृ**0 23-40**
8.www.deoria.nic.in

युग प्रवर्तक कवि हरिवंशराय बच्चन

डॉ.पुष्पा गोविंदराव गायकवाड
वै. धुंडा महाराज देगलूरकर
महाविद्यालय, देगलूर

तू न थकेगा कभी
तू न रूकेगा कभी
कर शपथ - कर शपथ
अग्निपथ अग्निपथ अग्निपथ

हालावाद के प्रवर्तक हरिवंशराय बच्चन का जन्म उ.प्र.के इलाहाबाद शहर के मोहल्ला चाक में कायस्त परिवार में 27 नवम्बर 1907 मे हुआ। और मृत्यू 18 जनवरी 2003 को मुंबई में हुई। हिन्दी साहित्य को हालावादी विचार धारा से अमर बनाने का श्रेय कविवर बच्चन को ही, दिया जाता है। अपनी सरल और सरस कविता के द्वारा जन-मन को मुग्ध कर एक युग प्रवर्तक कवि होने का परिचय दिया है।मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा निमंत्रण, एकात संगीत, मिलन, यामिनी, प्रणय पत्रिका, बंगाल का अकाल, आरती और अंगारे, बुध्द और नाचघर, दो चट्टाने आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ है।इनकी कविता में तीन मोड दिखाई देते है। मधुशाला और मधुकलश में हालावादी दृष्टि दिखाई देती है। हाला प्याला और मदिरालय के माध्यम से कवि जीवन की क्षण भुगंरता की सुंदर व्याख्या की है। पहली पत्नी श्याम की मृत्यू के बाद अवसाद के क्षणो में उन्होंने निशा - निमंत्रण, एकांत संगीत और आकुल अंतर की रचना की जिसे उनके काव्य जीवन का दूसरा मोड कहा जाता है। सतरंगिनी मिलन - यामिनी और प्रणय पत्रिका, तीसरे मोड को सूचित करती है।

कवि बच्चन जी ने हाला, प्याला सुराही, मदिरालय आदि द्वारा उन्होंने मनुष्य गतिशीलता, संघर्ष शीलता क्षण भंगुरता सहज प्रतिकात्मकता, उल्लास जवानी की मस्ती तथा पराजय की भावना से मुक्ति का संदेश दिया है। साथ ही उनकी कविताएँ जीवन के प्रति विश्वास कर्तव्यता समाज की अभाव ग्रस्तता वैयक्तिक आदि को भी प्रस्तुत करती है। बच्चन जी की कविताएँ व्यक्ति को जातीयता वर्णवाद एंव साम्प्रदायिक आदि से ऊपर उठकर जीने की नयी प्रेरणा देती है। मधुशाला यह उनकी ऐसी कविता है। जहा परसब लोग आपसी बैर भुलाकर एक साथ घुल मिलकर रहने का संदेश देती है। इनकी मधुशाला में काई जाति भेद या वर्णभेद नही होता, वह सबका स्वागत करती है। और जो लोग मंदिर मस्जिद के नाम पर लडते है। मधुशाला उनका मेल कराती है उनमें समता समानता का मूल मंत्र देती है। जैसे

धर्म ग्रंथ सब जला चुकी है, जिसके अन्दर की ज्वाला
मन्दिर मस्जिद गिरजे
सब को तोड चुका जो मतवाला
पण्डित मोमिन पादरियों के फन्दो को
जो काट चुका
कर सकती है आज उसी का स्वागत
मेरी मधुशाला

मधुशाला पंडित मोमिन पादरियो के विवादो को तोड कर हम सब एक है का बुँलंद नारा देती है। इस मधुशाला में उच नीचता का भेदभाव नही। इस मधुशाला में सभी जाति धर्म के लोग आ सकते है। और जीवन का आनंद लुटा सकते है।निर्माण कविता में निराशा के बाद आशा का आगमन होता है। अंधेरे के बाद प्रकाश का सत्य उद्घाटित होता है। निर्माण कविता में आशा उत्साह आगे बढने की प्रेरणा मिलती है।कवि बच्चनजीने कहा है नाश और निर्माण जीवन के

दो सत्य है। निराशा के बाद आशा और अंधेरे के बाद प्रकाश यही जीवन का सत्य है। जीवन सतत विकसनशील होता है। मनुष्य जीवन में निर्माण का क्रम लगातार चलता रहता है। निर्माण की यह प्रक्रिया कभी रूकनी नही चाहिए की, वह विनाश से न घबराते हुए लगातार निर्माण की प्रतिक्रया में आगे बढे।अपनी पहली पत्नी श्याम की मृत्यू के बाद बच्चन जीवन में पुर्ण निराश हो चुके थे। परंतू एकदिन उन्होंने अनुभव किया की चिडियाँ अपना घोसला बार-बार नष्ट होने पर भी निराश नही होती अपना घोसला फिर से बनाती है। उसी प्रेरणा से कवि ने यह कविता लिखी है। प्रकृति से अनेक उदाहरण देकर बच्चन यह प्रमाणित करते है। जीवन में निराशा के प्रसंग आने पर भी मनुष्य को उदास नही होना चाहिए। उसे रूकना नही चाहिए। बल्कि और अधिक गति के साथ निर्माण की दिशा में उसे अग्रसर होना चाहिए। यही जीवन का सत्य है। और इसी में मानव जीवन का उज्वल भविष्य निहित होता है।निर्माण में ही मानव जीवन का उज्वल भविष्य निहित है। अंधेरे के बाद प्रकाश यह जीवन का क्रम है। च्याहे आँधी आये या तुफान इस भयावह संकट में मानव को भयभीत नही होना चाहिए। मुसिबतो का पहाड केवल मनुष्य पर नही टूटता है बल्कि पंछीयो पर भी संकट के बादल मंडराते - पर छोटा सा जीव डरता नही है। निर्माण कविता की यह पक्तियाँ हम सभी के लिए प्रेरणादायी सिध्द होती है, जैसे:-

घोर गर्जनमय गगन के
कंठ में खग पंक्ति गाती
एक चिडिया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है
वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती
नाश के दुख से कभी
दवता नही निर्माण का सुख

छोटी सी चिडियां गगन के गर्जन से कभी विचलित नही होती चिडिया चोंच में तिनका लिए हुए मानो वह पवन को नीचा दिखा रही है। तुम कितना भी मुझे डरावो या मेरे घोंसले को तोड डाले मुझे कोई पर्वा नही। प्रकृति हमें जीना भी शिखाती है और मृत्यू का तांडव भी दिखाती है। कवि ने चिडिया का उदाहरण देकर हमे मनुष्य को नव निर्माण की ओर चलने की प्रेरणा दी है।

नाश के दुख से कभी
दवता नही निर्माण का सुख

नाश के दुख से कभी दवता नही निर्माण का सुख यह मनुष्य जीवन के लिए बहुत ही महत्वपुर्ण घटना है। हारे हुऐ इन्सान को फिर से लढने की शक्ति देती है। यह निर्माण कि पंक्तियाँ। हरिवंशराय बच्चन इस कविता के द्वारा जीवन की कठिनाइयो से लडने और सब कुछ नष्ट हो जाने पर फिर से जीने की प्रेरणा दी है। पक्षी अपने नष्ट हुए घोंसले का फिर से निर्माण कर और अपने मीठे स्वर से इस संसार में फिर से प्रेम और स्नेह भर देता है। उसी तरह हमे भी सदा खुश रहना चाहिए।जैसे

वह चले झोके कि काँपे
भीम कायावान भूधर
जड समेत उखड पूखकर
गिर पडे टूटे विटप पर
हाय, तिन को के विनिर्मित
घोसलो पर क्या न बीती

प्रकृति की चपेट में सभी जीव भयभीत होते है। भयंकर आँधी के कारण बडे बडे पर्वत भी हिल उठते है। तिनके से बने घोंसले कैसे बच सकते थे ?कवि आशा रूपी पंछी का संचार हमारे सूने जीवन में भर देते है। इतना विनाश होने पर भी आशा रूपी पंछी बैढा था। यह पंछी आकाश में ऊँचा चढकर गर्व से अपनी छाती खोले उड रहा था। नए सिरे से फिरसे घोंसले के निर्माण में व्यस्त होकर स्नेह और प्रेम का निमंत्रण देकर सृजन में लगा था। सृजनशील बने रहने की हमे सीख मिलती है।जो बीत गई सो बात गई प्रस्तुत कविता में कविने बीती हुई बातों को भूलाकर भविष्य में सुख से जीने का संदेश दिया है। जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग आते है जब लगता है कि सब कुछ समाप्त हो गया है लेकिन यह सच नही है। जीवन में दुख को सहलाने के बजाय उसे भूलाकर जीवन आनंद और स्वाद से जीना ही सार्थकता है।आकाश में तारे टूटते है लेकिन आकाश कभी शोक नही मनाता। मधुवन में कलियाँ मुरझाती है लेकिन वह कभी शोक नही मनाता मदिरालय में प्याले टूटते है लेकिन मदिरालय कभी नही पछताता। जीवन में भी अनेक चींजे बिछडती है टूटती हैं। तब व्यक्ति को निराश होकर नही बैठना चाहिए। बच्चनजी की कविताओं में जीवन है उत्साह है उम्मीद है आत्मबल है जैसे :-

जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अंबर के आंगन को देखो
कितने इसके तारे टूटे

बच्चनजी की कविताये घोर निराशा के क्षणो में भी एक उम्मीद है। रोशनी की किरण है। जो हमे रास्ता दिखाती है। जीवन में कई सारे ऐसे मोड आते है। जो हमें एक दूसरे से अलग कर देते है। फिर भी हमे बीती हुई बातो को भूलाकर आगे बढना चाहिए।कविता के दूसरे खंड में कवि ने कुसूम के माध्यम से जीवन के रहस्य को समझाने का प्रयास किया है।जैसे:-

सुखी कितनी इसकी कलियाँ
मुर्झाई कितनी वल्लरियाँ
जो मुर्झाई फिर कहाँ खिली
पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुबन शोर मचाता है।

बच्चनजी कहते है कि मधुबन फुलों के बगीचे में कितनी कलिया सुख गई कितनी लताएं वल्लरिया मुरझा गई। परंतू जो सुख गई या मुरझा गई वे कभी खिलती नही पर मधुबन उन मुरझाए फुलों पर कभी शोर नही मचाते। बीते हुए समय को स्मरण करके अपना वर्तमान बिगाड लेना व्यर्थ है। यह अनमोल संदेश कवि का युवाओ के लिए बहुत ही महत्वपुर्ण लगता है। कवि फिर से जीवन को सुन्दर बनाने की प्रेरणा देते है।

कितने प्याले हिल जाते है
गिर मिट्टी में मिल जाते है
जो गिरते है कब उठते है
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है.

कवि ने मदिरालय की घटना को भी यहाँ प्रस्तुत किया है। मदिरालय में प्याले टूटते है। लेकिन मदिरालय कभी नही पछताता जिन्हे टूटना था वे टूटेंगे ही पीनेवाले प्याले टूटने पर शोक नही मनाते वे पुरी ममता के साथ फिर पीते है। कवि ने जीवन की क्षणभंगूरता की घटना को उपस्थित कर हमे जीवन में आगे बढने की नई सीख दी है। जैसे:-

मृदु मिट्टी के है बने हुए
मधु घट फुटा ही करते है
लघु जीवन लेकर आए है
प्याले टूटा ही करते है.

मनुष्य जीवन में भी अनेक चीजे मिलती है। बिछडती है टूटती है तब व्यक्ति को निराश नही होना चाहिए। जो बीत गई सो बात गयी कहकर फिर से आगे बढना चाहिए। कवि पूरे विश्व की पीडा को कुछ इस तरह प्रस्तुत करते है।

कोई मस्जिद ना होती, कोई मन्दिर न होता।
कोई दलित ना होता, कोई काफिर न होता।
कोई बेबस ना होता, कोई बेघर ना होता।
किसी के दर्द से कोई बेखबर ना होता।

इस काव्य में कवि ने पूरे समाज व्यवस्था की पीडा को प्रस्तुत किया है। कोई दलित न होता। कोई काफिर न होता। कोई अनाज के लिए बेबस न होता। कोई बेघर नही होता। किसी के दर्द से हम बेखबर न होते।

बच्चन के अनमोल विचार यहा प्रस्तुत करना बेहद आवश्यक लगता है। जैसे:-

कभी फूलो की तरह मत जीना
जीस दिन खिलोगे बिखर जाओंगे
जिना है तो पत्थर बनकर जिओ
किसी दिन तराशे गए तो
खुदा बन जाओगे।

निष्कर्ष:-हरिवंशराय बच्चनजी की कविताएँ मन का उत्साह बढाती है। हमे धर्म मजहब के फेर में न पडते हुये इन्सान बने रहने की सिख मिलती है। जैसे: -

तू भी इन्सान होता
मैं भी इन्सान होता
काश कोई धर्म न होता
काश कोई मजहब ना होता

आज भी हमारे देश में धर्म मजहब के नाम पर हम आपस में लढते रहते है। सबसे पहले हम, इन्सान बने तो आपसी मतभेद नही रहेंगे। और विदेशीयों को आक्रमण करने का कोई भी अवसर नही मिलेगा। इतिहास गवाह है इस बात का। हमारी आपसी मतभेद के कारण ही विदेशी हम पर अधिकार जताने लिगे यदि हम धर्म मजहब से परे जाकर इन्सान बने तो आज भारत का मानचित्र कुछ और होता। यह अनमोल संदेश बहुत ही प्रेरणादायी है।समाज को सही दिशा देनेवाली उसे जागरूक करनेवाली और खासकर युवाओं को असफलता से हार मान सफलता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहने व विपरीत परिस्थिति में भी पूरे मनोयोग से संघर्ष करनेवाली ये कविता हमारे लिए नई आशा का निर्माण है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.समृध्द काव्य - डॉ. संजय गडुपायले
2.आर्वाचिन हिन्दी काव्य - डॉ नरसिंह प्रसाद दूबे
3.स्वतंत्र वार्ता-
4.आधुनिक हिन्दी साहत्य- डॉ. अमर प्रसाद जायस्वाल

महादेवी वर्मा की गद्य रचना एवं स्त्री

प्रियंका सिंह
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-221005 मो.नं. 9795901499

महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्री एवं लेखिका रही है। छायावादी युग की प्रमुख स्त्री विमर्श की रचनाकार हैं। इन्होंने पद्य एवं गद्य दोनों विधाओं में अपने विचार प्रकट किये है। यहाँ उनकी स्त्री विमर्श पर आधारित गद्य रचनाओं पर बात करेंगे जिनमें प्रमुख हैं- ''श्रृंखला की कड़ियाँ'' ''स्मृति की रेखायें'' ''अतीत के चलचित्र''। महादेवी अन्याय को सहन करने वाली महिलाओं में नहीं थी। लेकिन ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धान्त में उनका विश्वास नहीं था। बदले की भावना से स्त्री-मुक्ति सम्भव नहीं है। वह तो सृजन के उन प्रकाश तत्वों के प्रति निष्ठावान है जिनकी उपस्थिति में विकृति अंधकार के समान विलीन हो जाती है।

महादेवी वर्मा के स्त्री-विमर्श पर कलम चलने के पश्चात् हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श एक आन्दोलन का रूप ले लिया। महादेवी वर्मा भारतीय स्त्रियों में दम भरते हुये कहती हैं- ''जिस दिन भारतीय नारी अपने सम्पूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं। उनका विश्वास है कि स्त्रियों के अधिकार भिक्षावृत्ति से न मिले हैं न मिलेंगेए क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न हैं। किसी भी समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका उपयोग ही उसके अधिकार निश्चित करता है।''[1]

महादेवी वर्मा के रचनाओं में जहां एक ओर रहस्यवादी चेतना दिखाई देता है वहीं दूसरी तरफ आक्रोश और संघर्ष के भी दर्शन होते हैं। स्त्री को अपना महत्व स्थापित करना ही होगा। इसके लिए स्त्री को कितना भी संघर्ष करना पड़े। इस संसार में वही व्यक्ति सम्मान व अपना स्थान प्राप्त कर सकता है जिसके हृदय और मस्तिष्क ने सम्पूर्ण विकास पाया है। अपने व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से रागात्मक से अतिरिक्त बौद्धिक सम्बन्ध भी स्थापित कर सकने में समर्थ हो। इसके अभाव में व्यक्ति अपने संकल्प व इच्छाशक्ति को अपना नहीं समझ सकता और न्याय-अन्याय का अन्तर स्पष्ट नहीं कर सकता। समाज में गतिशीलता विकास तथा सामंजस्य के लिए स्त्री हो या पुरूष दोनों की लिए आवश्यकता है। अगर हम विकास के दो महत्त्वपूर्ण अंगों में से एक को नजर अन्दाज करते हैं तो यह हमारे सम्पूर्ण समाज के लिए घातक सिद्ध होगा।

सामाजिक अधिकारों के लिए भी यही सत्य है। जो बन्धन पुरुषों की स्वेच्छाचारिता के लिए इतने शिथिल होते हैं कि उन्हें बन्धन का अनुभव ही नहीं होता वे ही बन्धन स्त्रियों को परावलम्बिनी दासता में इस प्रकार कस देते हैं कि उनकी सारी जीवनी शक्ति शुष्क और जीवन नीरस हो जाती है। समस्त सामाजिक नियम मनुष्य की नैतिक उन्नति तथा उसके सर्वतोन्मुखी विकास के लिए आविष्कृत किये गये हैं। जब वे ही मनुष्य के विकास में बाधा डालने लगते हैं तब उनकी उपयोगिता ही नहीं रह जाती।''[2]

अर्थात् समाज के वे नियमए बन्धन जो एक पुरुष के लिए बिल्कुल उनके इच्छानुसार हो जाता है वे उस बन्धन में जकड़े से नहीं होते हैं जैसे एक स्त्री बंधी होती है। उन्हें बन्धनों का अनुभव ही नहीं होता और न ही इस पर कोई खास मुद्दा बनता है। लेकिन ये ही सामाजिक बन्धन एक स्त्री को इस प्रकार कस देता है कि वे अपने उत्साह व जीवतंता को

खत्मकर एक नीरसता का जीवन व्यतीत करती है। ऐसे सामाजिक बन्धनों को खत्म करना होगा नहीं तो हमारे समाज का एक पक्षीय विकास समाज को पंगु बनाकर छोड़ेगा। जिसमें मनुष्यता कभी विकसित हो ही नहीं सकती ऐसे बन्धनों को खत्म करना ही श्रेयस्कर हैं। हाँ लेकिन ऐसा करने के लिए स्त्री को पुरुषों का अन्धानुकर की आवश्यकता नहीं है बल्कि अपनी आवश्यकता समझनी हैं। हम अपने को कुछ ऐसे कार्य जो पुरुष कर सकता है लेकिन स्त्री नहीं कर सकती तो अपने को पुरुष से तुच्छ नहीं समझना चाहिए क्योंकि हमारे भी कुछ अद्वितीय कार्य को पुरुष करने में असमर्थ जरूर होता हैं। दोनों की अपनी कुछ समान कार्य है तो दोनों की अपनी कुछ विशेष निर्माण कार्य। यही भावना स्त्री को त्यागकर अपने को समर्थ सिद्ध करना है न कि पुरुषों से तुलना। श्रृंखला की कड़ियाँ में ऐसा ही कुछ महादेवी वर्मा कहती हैं-अपने कर्तव्य की गुरुता भली-भाँति हृदयंगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सकें तो हमारी लोह-श्रृंखलाएं हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती हैए इसमें सन्देह नहीं।''3 स्त्री को अपने व्यक्तित्व निर्माण के लिए कोमलता और सहानुभूति के साथ साहस और विवेक का ऐसा सामंजस्य स्थापित करना पड़ेगा जिससे वह किसी अन्याय को प्रश्रय न दे सकें क्योंकि इस समाज में एक भी ऐसा सामाजिक प्राणी न मिलेगा जिसका जीवन माताए पत्नीए भगिनीए पुत्री आदि स्त्री के किसी न किसा रूप से प्रभावित न हुआ हो।

किसी भी स्त्री को अपने प्रतिकूल बन्धनों को काटने के लिए किसी की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है और न ही उसके पास इतना समय ही है कि वह अपनी समस्या को संसार भर में प्रकट करती फिरे। परन्तु इस बन्धन को काटते समय उसे इतना ज्ञान जरूर हो कि इन बन्धनों को काटने के चक्कर में अपने को उसमे उलझा न ले कि एक से छुटकारा मिलते ही किसी दूसरे बन्धन में बन्धना अनिवार्य हो उठे। ऐसी परिस्थिति में उसकी मुक्ति की आकांक्षा तथा अपने को समाज में पूर्णता स्थापित करने की आशा दुराशा मात्र न रह जाये। जैसे महादेवी वर्मा ने ''अतीतके चलचित्र में 'लक्षमा' जो कि उनके सम्पूर्ण जीवन यात्रा में जितने भी व्यक्ति सम्पर्क में आये उनको उन्होंने अपने रेखाचित्र में दिखाया है जिसमें से लक्षमा भी एक प्रमुख पत्र है । लक्षमा अपने परिवार से निष्कासित कर दी जाती है परिवार में इतनी प्रताड़ित हुई की लोग समझे मर गई होगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ उसने अपने अदम्य साहस के साथ पुर्नजीवन पाया लेकिन हमारे समाज में जहाँ एक बार स्त्री के मृत्यु की घोषणा हो जाय अगर वह मौत के मुँह से बाहर निकल आये तो प्रायः उसे दैवी शक्ति या डायन ही समझा जाता है और ऐसे में अगर वह अपने दोषी से बदला लेने के बारे में सोचे तो उसका क्या हस्र होगा महादेवी वर्मा का एक उद्धरण देखिए

श्एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरूष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रिया उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनायें बिना नही रहती। इस तरह पग-पग पर पुरूष से सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है - वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है पुरूष उतना ही झुँझलाता है और प्रायः यह झुंझलाहट मिथ्या अभि-योगों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह स्वाभाविक भी है।''[3]

स्त्री का अकेले साहस दिखाना भी पुरूषों को तकलीफ देता हैं। हमारे भारतीय समाज में और भी ज्यादा तकलीफ देह होता है। महादेवी वर्मा अपने गद्य रचनाओं में स्त्री-विमर्श पर जबरदस्त विचार रखती है ऐसा लगता है हर एक पंक्ति मस्तिष्क में द्वन्द्व उत्पन्न करता है। स्त्री का कोई अपना घर नहीं प्राप्त हो सका है जहाँ वह स्वच्छन्द जीवन यापन कर सके। ससुराल हो या मायका से पग पर भूमि भी नसीब नहीं है। जिस घर पर उसका न्यायोचित अधिकार था उसी में पग भर भूमि माँगने को विवश है। इस विषमता को खत्म करके ही स्त्री को परिवार का एक व्यवहारिक सदस्य बनाया जा सकता है। पौराणिक मान्यता प्राप्त देवी शक्ति के रूप मे नहीं क्योंकि जब तक वह संज्ञा-शून्य मौन रहेगी पूजी जायेंगी या फिर प्रताड़ित होती रहेंगी।

''स्मृती की रेखायें'' का एक शीर्षक ''बिबिया'' जिसमें एक विधवा स्त्री की समाज में क्या स्थिति होती है इस पंक्ति में अभिव्यक्त है . ''ऐसी परिस्थिति में जिस प्रकार उच्च वर्ग की स्त्री का गृहस्थी बसा लेना कलंक है उसी प्रकार नीच वर्ग की स्त्री का अकेला रहना सामाजिक अपराध है।''[4] इस प्रकार एक विधवा अगर वह उच्च वर्ण की है तो उसका ब्याह करना स्त्री का चरित्रहीन माना जाता है अगर सती हुई तो इतिहास में नाम लिया जायेगा। वही अगर स्त्री निम्न वर्ण की विधवा है तो उसका समाज में अकेले रहना दुष्वार हो जाता है। समाज में उसकी काफी बुरी स्थिति बन जाती है और बस जीवन-साथी कैसा भी हो किसी तरह उसके साथ बाँध दी जाती है आगे भयंकर दलदल में फँसती ही जाती है। महादेवी अपने समय के जीवंत प्रश्नों पर अपनी राय व्यक्त करती है।

यथार्थ के सन्दर्भ में महादेवी द्वारा उठाए गए कम से कम दो महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिन पर आज भी बहस की जरूरत बनी हुई है। एक है .'स्त्री और दलित'ए दूसरा है-'धर्म के भीतर व्याप्त रूढ़िवादिता' इन दोनों ही घटकों की समाज में विसंगत स्थितिए आधुनिक समाज को पीछे धकेलती है। गतिवान को पंगु बनाकर रखना सबसे बड़ी क्रूरता है। एक जीवित व गतिशील प्राणी को कैद करके रखना कितनी बड़ी क्रूरता है। ऐसा करने वाला और कैद में रहकर आराम से पड़े रहनेवाला दोनों दोषी होते हैं क्योंकि अपने नैसर्गिक गतिशीलता को खत्म करना खुद को खत्म करना है। स्त्री की जीवन-शक्ति का ह्रास इसी कारण हुआ कि वह अपने आपको अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के अनुरूप बनाने में असमर्थ रही है। जैसा की सदियों से जो रूढ़िया बनीबनायी हुई हैं उसी के अनुरूप आज की आधुनिक समय में जीनाए रहना मनुष्य की मनुष्यता खत्म करती है। परिवर्तन जीवन को गतिशील बनाता हैं और ये बात स्त्री को समझना चाहिए। अब धीरे-धीरे समझने लगी हैं।वास्तव में गृह की सीमा में उनसे इनता अधिक त्याग और बलिदान माँगा गया कि वे उसके प्रति विद्रोह कर उठीं। स्वेच्छा से दी हुई छोटी से छोटी वस्तु मनुष्य का दान कहलाती हैए परन्तु अनिच्छा से दिया हुआ अधिक से अधिक द्रव्य भी मनुष्य की अधीनता सूचक कर ही समझा जायेगा। स्त्री को जो कुछ बलात् देना पड़ता है वह उसके दान की महिमा न बढ़ा सकेगाए यह शिक्षिता स्त्री भली भाँति जान गई है ''[5] महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की स्त्री से जो जाग्रत एवं शिक्षित है उनसे बड़ी उम्मीद है किए वह सम्पूर्ण स्त्री के अधिकारों की सीमा क्या होए एवं उनकी समस्याओं का समाधान निकालने में अपने को सार्थक बनाये। अगर एक जाग्रत महिला कोई प्रयत्न न करेगी तो स्थिति जस की तस रहेगी। वह भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा को देखकर बहुत चिन्तित होती हैं। ''शिक्षा की दृष्टिसे स्त्रियों में दो प्रतिशत भी साक्षर नहीं है। प्रथम तो माता-पिता कन्या की शिक्षा के लिए कुछ व्यय ही नहीं करना चाहते दूसरे यदि करते भी है तो विवाह की हाट में उनका मूल्य बढ़ाने के लिए कुछ उनके विकास के लिए नहीं।''[7]

हमारे भारतीय समाज में स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य विवाह में उनके मूल्य बढ़ाने के लिए होता है। पहले तो उनकी शिक्षा पर ज्यादा व्यय भी नहीं करना चाहते और अगर करते भी हैं तो विवाह रूपी उद्देष्य के लिए न की व्यक्तित्व व समाज विकास के लिए। ऐसे में स्त्री

को बड़े सावधाानी व समझदारी से अपने शिक्षा का उपयोग करना पड़ेगाए भले ही उनके माता-पिता द्वारा उन्हें शिक्षित करने का उद्देश्य विवाह योग्य बनाना रहा हो। विवाह मनुष्य जाति की असभ्यता की भी सबसे प्राचीन प्रथा है और सभ्यता की भीए परंतु उसे समाजिक के साथ .साथ नैतिक और धार्मिक बंधन बनाने के लिए भी अधिक परिष्कृत करना होगा।''[8]

महादेवी जी विवाह संस्था को साथ रहने की सहज इच्छा के रूप में मानती है न कि कोई शर्त। ऐसा नहीं की विवाह के पश्चात् स्त्री का स्वालम्बिनी होना विवाह संस्था खत्म हो जायेगी या खतरे में पड़ जायेगी इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। ये एकदम गलत धारणा है कि स्त्री को दूसरे पर निर्भर रहकर ही विवाह संस्था को चलाया जा सकता है और आगे भी ऐसा ही चलता रहेगा अगर ऐसा ही है तो जिन देशों में स्त्रीयाँ एकदम स्वतंत्र व खुद पर निर्भर हैए उन देशों से विवाह संस्था खत्म ही हो गया होता परन्तु ऐसा नहीं हुआ। कहने का यह तात्पर्य है कि विवाह संस्था में प्रवेश करने पर उसमें जो कुरीतियाँ व स्त्री दमन मूलक जो परिस्थितियाँ हैए उसमें सुधार होनी चाहिए और ऐसा सम्भव उन्हीं लोगों द्वारा है जो स्त्री हो या पुरुष अपने को शिक्षित व जाग्रत करें।

भारतीय समाज में श्रमजीवियों की स्त्रियां तथा किसानों की पत्नियाँ घर संभालती हैं और खेतों में काम कर जीविका के उपार्जन में पुरुष की सहायता भी करती हैं इसके बावजूद उन्हें केवल पुरुष मनोरंजिनी विद्या के अतिरिक्त और कुछ न सिखाना उनके लिए भी घातक है और समाज के लिए भी क्योंकि वे सच्ची सामाजिक प्राणी व नागरिक कभी बन ही नहीं पाती हैं। जो चीज जरूरी है वह है-'स्त्री का स्वतंत्र नागरिक चेतना से सम्पन्न होना।'

प्रायः अधिकांश विचारक स्त्री स्वतंत्रता का आधार उसकी आर्थिक स्वतंत्रता से जोड़कर देखता है कि स्त्री अगर आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहेगी तो वह अपनी सभी किस्म की स्वतंत्रता की रक्षा कर लेगीए घर में जो कार्य स्त्री करती है उसका कोई मूल्य नहीं समझा जाता है हर सदस्य यहाँ तक की खुद स्त्री भी यह समझ पाती की वह किसी पर आश्रित नहीं हैए क्योंकि एक दिन भी अगर वह काम न करें तो क्या हंगामा मचता है। इतना करने के पश्चात् भी सवाल तब भी जहाँ का तहाँ है। महादेवी जी ने यह सवाल खड़ा किया कि यदि आर्थिक रूप से स्त्री स्वतंत्र नहीं है तो क्या उसे स्वतंत्र होने का हक नहीं होना चाहिएघ वह स्त्री की स्वतंत्रता के प्रश्न को उसकी आर्थिक स्वतंत्रता से एक हद तक ही जोड़ती है।

महादेवी उन स्त्री विमर्शकारों में से नहीं है जो स्त्री के कष्टों का जिम्मेदार केवल पुरुषों को बतायें। स्त्री किस प्रकार अपने को चूर-चूर कर पत्थर की देव- प्रतिमा बन सकती हैए यह देखना हो तो हिन्दू गृहस्थ की दुध मुंही बालिका से शापमय युवती में परिवर्तित होती हुई विधवा को देखना चाहिए जो किसी अज्ञात व्यक्ति के लिए अपने हृदय कीए हृदय के समान ही प्रिय इच्छाएँ कुचल-कुचल कर निर्मूल कर देती हैए सतीत्व और संयम के नाम पर अपने शरीर और मन को अमानुषिक यंत्रणाओं के सहने का अभ्यस्त बना लेती है और इस पर भी दूसरों के अमंगल के भय से आंखों में दो बूंद जल भी इच्छानुसार नहीं आने दे सकती।''[9] रूढ़ियों और परम्पराओं ने किस प्रकार स्त्री को बन्धन में जकड़े हुये हैए जैसे ही वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती है न जाने कितने रीतियों को अपनाना पड़ता है जैसे लगता हि नहीं की शादी से पहले की जींदगी फिर से जीना समाजिक नियमों के अनुकुल होगा। संस्कारों ने उसे पक्षाघात के रोगी के समान जड़ कर दिया है। उस पर भी अगर स्त्री कम उम्र में विधवा हो जाय तो समाज के लिए अपशकुन के रूप में देखी जाने लगती है और स्त्री भी अपमान की घूँट पीती रहती है। किसी के सामने प्रकट भी नहीं कर सकती। इसलिए महादेवी यह आवाह्न करती है कि मनुष्य को मनुष्य की स्थिति में रहने दिया जाय क्योंकि-''मनुष्यता से ऊपर की स्थिति को अपना लक्ष्य बनाने से प्रायः मनुष्य देवता की पाषाण प्रतिमा बनकर रह जाता है और इसके विपरीत मनुष्य से नीचे उतरना पशु की श्रेणी में आ जाना है। एक स्थिति मनुष्य से ऊपर होने पर भी निष्क्रिय हैए दूसरी इससे नीची होने के कारण मनुष्यता का कलंक है। अतः दोनों ही स्थितियों में मनुष्य का पूर्ण विकास संभव नहीं।''[10] अतः जब तक स्त्री .पुरुष दोनों मनुष्यत्व युक्त मनुष्य नहीं बन सकते तब तक जीवन की कला विकास नहीं पा सकेगी। महादेवी जी स्त्रियों की इस मूर्तिमान होने से दुखित हैं और दास्यत्व होने से भी उनको रोकना चाहती है। अतः उन स्त्रियों से काफी उम्मीद और आशा रखती हैं जो पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ है उन पर यह भार है कि वे अपनी अशिक्षित मजदूरए कृषकए गृहिणी बहनों में आत्मसम्मान और अधिकार चेतना पैदा करे। केवल फैशन के लिए कुछ सभा-गोष्ठियांए विभिन्न किस्म के इमदादों पर चलने वाले निजी संगठन खोलकर भद्र समाज की महिलाएं अपना और अपने जैसे दो-चार लोगों का हित साधन कर सकती हैं लेकिन इससे स्त्री समाज की उन्नति नहीं हो सकती।

निष्कर्ष:- स्त्री के लिए सबसे खराब होगा कि वह तमाम शिक्षा और आधुनिक परिवेश का साकारात्मक उपयोग न कर पाए और वैसी ही बर्बर और जाहिल बनी रहे हैं। जैसे उसके व्यवहारकर्ता उसके साथ व्यवहार करते आ रहे हैंए क्योंकि घृणा और बदले की भावना से किसी कौम को मुक्ति नहीं मिलती। महादेवी के गद्य के 'सामाजिक संदर्भ' मूल्यवान हैं। ऐसे तमाम अनछुए-अनजाने पहलुओं को उनके विचारपरक रचनाओं में हम देखते हैंए जो स्त्री-विमर्श के लिए आधारपरक रूप में हैं। वस्तुतः इनके रचनाओं के पात्र व्यक्ति के नहींए समूह के प्रतीक हैं। स्त्री-पात्रों की सामाजिक विवशताएँ ऐसी स्थितियों से साक्षात्कार कराती हैं कि कलेजा मुँह को आ जाता हैं।मर्दवादी-समाज का यह अत्याचार महादेवी के गद्य की 'अभिव्यक्ति' में एक ऐसा 'पाठ' प्रस्तुत करता है जिसे समाजशास्त्रीयए अर्थशास्त्रीय और मनोविश्लेषणात्मक अनुशासनों के अंतर्गत पढ़ा जाना चाहिए।''[11] स्त्री-विमर्श पर बात करते हुए महादेवी वर्मा को केन्द्र में रखकर आगे सोचना होगा। उनकी रचना-कर्म के 'पाठ' और उस पाठ में निहित नारी उपेक्षा और तमाम तरह के दमन-शोषण अलगाव के संदर्भों को भुलाकर बात नहीं की जा सकती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ

1.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा (अपनी बात)
2.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा पृ0 23
3.श्रृंखला की कड़ियाँ महादेवी वर्मा पृ0 29
4.अतीत के चलचित्र: महादेवी वर्मा पृ0 115
5.स्मृति की रेखाएँ महादेवी वर्मा पृ0 107
6.श्रृंखला की कड़ियाँ पृ0 54
7.श्रृंखला की कड़ियाँ पृ0 85
8.वही पृ0 83
9.वही पृ0 147
10.वहीए पृ0 151
11.नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचना-कर्म स्त्री-विमर्श के स्वरए कृष्णदत्त पालीवालए पृ0 330

कोरकू जनजाति में लोक कथाओं का प्रकार्य : मानवशास्त्रीय विश्लेषण

विवेक कुमार
शोधार्थी
मानवविज्ञान एवं जनजाति अध्ययन विभाग
झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, राँची

महेंद्र कुमार जायसवाल
शोधार्थी
मानवविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :-

लोक-कथा किसी भी समाज के बीच पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रचलित कथा रचना होती है। इन रचनाओं में किसी भी सजीव प्राणी से लेकर निर्जीव वस्तु एवं प्राकृतिक संसाधनों से जुड़ी कई सारी मान्यताओं का वर्णन होता है। यह परंपरा संभवतः मानव समाज में आदिकाल से ही शुरू हो गई होगी। मानव ने प्रकृति के साथ-साथ अपने स्वयं के जीवन में परिवर्तन देखे, इस परिवर्तन को मौखिक रूप में उसने अपनी अगली पीढ़ी को स्थांतरित किया। यह ज्ञान गीतों, नाटकों, कथाओं के माध्यम से आगे बढ़ता रहता है। व्यक्ति लोककथाओं में लोक-कल्याण की भावना के साथ-साथ अपने प्राचीन समय के इतिहास, धर्म, रीति-रिवाज, परंपराएँ, व्यवहार एवं निषेध जैसी तमाम तरह की मान्यताओं को स्थान देता है। आज की स्थिति एवं वर्तमान बदलते परिवेश के अनुसार लोककथाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। वर्तमान में कोरकू समुदाय सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रही है। इस दौरान लोककथाएँ बेहद प्रासांगिक हो जाती है। कोरकू अपने लोक समाज के सभी किरदारों या संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। लोककथाएँ अपने प्रकार्यात्मक महत्त्व के कारण समाज में अपने माध्यम से इन्हें एकजुट करके रखे हुए है। कोरकू लोककथाएँ उनकी विशिष्ट जीवनशैली को प्रदर्शित करती है। इनकी लोककथाएँ मुख्यतः व्यक्ति एवं समाज के व्यवाहरों को दिशा निर्देशित करती है। समाज का स्वभाव कैसा होना चाहिए एवं सामाजिक प्राणी होने के नाते हमें समाज एवं समाज के अन्य सदस्यों से कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका वर्णन इनकी लोककथाओं में मिलता है।

बीज शब्द-: महाराष्ट्र, अमरावती, मेलघाट क्षेत्र, कोरकू जनजाति, लोक कथा, प्रकार्य, संस्कृति।

शोध विस्तार

लोक समाज के सभी अंग एक दूसरे से जुड़े होते हैं, जिससे संपूर्ण लोक समाज का निर्माण होता है। यह जुड़ाव संयोगवश नहीं है, बल्कि इसके पीछे एक निश्चित आनुभविक आधार और कार्य-संबंध होते हैं, जिसे प्रकार्य कहा जाता है। लोक समाज में प्रकार्य की अपनी विशेष भूमिका होती है। प्रकार्य समाज के सभी संस्थाओं में व्यक्ति एवं उसके कार्य-कारण संबंधों पर आधारित होती है। प्रकार्य के संबंध में मानवशास्त्रीय सिद्धांतों में मैलिनोवस्की का नाम अग्रणी रूप से लिया जाता है। प्रकार्य के संदर्भ में ही मैलिनोवस्की ने 'प्रकार्यवाद' सिद्धांत का प्रतिपादन अपनी पुस्तक *'ए साइंटिफिक थ्योरी ऑफ कल्चर'* (1944) में किया था। इनका मानना है कि संस्कृति के सभी तत्वों का अपना-अपना प्रकार्य है। बगैर प्रकार्य के कोई भी सांस्कृतिक तत्त्व अस्तित्व में नहीं रह सकते हैं। इसके कारण ही सांस्कृतिक तत्त्व आज भी समाज में मौजूद हैं। सांस्कृतिक समग्रता को बनाए रखने के लिए 'प्रकार्यवाद' सामाजिक संस्थाओं द्वारा बनाए गए प्रकार्य का विश्लेषण करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं लोक समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू ही सामाजिक संस्थाओं का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक संस्थाओं का कुछ न कुछ प्रकार्य अवश्य रहता है, बगैर प्रकार्य के संस्थाएँ अस्तित्वहीन हो जाएगी। लोक समाज की अपनी संस्कृति होती है जिनमें कई प्रकार के संस्थाएँ देखने को मिलती है। प्रत्येक संस्थाओं का प्रकार्य एक दूसरे से भिन्न होता है। लेकिन अगर बात पूरी संस्कृति की हो तो, ये संस्थाएँ उस पर आश्रित एवं एक दूसरे से संबंधित होते है। इस तरह से संस्कृति में मौजूद सभी संस्थाओं में प्रकार्यात्मक एकता होती है। इन संस्थाओं का प्रकार्य यह होता है कि वे संपूर्ण संस्कृति को अस्तित्व में बनाए रखे। इन्हीं आधारों पर विशेषकर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही समाज में विभिन्न प्रकार के संस्थाओं का जन्म होता है, जिसका अपना एक विशेष प्रकार्य होता है। मैलिनोवस्की के अतिरिक्त फ्रेंच मानवशास्त्री ईमाइल दुर्खिम ने अपनी पुस्तक *'डिविजन ऑफ लेबर'* (1893) में प्रकार्य की अवधारणा प्रस्तुत की है। दुर्खिम ने समाज को एक जीवधारी के रूप में प्रस्तुत किया है। दुर्खिम समाज को एक वास्तविकत व्यक्ति के रूप में मानते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक में सामाजिक तथ्यों का प्रकार्यात्मक विश्लेषण किया है। उनके अनुसार जीवधारी अपने शरीर की रक्षा के लिए कई प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, उसी प्रकार समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए भी विभिन्न प्रकार के आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है जिसे 'प्रकार्य' कहा जाता है। दुर्खिम के अतिरिक्त हरबर्ट स्पेंसर ने अपनी पुस्तक *'प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी, भाग-1'* (1898) में प्रकार्य पर अपनी अवधारणा दी है। उन्होंने समाज एवं जीवधारियों के बीच की मौलिक समानताओं का उल्लेख किया है। उनके अनुसार शरीर के सभी अंगों के द्वारा एक पूर्ण शरीर की रचना होती है, उसी प्रकार समाज की भी सभी छोटी-बड़ी इकाइयां मिलकर उस समाज की संरचना को बनाते हैं। जिस प्रकार से शरीर के सभी अंगों द्वारा मिलकर विभिन्न प्रकार के प्रकार्य किए जाते हैं ताकि शरीर का अस्तित्व बना रहे, उसी प्रकार समाज की इकाइयाँ भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए विभन्न प्रकार के प्रकार्य को करती है। इनके अलावा रैडक्लिफ ब्राउन ने संरचना-प्रकार्य पर अपना सिद्धांत अपनी पुस्तक *'स्ट्रक्चर एंड फंक्शन इन प्रिमिटिव सोसाइटी'* (1952) में दिया है। उनके अनुसार सामाजिक संरचना समूहों एवं व्यक्तियों की क्रमबद्ध व्यवस्था को दर्शाता है। व्यक्ति तथा समूह का प्रकार्य समाज की संरचना या सामाजिक जीवधारी की संरचना के आपसी संबंध को प्रस्तुत करना है। सामाजिक प्रकार्य सामाजिक संरचना एवं सामाजिक जीवन इन दोनों के बीच के अंतः संबंध को कहते हैं। सामाजिक संरचना का अध्ययन समाज को अस्तित्व में बनाए रखने वाले प्रकार्य की व्यवस्था के आधार पर किया

जाता है। संरचना एवं प्रकार्य दोनों ही एक दूसरे को सहयोग देते हैं तथा एक दूसरे की निरंतरता में आवश्यक भूमिका निभाते हैं। सामाजिक जीवन में निरंतरता एवं परिवर्तन दोनों ही प्रक्रियाओं के लिए संरचना एवं प्राकार्य का प्रयोग किया जाता है। कोरकू समाज में कई सारी सामाजिक संस्थाएं हैं जिसका प्रकार्य समाज को संचालित करना है। जिसमें सभी कोरकू एक -दूसरे पर आश्रित है। कोरकू समाज अपने अन्य सदस्यों के आपसी अंतः संबंधों के कारण ही अपनी सामाजिक संस्थाओं को बनाए हुए है। कोरकू समाज की संस्थाएं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक व जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित की गयी है, जिनका अपना विशेष प्रकार्य है। इनकी संस्थाएं उन्हें आपस में एकजुट करके रखती है। लोककथाएँ भी इन्हीं संस्थाओं में से एक है। व्यक्ति तथा लोककथा यह दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं। लोककथाएँ मौखिक पृष्ठभूमि के कारण सामाजिक परिवेश में आसानी से ढल जाती है एवं उनका स्वरूप मूर्त हो जाता है। कोरकू लोककथाओं में सामाजिक एकता व चरित्र निर्माण संबंधी तत्त्वों जैसी भावना को प्रस्तुत किया जाता है। लोककथाओं का एक विशेष प्रकार्य होता है जैसे इसके माध्यम से सामाजिक एकता बनी रहे एवं समाज की सौहार्दता के साथ कोई छेड़छाड़ न हो सके। ऐसी लोक कथाओं का उद्देश्य समाज की शांति एवं सौहार्द को निरंतर बनाए रखना होता है। इसलिए अधिकांशतः कथाओं में दैवीय पक्ष भी जोड़ दिए जाते हैं, ताकि डर के कारण ही व्यक्ति एक दूसरे से जुड़ा रहे।

लोककथाओं से कोरकू जनजाति की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचार एवं व्यवहार का पता चलता है। कोरकू की लोककथाएँ मुख्यतः समाज एवं व्यक्ति के आचरण पर भी विशेष बल देती है। अच्छा -बुरा, सही-गलत जैसी बातें उनकी लोककथाओं में मुख्य रूप से प्रतीत होता है। लोककथाएँ हर लोक समाज के अनुसार बदलती है इसे व्यक्ति अपने पूर्वजों से सीखता है और भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। कुछ मूर्त तथ्य हैं जैसे कोरकू की उत्पत्ति से जुड़ी लोककथाएँ जो प्रायः सभी जगह एक जैसी है। इनकी लोककथाओं में हिंदू जीवनशैली का प्रभाव देखने को मिलता है। कोरकू जनजाति के धार्मिक विश्वास व पद्धति लगभग हिंदू जैसी ही है। यहाँ के लोग हिंदू पर्व त्योहार जैसे- दिवाली, होली, दशहरा, शिवरात्रि, हनुमान जयंती आदि बड़े धूमधाम से मनाते हैं। ऐसे में इन देवी-देवताओं से जुड़ी लोककथाओं का उनकी संस्कृति में प्रवेश करना संभव है। कोरकू का संबंध रावण से है, वे रावण को अपना पूर्वज मानते हैं। इसके अलावा वे मेघनाथ को भी अपना देवता मानते हैं। रावण, रामायण के दूसरे केंद्र बिंदु थे, इसके बावजूद भी कोरकू के बीच रावण से जुड़ी एक भी लोककथाएँ मौजूद नहीं है।

लोककथाओं के माध्यम से जहाँ देशज संस्कृति का प्रसार होता है, वहीं इसके कई सारे आयाम होते हैं जो समाज में एक नई संस्थाओं को जन्म देते हैं। लोककथाओं के द्वारा निर्मित संस्थाएं लोक समाज में काफी वृहत् स्तर तक जुड़ी होती है। हालाँकि, इनमें समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं एवं रूप परिवर्तित कर निरंतर आगे बढ़ते रहते हैं। लोककथाओं ने कई नए आवश्यकताओं को जन्म दिया है। कोरकू रावण को अपना इष्ट देवता मानते हैं एवं उनके समाज में रावण का पुत्र मेघनाथ को भी उच्च स्थान प्राप्त है। लोककथाओं में इनका बार-बार वर्णन आता है। वर्तमान में कोरकू जनजाति के लोग रावण एवं मेघनाथ की मंदिर बनाने के बारे में विचार विमर्श कर रहें हैं। यहाँ लोककथाओं के माध्यम से ही समाज में एक नए धार्मिक आवश्यकता का जन्म हुआ है और यह सर्वविदित है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। ऐसे में नई-नई संस्थाएं जब निर्मित होगी तब उनका प्रकार्य भी सामान्य नहीं होगा। यह सब संभव लोककथाओं के माध्यम से ही हुआ है। ऐसे में लोककथाएँ समाज को आगे बढ़ाने में एक नई दिशा प्रदान करती है। समाज का निर्माण व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है। इसके निर्माण काल से ही इसके अस्तित्व की रक्षा के लिए कई तरह के कदम उठाए जाते रहे हैं, ताकि समाज की रूपरेखा व अस्तित्व बना रहे। इनको बनाए रखने के लिए जिन संस्थाओं का निर्माण किया जाता है उनका प्रकार्य ही उनकी निरंतरता को बनाए रखना होता है। कोरकू जनजाति की उत्पत्ति एवं सृजन से संबंधित जो लोककथाएँ हैं, वो आज भी कोरकू समुदाय में एक जैसी है। इनका स्वरूप आज भी वैसे का वैसा ही है। इनकी लोककथाओं में भगवान शिव, रावण, मेघनाथ आज भी सुनने में मिल जाते हैं। इसके अलावा इनके इष्ट देवता मुठवा से जुड़ी लोककथाओं का भी उल्लेख मिलता है। इनकी लोककथाएँ एक सामाजिक सीख की ओर इशारा करती है, जो इनकी लोककथाओं में देखने को मिलता है। लोककथाओं में कोरकू पुरुषों का वर्णन एक मेहनती व हिम्मत न हारने वाला व्यक्ति के रूप में किया जाता है। वहीं महिलाओं का वर्णन कई प्रकार के परीक्षाओं को देने वाली व अपने आप को साबित करने वाली स्त्री-चरित्र के रूप में वर्णित किया जाता है। ये सभी वर्णन लोककथाओं के माध्यम से आज भी किए जा रहे हैं। आज की स्थिति एवं वर्तमान बदलते परिवेश के अनुसार लोककथाओं में परिवर्तन हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त लोककथा को सुनाने का एक सही स्थान एवं सही समय होता है। कोरकू आज भी इसका पालन करते हैं। वे अपनी लोककथाओं को शाम ढलने के बाद समूह में अन्य लोगों के साथ बैठकर सुनाना पसंद करते हैं। हालांकि कुछ बुजुर्ग ऐसे भी हैं, जो अपने खेतों की रखवाली के लिए खेत के पास बने मचान में रहते हैं, इस वजह से वे वहीं पर कथाओं को सुनाते हैं। लोककथाओं को कहने के दौरान कई बार वे गाँव के अन्य लोगों के मौजूद न होने की बात भी करते हैं। उनका मानना है कि अधिक संख्या में लोगों के बीच लोककथा वाचन से दो फायदे होंगे। एक, लोककथाओं को सुनकर लोग सीखेंगे और दूसरा, अगर उनसे कुछ भूल-चूक हो जाए तो कोई भी उन्हें याद करा सकता है एवं टोक कर सुधार सकता है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि लोककथाओं को सुनने के दौरान अपनी ध्यान संबंधी प्रमाणिकता प्रस्तुत करने के लिए प्रतिक्रिया के रूप में 'हूं-हूं' जैसे शब्दों का उच्चारण करते रहना आवश्यक होता हैं। उनका मानना है कि इससे श्रोता के ध्यान का पता चलता है एवं वक्ता की भी रुचि बढ़ती है। ऐसी गतिविधियां आज भी निरंतर जारी है, जिनका समाज में एक विशेष महत्त्व होता है। वहीं लोककथाओं की तमाम निरंतरताओं के बावजूद उनमें कई सारे परिवर्तन होते हैं जो किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति या किसी विशेष तत्व के प्रभाव के कारण से होती है।

कोरकू लोककथाओं में कोरकू का प्रकृति से अंतः संबंध का पता चलता है। कोरकू का पर्यावरण एवं इसके अंतर्गत रहने वाले सभी जीवों के साथ घनिष्ठ संबंध है। कोरकू वनों, जीव-जंतुओं तथा प्रकृति के अन्य संसाधनों को अपने जीवन में विशेष स्थान दिए हुए है। कोरकू गोत्र में प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश है। इनके गोत्र पेड़-पौधे, घास-मिट्टी तथा जीव-जंतु इन सभी के नाम पर है। इन गोत्र से जुड़े तत्त्वों का वे संरक्षण करते हैं तथा इनका दोहन नहीं करते हैं। गोत्र से जुड़ी प्रकृतिक तत्त्वों में उनको बचाने संबंधी बनाए गए निषेधों का पालन भी बड़ी सख्ती से करते हैं। वहीं, जीव-जंतुओं के साथ इनके अंतः संबंध बड़े ही व्यापक स्तर पर प्रस्तुत होते है। वास्तविक जीवन में या लोककथाओं में भी बैल का बड़ा महत्त्व है। बैल इनके कृषि-कार्य का सबसे बड़ा सहयोगी होता है। जहाँ एक ओर पूँजी को महत्त्व देने वाला समाज बैल के बजाए गाय पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है ताकि गाय के दूध से एवं उससे बने अन्य खाद्य पदार्थों से उसे फायदा हो सके। ऐसे समाजों में

बैलों की स्थिति बेहद खराब होती है। ऐसे में कृषक समाज विशेषकर जनजातीय समाज के बीच बैलों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है क्योंकि जनजातीय समाज वृहद कृषि न करके लघु कृषि करता है। इनका मकसद स्वयं के लिए अनाज उत्पादन करना होता है एवं सुदूर वनांछादित क्षेत्रों एवं पहाड़ी स्थलाकृति की वजह से यहाँ ट्रैक्टर जैसे मशीनी उपकरण बेहद कम मात्रा में पहुँच पाते हैं। इसके अतिरिक्त ट्रैक्टर का शुल्क काफी महँगा होता है, जो गरीब किसानों के उपयोग क्षेत्र से बाहर हो जाता है। इस वजह से भी इनके समाज में आज भी बैलों की महत्त्व सबसे अधिक है। बैलों को किसान समतल भूमि से लेकर ऊँची स्थलाकृतियों पर भी ले जा सकते हैं। जहाँ बैल ही सबसे उपयुक्त साधन माने जाते हैं। ऐसे में बैल एवं मनुष्य के आपसी अंतः संबंध और भी मजबूत और दृढ़ हो जाते हैं। कोरकू समाज में गाय की अपेक्षा बैल का मूल्य अधिक है। कृषि के क्षेत्र में बैल कोरकू का सबसे बड़ा सहयोगी है। इस वजह से दोनों एक दूसरे के रक्षक हैं तथा दोनों का प्रकार्य ही एक दूसरे के अस्तित्व की रक्षा करना है।

कोरकू समाज अपनी निरंतरता को बनाए रखने के लिए लोककथाओं को विशेष स्थान दिए हुए है। इनमें उनकी संस्कृति का वर्णन होता है जिनका समाज में प्रकार्यात्मक महत्ता अधिक होती है। इन्हीं को साथ ले कर चलते हुए ही कोरकू समाज व उनकी संस्कृति अपनी उत्तरजीविता को बनाए हुए है। कोरकू ने अपने समाज एवं संस्कृति तथा इसके संस्थाओं का निर्माण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया है। इन संस्थाओं का प्रकार्य ही उन्हें जीवित रखना है ताकि विकट परिस्थितियों में भी अपनी उपस्थिती को बनाए रखे एवं आगे बढ़ते रहें। ऐसे में कोरकू समाज तभी बचेगा जब स्वयं कोरकू बचेंगे क्योंकि कोरकू समाज कोरकू से ही बना है। वर्तमान कोरकू समाज सांस्कृतिक बदलाव के दौर से गुजर रही है। इस दौरान लोककथाएँ बेहद प्रासांगिक हो जाती है। कोरकू अपने समाज के सभी किरदारों या संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। लोककथाएँ अपने प्रकार्यात्मक महत्त्व के कारण समाज में अपने माध्यम से इन्हें एकजुट करके रखे हुए है। इससे सभी कोरकू एक दूसरे पर निर्भर व आश्रित तथा संगठित होकर समाज में रहते हैं। इससे समोज में एकता बनी रहती है और समाज आगे बढ़ता जाता है तथा वह अस्तित्वहीन होने से बच जाता है। आज कोरकू लोककथाएँ बदलाव के दौर से गुजर रही है। कोरकू लोककथाएँ उनकी विशिष्ट जीवनशैली को प्रदर्शित करती है। इनकी लोककथाएँ मुख्यतः व्यक्ति एवं समाज के व्यवाहरों को दिशा निर्देशित करती है। समाज का स्वभाव कैसा होना चाहिए एवं सामाजिक प्राणी होने के नाते हमें समाज एवं समाज के अन्य सदस्यों से कैसा व्यवहार करना चाहिए इसका वर्णन इनकी लोककथाओं में मिलता है। इसके अतिरिक्त आस्तिक स्वभाव के वजह से ये देवी-देवताओं पर बहुत ही श्रद्धा रखते हैं, जिनका दर्शन उनकी लोककथाओं में देखने को मिलता है। लोककथाओं का उद्देश्य मनोरंजन व सामाजिक एवं नैतिक ज्ञान के लिए भी होता है। जिसका स्थान आज कई सारे भौतिक सामग्रियों ने ले लिया है। इस वजह से लोककथाओं में अब काफी बदलाव आने लगा है। शिक्षित समाज के अंदर भिन्न-भिन्न माध्यमों से दूसरे समाज की लोककथाएँ भी पहुँच रही है, जो उन्हें बहुत प्रभावित कर रहा है। वे अब इन्हें ही अपनी मूल लोककथाओं का दर्जा देने लगे हैं। आज लोककथाओं की तुलना में लोक गीतों का महत्त्व वैसे का वैसा ही है क्योंकि लोकगीतों का प्रयोग विवाह से लेकर जन्म एवं मृत्यु संस्कारों में होता है। पर्व-त्योहारों में भी लोकगीतों का महत्त्व बरकरार है और कोरकू लोग लोकगीतों को बड़े ही आनंदित होकर गाते हैं। यह उनके दैनिक प्रयोग में लायी जाने वाले क्रियाकलाओं में से एक है। गीत उत्सव का प्रतीक है इसलिए लोककथाओं की अपेक्षा में लोकगीतों का कोरकू जनजीवन में उज्ज्वल भविष्य प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :-कोरकू जनजाति की लोककथाओं के अध्ययन के दौरान पता चलता है कि इनकी लोककथाओं में तेजी से ह्रास हो रहा है। कोरकू 'कोरकू' बोली का प्रयोग करते हैं। जिसकी कोई 'लिपि' उपलब्ध नहीं है। लोककथाओं के ह्रास में कोरकू लोगों का ऐसा मानना है कि लिपि के अभाव की वजह से लोककथाओं को सहेजने में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लोककथाओं को जानने वाले अधिकांशतः कोरकू अब या तो नहीं रहे या फिर बुजुर्ग हो जाने एवं याद न रहने के कारण वे भूलते जा रहें हैं। एक समय था जब कोरकू क्षेत्र में बिजली नहीं पहुंची थी उस समय शाम ढलने के बाद सात बजे तक भोजन करके सभी बच्चे एवं वयस्क तथा प्रौढ़ वर्ग भी अपने बुजुर्गों के सामने कथा सुनने को बैठ जाते थे। लोककथा सुनाने वाले खटिया पर बैठे होते थे बाकी सभी लोग बोरा बीछाकर आसपास ही बैठ जाते थे और उनसे कथाएँ सुनते थे। यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी। यह मौखिक परंपरा थी जिसे केवल सुनकर ही याद रखा जाता था और भावी पीढ़ी को भी उसी शैली में हस्तांतरित किया जाता था। आधुनिकीकरण में तेजी आने के कारण दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तक भी आधुनिक सुविधाएं पहुँच गई हैं। ऐसे में इन नयी भौतिक संस्कृतियों का उनपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उपाध्याय , विजय शंकर एवं पाण्डेय , गया. (2001). *मानवशास्त्रीय विचारक एवं उनकी विचारधाराएँ* . दिल्ली विश्वविधालय: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय.
2. एल्विन , वेरियर. (1943). *दि एबोरिजिनल्स* . बंबई : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. चौरे , नारायण. (1987). *कोरकू का सांस्कृतिक इतिहास* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
4. चौरे , नारायण. (1989). *भारतीय जनजाति कोरकूओं के लोकगीत* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
5. दोषी , शम्भूलाल एवं त्रिवेदी , मधुसुदन. (2018). *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* . जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स.
6. पाटिल , अशोक द. (1993). *कोरकू जनजीवन* . नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन.
7. पारे , धर्मेन्द्र. (2005). *कोरकू जनजातीय गाथा ढोला कुँवर* . भोपाल: आदिवासी लोक कला अकादमी.
8. पारे , धर्मेन्द्र. (2013). *कोरकू जनजाति की कथाएँ* . भोपाल: आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी.
9. पाण्डेय , गया. (2006). *भारतीय मानवशास्त्र* . नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
10. मुखर्जी , रवीद्र नाथ. (2010). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा* . दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
11. हसनैन , नदीम. (2010). *भारतीय जनजातीय संस्कृति* . नई दिल्ली: कान्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी.
12. Gazetteer of India. (2010). *Maharashtra State Gazetteers*. Amravati District. Bombay: The Director, Govt. Printing, Stationary & Publications.
13. Pasayat, Chitrasen. (2003). *Glimpses of Tribal and Folk Culture*. New Delhi: Anmol Publication.
14. Russell, R.V. (1975). *The Tribes and Castes of the Central Provinces of India*. Delhi: Cosmo Publications. Vol (3).
15. Singh, K.S. (1998). *India's Communities*. H-M. Mumbai: Oxford University Press. Vol (5).
16. Singh, K.S. (2004). *People of India*. Maharashtra. Mumbai: Popular Prakashan Pvt. Ltd. Vol (30), Part (2).
17. Sharma, Suresh K. (2010). *Folk culture of India*. Delhi: Vista International Publishing House. Vol (1).
18. Vidyarthi, L.P. (1978). Rise of Anthropology in India. *A Social Science Orientation*. Delhi: Concept Publishing Company. Vol (1).

मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत

डॉ.षीना.वी.के
सह आचार्य
सरकारी ब्रोन्नन कॉलेज तलश्शेरी, धर्मडम.पी.ओ
कन्नूर, केरल Mob: 9744772422

सारांश -इस लेख मे मालिक मुहम्मद जाएसी के जीवनवृत तथा उनके महाकाव्य पद्मावत का संक्षिप्त परिचय दिया हैं तथा पद्मावत के भावपक्ष तथा कलापक्ष की विशेषताओ का परिचय दिया हैं।

बीज वाक्य – मालिक मुहम्मद जायसी तथा उनके कृतित्व पद्मावत का परिचय देना इसका ऊद्देश हैं

मलिक मुहम्मद जायसी का समय 1464–1542 तक है। इनका निवास स्थान जायस नगर था। इन्के मुख्य ग्रथं है पद्मावत, आखिरीकलाम, और अखरावट, आदि। मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के निर्गुण भक्तिशाखा के अन्तर्गत सूफी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि है। निर्गुण भक्ति शाखा के काव्य के दो प्रकार थे। वे है सतंकाव्यधारा और सूफी काव्य धारा।

सूफी काव्य धारा में मलिक मुहम्मद जायसी श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। अन्य सूफी कवियों में प्रमुख है मंझन, कुतुबन, उसमान, शेखनबी, नूर मुहम्मद, कासिम शाह आदि।

जायसी की काव्य प्रतिभा अत्यधिक निराली है। कहा जाता है कि जायसी विरूप था। उन्हें एक आँख तथा एक कान खराब था। वे शेरशाह के दरबार के कवि थे। कहा जाता है कि एक बार शेरशाह ने जायसी की कुरूपता देखकर हँसा था। तब जायसी ने शेरशाह से कहा कि'मोहिका हँसेसि कि कोहरंहि'। अथत् मुझ पर हँसते हो या उस इश्वर् पर जिसने मुझे बनाया है। जायसी में अनोखी काव्य प्रतिभा थी। विनम्रता के साथ-साथ अहंभाव भी उनमें थे। सूफी कवि भावात्मक रहस्यवाद के कवि थे। वे आत्मा को पुरुष और परमात्मा को स्त्री मानते थे। जायसी भी भावात्मक रहस्यवाद के कवि थे। उनकी भाषा ठेठ अवधी थी न कि तुलसीदास की तरह संस्कृत निष्ठ अवधी। जायसी ने अपने काव्य में लोकभाषा और लोककथा का आधार लिया था। उनकी वाक्य रचना व्यवस्थित नहीं। सूफी कवियों के बदले कबीर आदि संत कवियों में साधनात्मक रहस्यवाद के तत्व मिलते हैं। जायसी का लोकप्रिय काव्यग्रंथ है पद्मावत जो प्रबन्ध काव्य है। इस काव्य में रत्नसेन, पद्मावती और नागमती की कथा है। भारतीय संस्कृति परंपरा और हिन्दु धर्म आदि का इसमें प्रभाव है। फारसी हिन्दी काव्य परंपरा का भी इसमें प्रभाव है।

इसके 57 अध्याय या खण्ड है। इसमें नागमती वियोग खण्ड महत्वपूर्ण अध्याय है जिसमें नागमती के वियोग वर्णन है। यहाँ 6 ऋतुएं तथा 12 महीने आदि का वर्णन है। इसकी भाषा ठेठ अवधी थी. रत्नसेन की पत्नी थी नागमती और उसका विरह सुन्दर ढंग से चित्रित है। पद्मावत काव्य में फारसी की मसनवी परंपरा का भी प्रभाव है। भारतीय कथानक रूढियों का प्रयोग भी इस काव्य में मिलता है। लौकिक प्रेमाख्यान कविता में अलौकिक प्रेम व्यंजना मिलती है। पद्मावत काव्य की रचना 1540 ई. में हुई थी।

पद्मावत में संयोग वर्णन, और वियोग वर्णन मिलता है। रूपक तत्व की विशेषता भी इसमें मिलती है। पद्मावत में कथानक के दो भाग है जैसे पूर्व कथानक और उत्तर कथानक । पूर्व कथानक में कल्पनातत्व है और उत्तर कथानक में इतिहास तत्व है। अेत: इतिहास और कलपना का सम्मिश्रण इस काव्य में मिलते हैं।

पद्मावत की कथा– रूपकतत्व से युक्त है। चित्तौड शरीर का, रत्नसेन मन का, सिहंल द्वीप ह्रदय का, बुद्धि पद्मावती की, हीरामन तोता गुरु का प्रतीक है। साँसारिक आकर्षण का प्रतीक है नागमती। राघव चेतन और अलाउद्दीन आसुरी वृत्तियों का प्रतीक है। इस काव्य में आद्यात्मिक भावना, और रहस्यवाद के तत्व मिलते हैं। जैसे प्रस्तुत पंक्ति देख सकते हैं। "पिय ह्रदय मंह भटे न होई,को रे मिलाव कहें केहि रोई"।

इसमें प्रेमकी अभिव्यक्ति है। पद्मावत में आत्मा रूपी नायक परमात्मा रूपी प्रिया को देखने केलिए उसकी खोज में निकल पडता है। अत: यहाँ आद्यात्मिक भावना और रहस्यवाद का प्रभाव है। प्रेम मार्गी कवियों में जायसी श्रेष्ठ है। उनकी काव्य प्रतिभा अत्यंत उत्कृष्ट है।

"नयन जो देखा कँवल मा निरमल नीर सरीर, हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीरा।" रूपक तत्व के उदाहरण जायसी की कविता में मिलता है। जैसे "तन चितउर मन राउर कीन्हा हिय सिहंल बुधि पद्मिनी चीन्हा।" पद्मावत की कथा इस प्रकार है। इसमें सिंहल द्वीप के राजा गन्धर्व सेन की कन्या पद्मावती और चित्तौड गढ़के राजा रत्नसेन की प्रेमकथा है। हीरामन तोते से पद्मावती की रूप प्रशंसा सुनकर राजा विरह व्याकुल हो जाता है। और वह रानी नागमती और राज्य छोड़कर योगी बनकर सिंहलद्वीप में चलता है। अनेक विध्नों के बाद शिव की कृपा से वह पद्मावती को प्राप्त करता है। चित्तौडगढ़ लौटने पर वह अपने दरबार के पंडित राघवचेतन से वाद-विवाद में झगडा करके क्रोध् पूर्वक राघव चेतन को देश से निकालता है। राघव चेतन अलाउद्दीन को पद्मावती की रूप प्रशंसा करके चित्तौड गढ़ पर चढाई करने की प्रेरणादेता है। और रत्नसेन को धोखे से कैद करता है। पद्मावती की कुशालता और गोरा बादल की वीरता से रत्नसेन कैद से स्वतंत्र होता है। रत्नसेन लेकिन राजा देवपाल जिसने रत्नसेन की कैद के वक्त पद्मावती को फंसाने का प्रयत्न किया था उससे लड़ते हुए मारा जाता है। अंत में दोनों रिायाँ रत्नसेन की चिता में कूदकर सती हो जाती है। इस प्रकार जायसी के पद्मावत एक श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य है जिसकी अनेक विशेषताएँ होती है। हिन्दु और इस्लामी संस्कृतियों को मिलाने का कार्य जायसी में मिलता है। विरह वर्णन में फारसी साहित्य का इसमें प्रभाव है। भारतीय साहित्य की पद्दति पर बारहमासा, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद, शकुन विचार, लोक विश्वास, जादु टोना, तीर्थ, व्रत, लोक व्यवहार, आदि लोक साहित्य और परंपरा के तत्वं जायसी आदि सूफी कवियों के साहित्य में प्राप्त होते हैं सूफी काव्यों में प्रेम के साथ सौन्दर्य का सबंन्ध है। जायसी के काव्यथं पद्मावत में इसके दर्शन मिलते हैं।

निष्कर्ष :-निष्कर्ष में कह सकते हैं कि जायसी के पद्मावत दोहा चौपाई में लिखा हुआ अवधी काएक महाकाव्य है जिसकी लोकप्रियता अनुपम है। जाएसी के साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यंत प्राउढ़ हैं। उनका महाकाव्य पद्मावत भी अत्यंत स्तरीय रचना हैं।

****

सन्दर्भग्रन्थ:-
1. जायसी ग्रन्थावली –आचार्य रामचंद्रशुक्ल।

शक्ति व शान्ति एक दूसरे के पूरक

डॉ.अजय कुमार पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर
रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग
श्री मु.म.टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय-बलिया (उ.प्र.)

शक्ति एवं शान्ति एक दूसरे के पूरक हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि यह ईश व भक्त की तरह हैं जो एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। शक्ति के बिना शान्ति का और शान्ति के बिना शक्ति को प्राप्त करना संभव नहीं है। सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व शक्ति व शान्ति निरन्तर संघर्षरत थे जो चिरकाल तक संभावी होंगे। वह शक्ति पहले भी थी, अब भी है और आगे भी रहेगी। वह अकाल है। जिसका कोई अंत नहीं है। इस सृष्टि की शुरुआत हुई तो संभव है कि इस सृष्टि का अंत भी होगा। परंतु उस शक्ति की कोई शुरुआत नहीं हुई है और उसका कभी अंत भी नहीं होगा जब हृदय उससे मिलेगा तो आनंद ही आनंद मिलेगा। वह शक्ति कहां है? वह हृदय में ही है। उसकी प्यास भी हृदय में ही है और उस प्यास को मिटाने वाली शक्ति भी हृदय में ही है। परंतु जब गुरु महाराज जी की कृपा से ज्ञान मिलता है तो ज्ञान के द्वारा हृदय को उसका अहसास होता है।

चेहरा और आँखें आसपास में ही हैं ? परंतु चेहरे को देखने के लिए आईने की जरूरत है। आईने को देखने के लिए आँखों की जरूरत है और आँखों को देखने के लिए आईने की जरूरत है आईने में जो परछाई है, उसको देखेंगे तो आपको अपना ही चेहरा दिखाई देगा, किसी दूसरे का नहीं इसी को ष्अपने आपको जाननाश् कहते हैं जो चीज आपमें हैं, उसको जानिए। अपने आपको जानिए अपने आपको अगर जानेगे तो जो आपके अंदर चीज है, उसको भी जानेंगे।

मैंने जहां तक देखा है, शांति सबको चाहिए ऐसा कोई नहीं है, जिसको शांति नहीं चाहिए। सबको शांति चाहिए, पर क्यों नहीं है? क्योंकि अगर अपने अंदर वाले से प्रेम नहीं है, अपने स्वांस से प्रेम नहीं है, स्वयं के जीवन से प्रेम नहीं है तो अशांति अपने आप होगी।

जब मनुष्य नहीं था, परंतु वह शक्ति थी। उसी शक्ति के कारण पृथ्वी बनी। उसी शक्ति के कारण तारे बने। उसी शक्ति के कारण सूरज बना। उसी शक्ति के कारण पानी बना। उसी शक्ति के कारण सारी चीजों की रचना हुई और उसी शक्ति के कारण मनुष्य बना। तो मनुष्य बाद में आया।'तो पहले वह शक्ति थी। ये सारी चीजें बाद में हुईं। बात यह है कि आप उस शक्ति को जानना चाहते हैं या नहीं ? अगर आपका मन कहेगा, तो मन उसको समझ नहीं सकता, क्योंकि वह चीज मन और बुद्धि से परे है। इसलिए मन और बुद्धि उसको समझ नहीं सकती। हृदय एक ऐसी चीज है, जहां से उसको जानने की पुकार आती है। जब मनुष्य अपने जीवन में उस पुकार को स्वीकार करता है, तब वह जिज्ञासु बनता है। तब उसके अंदर सचमुच में जिज्ञासा जगती है। वह मन और बुद्धि की जिज्ञासा नहीं है। वह उस चीज को पाने की, उस चीज को समझने की, उस चीज का अनुभव करने की जिज्ञासा है, जिससे हृदय तृप्त होता है।

विचारणीय विन्दु है कि एक मधुमक्खी हर एक फूल पर जाती है। एक फूल में कितना शहद है? अगर आप एक फूल को तोड़कर उसे मसलेंगे तो उसमें से कितना शहद निकलेगा? दिखाई भी नहीं देगा कि उसमें शहद है। परंतु उस फूल को सूंघकर मधुमक्खी उसके पास जाती है और चाहे उसमें कितना भी पराग हो, उसको इकट्ठा करती है। वहां एक ही नहीं, हजारों-हजारों मधुमक्खियाँ ऐसा ही करती हैं। मधुमक्खी अपनी मेहनत से चाहे थोड़ा-सा भी शहद, थोड़ा-थोड़ा ही रस निकालकर शहद इकट्ठा करती है, परंतु कर लेती है। ठीक इसी प्रकार भक्त द्वारा शान्ति को प्राप्त करने के लिए अद्वितीय शक्तिरूपी भगवान से विविध प्रकार के तकनीकी, प्रौद्योगिकी, आध्यात्मिक इत्यादि विविध मानसिकताओं द्वारा मानव ने संघर्ष, विवाद, युद्ध करते हुए शहीद हो गए, किन्तु शान्ति को प्राप्त नहीं कर सके। शान्ति हेतु समसामयिक परिदृष्य में एन0एफ0टी0 (नॉन-फंजिबल टोकन), मेटा, ब्लाकचेन, क्रिप्टो करेंसी इत्यादि पर की दिशा में अथकनीय रूप से संघर्षरत है, जिसमें प्रमुखतः मेटावर्स एक या फिक्शनल रियलिटी स्पेस है, जिसमें उपयोगकर्ता कंप्यूटर द्वारा बनाए गए कृत्रिम वातावरण में एक स्वाभाविक और सामान्य जीवन का अनुभव करता है।

इस अत्याधुनिक वर्चुअल दुनिया में आप अपनी मर्जी के मुताबिक लगभग सभी काम कर सकते हैं। लेकिन ये सारे काम आप खुद नहीं करेंगे, आपका वर्चुअल श्अवतारश् करेगा। मेटावर्स 3डी तकनीक के जरिए यह सब संभव बनाएगा। इसका वर्चुअल स्पेस एक सामूहिक परियोजना होगी, जिसे दुनियाभर के लोगों गेमिंग उद्योग ने सबसे पहले मेटावर्स का उपयोग करना शुरू किया। इसके सहयोग से गेमिंग कैरेक्टर्स को असल इंसानों के करीब ले आने में बहुत सहयोग मिली है। दक्षिण कोरिया की एक महिला का अपनी मृत्यु हो चुकी बच्ची से मिलना हो या तमिलनाडु का एक जोड़े का आभासी जगत में विवाह करना हो या अन्य किसी भी देश या राज्य में मृत परिजन की जानकारी प्राप्त संभव हुआ है, ऐसा विचारकों का विश्वास है। इसके साथ ही विविध प्रकार के व्यसाय, संपति की खरीद-परोख्त और निवेश जैसे कार्यों में भी इसका प्रयोग हो रहा है। एआरवीआर बॉक्स के जरिए छात्र, स्कूल में अपनी भौतिक उपस्थिति भी दर्ज करा सकते हैं। वे घर बैठे विश्व के किसी भी स्थान में शिक्षा प्राप्त कर सकता हैं। इस मेटावर्स तकनीकी द्वारा शादियां, प्रेम विवाह, एकाएक मन पसंद युवा लड़के-लड़कियों को चयन, तलाक/विवाह विच्छेद किसी भी समय धोखा देने के साथ ही मन पसन्द रेस्तरॉ, लॉन, 5 स्टार होटल इत्यादि स्थानों पर मिलना विविध प्रकार की पार्टियां भी आयोजित करना सुलभ है। यह संवर्धित, आभासी और मिश्रित वास्तविकता के गुलदस्ते की तरह है। यह साथ चलने वाली एक समानांतर दुनिया है। एक स्मार्ट चश्मा पहनकर आप वर्चुअल और ऑगमेंटेड रियलिटी के अनंत आकाश में गोते लगाएंगे। इसके जरिए आप अपनी ऑफिसियल मीटिंग अटेंड कर सकते हैं, लोगों से मिल-जुल सकते हैं, शॉपिंग कर सकते हैं, यहां तक कि किसी मशहूर सेलिब्रिटी के पड़ोस में घर या जमीन भी खरीद सकते हैं। इसमें रियल टाइम गेमिंग के साथ आप डिस्को और पब जैसी फीलिंग का आनंद भी ले सकते हैं। यद्यपि कि मेटावर्स अभी अपनी शिशु-अवस्था में है। इसका प्रयोग हेल्थकेयर, रक्षा, सुरक्षा, संरक्षा के साथ-साथ रोबोटिक्स, अंतरिक्ष पारिस्थितिकीय इत्यादि क्षेत्र में भी मानव मस्तिष्क की संवेदना से अछुता नहीं है। मेरा हृदय एक फूल है और उसमें आनंद रूपी रस है। वह उस आनंद को पाने की कोशिश करता है। वह समझने लगता है कि 'मैं एक मधुमक्खी की तरह हूं। जबतक मैं जीवित हूं, मैं अपने जीवन को इस आनंद से भर सकता हूँ, इस हृदय रूपी छत्ते को आनंद रूपी शहद से भर सकता हूं। जिस दिन मेरा

ध्यान इधर-उधर होने लगेगा तो मैं उस रस को नहीं ले पाऊंगा। अगर उस रस को नहीं ले पाऊंगा तो इस छत्ते में कभी आनंद रूपी शहद इकट्ठा नहीं हो पाएगा। आपका भी जीवन है। आप भी बहुत कुछ करते हैं और सोचते हैं कि आप जो करते हैं, वह दूसरा नहीं करता है। जो आप हैं, वह दूसरा नहीं है। आपका नाम भी तो अलग है, चेहरा भी अलग है।परंतु आप जैसे भी हैं, एक तरीके से इस संसार के अंदर आपके जैसा कोई नहीं है। वास्तव में स्त्रातजिक व समरतंत्र का मूल मंतव्य शक्ति व शान्ति पर अवलंबित होने के साथ ही वैश्विक परिदृष्य में समस्त नीतियां, योजनाओं-परियोजनाओं का मूलाधार शक्ति व शान्ति ही है। शक्ति व शान्ति अनन्तकालीक है। शक्ति के महत्व को स्पष्ट करते हुए महामौर्य आचार्य कौटिल्य ने स्पष्ट किया था कि - शक्तिशाली राजा के मित्र तो मित्र बने ही रहते हैं उसके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। युद्ध का अंतिम पर्णित शक्ति ही है। जिससे शान्ति को अलंकृत किया जाता है। अतएव निष्ठापूर्वक अपने अन्तर्मन से ईष्या, द्वेष, धृणा, वाद-विवाद, संघर्ष-युद्ध को समाप्त कर शक्ति व शान्ति का एक अटूट स्तम्भ स्थापित करने हेतु संकल्पित हो।

****

संदर्भ ग्रन्थ-

1.रावत प्रेम जी- हृदय की अभिलाषा
2.डॉ. शर्मा दुर्गेश - सॉफ्टवेयर इंजीनियर, अमर उजाला, फरवरी 2022
3.अर्थशास्त्र - आचार्य कौटिल्य
4.सूचना प्रद्योगिकी- योजना 2021
5.दैनिक जागरण - अप्रैल 2022
6.अमृत्व विचार - संगणक लाल अमृत
7.स्वविचार

हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप

कनक राज पाठक
शोधार्थी
जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड Mo.9570002575

बीज शब्द - हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी मुद्रण, पत्रकारिता-मनोरंजन, पत्रकारिता का लक्ष्य

प्रस्तावना:-भारत में पत्रकारिता का श्रेय महर्षि नारद मुनि को जाता है। देवत्वकाल में नारद मुनि ने धरती लोक, पाताल और स्वर्ग लोक के बीच संवाद स्थापित किया। नारद मुनि समूचे विश्व का समाचार देवतागणों को सुनाया करते थे। इसके बाद महाभारतकालीन संवाद स्थापित किया संजय ने। महाभारत की लड़ाई का आंखों देखा हाल धृतराष्ट्र को संजय ही सुनाया करते थे। इसके बाद राजाओं और महाराजाओं के काल में शिलालेख, भोज पत्रों पर लेख, मुनादी सहित अन्य जनमाध्यमों से लोगों के बीच सूचनाओं का प्रसार किया जाता था। वैश्विक मानकों के बराबर भारत में हिन्दी पत्रकारिता का श्रीगणेश उदंत मार्तंड से माना जाता है। यह साप्ताहिक प्रकाशन था और विशुद्ध हिन्दी में इसका प्रकाशन पंडित जुगल किशोर शुक्ल करते थे। भारत में पत्रकारिता के उद्भव काल में अखबारों, पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य था ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ जनमत तैयार करना। अकबर इलाहाबादी ने यहां तक कहा है कि "खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो"। राष्ट्रीय नवीन मेल के पत्रकार वेद प्रकाश वाजपेयी जी ने कहा था कि "सूरज निकले या न निकले लेकिन अखबार को निकलना होगा"।

उद्देश्य:-"वर्तमान परिदृश्य में हिंदी और पत्रकारिता" विषय का मुख्य उद्देश्य है हिन्दी पत्रकारिता के भूत, वर्तमान और भविष्य की जानकारी हासिल करना। हिन्दी पत्रकारिता का प्रादुर्भाव किन उद्देश्यों और मिशन के साथ हुआ और यह कैसे विकसित हुआ और भविष्य में इसकी क्या क्या संभावनाएं हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में इन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है।

"वर्तमान परिदृश्य में हिंदी और पत्रकारिता"

सन 1826 से लेकर 1884 तक का समय हिंदी पत्रकारिता का उद्भव काल है। साल 1826 में 30 मई को पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत की थी। कलकत्ता से उदन्त मार्तंड नामक समाचार पत्र निकाल कर भारत में हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश किया। जिसमें उदंत का अर्थ समाचार होता है, जबकि मार्तंड का अर्थ सूर्य है। सूर्य की किरणों की तरह ही इस समाचार पत्र ने अपने विचारों को भारतीय जनमानस तक पहुंचाया है। उदंत मार्तंड हिन्दी और हिन्दवासियों का सच्चा हितैषी था। हिन्दुस्तानियों के हित के लिए यह अखबार सबसे पहले चलाया गया। इसके संपादक जुगल किशोर ने लिखा था "हिन्दी भाषा अपनी निज भाषा में समाचार पढ़कर उसका आनंद लें और इसके महत्व को समझें" यही जुगल जी की हार्दिक कामना और पत्र प्रकाशन का सर्वोच्च लक्ष्य भी था। उल्लेखनीय है कि उतंद मार्तंड भारतवर्ष में हिन्दी का पहला साप्ताहिक समाचार पत्र था। हालांकि यह समाचार पत्र डेढ़ वर्ष तक ही चल पाया। भारत में पत्रकारिता का उदभव काल निष्पक्षता और राष्ट्रवाद से ओतप्रोत था। उदाहरण के तौर पर हम भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने में अखबारों का प्रयोग, जनजागरण और क्रांतिकारी घटनाओं में देख सकते हैं। ब्रितानी हुकूमत के द्वारा भारतीयों की अभिव्यक्ति की आजादी पर तमाम प्रतिबंध लगाने के बावजूद शंखनाद, रणभेरी,

हिंदोस्थान, हरिश्चंद्र मैगजीन, बाल बोधिनी, हिंदी प्रदीप, सरस्वती, प्रताप जैसे राष्ट्रवादी समाचार पत्र निकलते रहे और जन जन की आवाज बनते रहे। आर्थिक, शारीरिक, दण्डात्मतक कार्रवाइयों के बाद भी उस समय के निर्भीक पत्रकारों ने राष्ट्रवाद, देशभक्ति और क्रांति के स्वर से सम्पकृत कर राष्ट्र के नव निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। लाख कठिनाइयों के बाद भी ऐसे देशभक्त पत्रकारों ने आज़ादी के जन जागरण रास्ता नहीं छोड़ा और माँ भारती की सेवा के लिए अपने प्राणों तक की आहुति दे दी।भारत में स्वतंत्रता के बाद हिन्दी पत्रकारिता में महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सन् 1971 तक हमारे देश में अंग्रेजी समाचार पत्रों का वर्चस्व था, लेकिन इसके अलगे वर्ष हिन्दी पत्रकारिता ने अपनी गति इतनी तीव्र कर ली कि अंग्रेजी के सभी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी भारतीय भाषाओं से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सभी समाचार पत्रों से आगे निकल गए। इस समय देश का ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहां से हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं नहीं निकलती हों।

सन् 1974 में भारत में सर्वाधिक समाचार पत्र और पत्रिकाएं हिन्दी में ही छपते थे। हिन्दी में जहां 3200 समाचार पत्र और पत्रिकाएं छपती थी वहीं अंग्रेजी की संख्या 2453 थी। वर्ष 1971 में प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार विगत दो वर्षों में हिन्दी के पत्रों की बिक्री लगभग दो लाख से अधिक बढ़ी। सन् 1971 में हिन्दी के 422, अंग्रेजी 143 और उर्दू के 107 समाचार पत्र छपते थे। प्रेस इन इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005-06 में अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी के समाचार पत्रों ने बढ़त बनाए रखा। हिन्दी में 4131 समाचार पत्र और पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है जबकि अंग्रेजी में 864, बांग्ला में 445, गुजराती 775, उर्दू में 463 और मराठी में 328 समाचार पत्रों का प्रकाशन हो रहा है।

भारतीय भाषाओं में सबसे पहले तमिल भाषा के टाइप बनाए गए। नागरी लिपि के टाइप सबसे पहले यूरोप में बने। भारत में सबसे पहले 1778 ई. में पहली बार बांग्ला भाषा का व्याकरण छपा। उसके बाद सन 1779 देवनागरी लिपि में सबसे पहली पुस्तक छपी हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण, इसे गिलक्राइस्ट ने छपवाया था। 195 साल पूर्व हिंदी पत्रकारिता के सफर पर नजर डाला जाए तो समाज और राष्ट्र में बदलाव के साथ-साथ पत्रकारिता ने ही अपने तेवर और कलेवर बदले हैं। आज हिंदी अखबारों को उद्योग का दर्जा प्राप्त है, जिसमे लाखों पत्रकार रोजगार पा रहे हैं। पत्रकारिता इतना मुखर हुई है कि आमजनों की आवाज बन कर उभरी है। शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए लोग आज भी मीडिया का ही सहारा लेते हैं। जवाबदेह पत्रकारिता लोकतांत्रिक समाज की मजबूती के लिए आवश्यक है।

हिंदी पत्रकारिता का प्रिंट से मोबाइल तक का सफर:- हिंदी पत्रकारिता का सफर कागजी दुनिया से होते हुए आकाशवाणी और फिर टेलीविजन के दौर तक पहुंचा। सुनने और देखने जैसी सुविधाओं के कारण समाचार और मनोरंजन का माध्यम अशिक्षित और कम पढ़े लिखे लोगों तक अपनी जगह बनाने में कामयाब हुआ। कम मेहनत में आमलोगों तक अपनी बात पहुंचाने में सफल हुआ है। टीवी और रेडियो के बाद अब मोबाइल ने यह स्थान ले लिया है। शुरुआती दौर में मोबाइल सिर्फ अपने परिजनों के कुशल क्षेम जानने और सम्पर्क के तौर पर कार्य करता था लेकिन मोबाइल में इंटरनेट,कैमरा, वीडियो कैमरा और अन्य की सुविधाएं आ जाने से अब यह सिर्फ सम्पर्क का माध्यम न रहकर पूरी दुनिया से अपडेट रहने का माध्यम बन गया है। कम्प्यूटर और मोबाइल में हिंदी टाइपिंग की सुविधा आ जाने से हिंदी के लेखकों, पाठकों को और भी सुविधा मिल गई है, विशेषकर तब जब मोबाइल में हिंदी यूनिकोड टाइपिंग की सुविधा मिली। आज जिसकी जेब में मोबाइल है वही खबरची की भूमिका अदा करने लगा है। सूचना प्रोद्योगिकी के इस युग में अपने आस पास होने वाली घटनाओं को सोशल मीडिया के जरिये वायरल कर दुनिया के किसी भी कोने में आंखों देखा हाल पहुंचा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी पत्रकारिता का भविष्यवाणी करना बेहद कठिन है। तकनीक इसी तेजी के साथ बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं कि पढा जाने वाला अखबार टेलीग्राम की तरह इतिहास न बन जाये। वैसे भी अखबार ई पेपर के रूप में कम्प्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल पर आ ही गए हैं। भारत जैसे बहुभाषा भासी देश में विदेशों से आई कंप्यूटर के प्रयोग एवं सीखने के तौर तरीकों में इस्तेमाल अंग्रेजी भाषा ने हम भारतीयों को शुरुआती दौर में आतंकित किया था पर भारतीय वैज्ञानिकों और यहां की भाषायी शक्तियों ने इस समस्या से जल्द ही निजात दिला दी। परिणामस्वरूप भारत के युवा मस्तिष्क ने इसका उत्तर भाषा प्रोद्यौगिकी से दिया। अनेक भाषाओं, उपभाषाओं एवं बोलियों से समृद्ध भारत के युवा वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर को ही यहां की भाषा से समृद्ध कर दिया। हिन्दी अब चुटकुले कहानियां कविता या पारंपरिक गद्य-पद्य की विधाओं की भाषा मात्र न रहकर अब सूचना प्रोद्यौगिकी के तमाम आयामों, दिशाओं और क्षेत्रों तक जुड़ गई है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत चंहुमुखी मार्ग प्रशस्त किए हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टर, बैनर, हैडंबिल, पंपलेट, विजटिंग कार्ड, दीवार लेखन, विवाह कार्ड, पुस्तक लेखन, निमंत्रण, अभिवादन पत्र, सामग्रियों की पैकिंग पर मुद्रण, स्टीकर लेखन, नाम पट्टिकाएं, विभिन्न सामग्रियों पर मुद्रण, वस्त्रों पर मुद्रण, विद्युतीय बोर्डों पर लेखन, विभागों -संस्थानों के नामोल्लेख करने वाले बोर्ड, दिशासूचक बोर्ड, सूचना देने वाले विभिन्न बोर्ड, शोध प्रबंध, टंकण मुद्रण सहित अनेक मुद्रण माध्यमों में हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है। इसका श्रेय सूचना प्रोद्यौगिकी को ही जाता है। सूचना और संचार के बढ़ते महत्व ने चेतना को जागृत करने का काम किया है। इस क्रांति ने जन जन को अद्यतन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। रेडियो, दूरदर्शन, केबल, कंप्यूटर, इंटरनेट, फैक्स, सेल्युलर, पेजर, इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर, सिनेमा, दूरभाष तथा अन्य विद्युत माध्यमों ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की है।आईआरएस के 2017 के सर्वेक्षण के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर रपट में कहा गया है कि प्रिन्ट उद्योग बढ़ रहा है। आरएनआई की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में पंजीकृत प्रकाशनों की संख्या 1,14,820 है। किसी भी भारतीय भाषा में पंजीकृत समाचार पत्र-पत्रिकाओं की सबसे अधिक संख्या हिंदी भाषा में है और यह संख्या 46,827 है, जबकि हिंदी के अलावा दूसरे नंबर पर आने वाली अंग्रेजी भाषा में प्रकाशनों की संख्या 14,365 है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (MIB) द्वारा चैनलों को लाइसेंस जारी करने की स्टेटस रिपोर्ट जारी की गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार, 31 अक्टूबर 2017 से अब तक मंत्रालय द्वारा जारी किए जाने वाले लाइसेंसों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार, 31 दिसंबर तक देशभर में मंत्रालय द्वारा स्वीकृत निजी टीवी चैनलों की संख्या 877 है। नवंबर और दिसंबर 2017 में कोई नया लाइसेंस जारी नहीं किया गया है।सरकार द्वारा वर्ष 2017 में 45 लाइसेंस जारी किए गए थे, जबकि उससे पूर्व के वर्ष में जारी किए जाने वाले चैनलों की संख्या 75 थी। यदि कुल चैनलों की बात करें तो 1099 चैनलों को अनुमति दी गई, जबकि 222 चैनलों का लाइसेंस रद किया गया था, इनमें 66 तो अकेले वर्ष 2017 में ही शामिल थे।

इनमें 44.4 प्रतिशत यानी 389 चैनल 'न्यूज और करेंट अफेयर्स' कैटेगरी में जबकि 488 चैनल 'नॉन न्यूज। इंडियन रीडरशिप सर्वे (आईआरएस) की रिपोर्ट जारी कर दी गई है। इसके अनुसार, दैनिक जागरण सात करोड़ 36 लाख 73 हजार पाठक संख्या के साथ पहले स्थान पर है, दैनिक भास्कर 5.14 करोड़ पाठकों के साथ दूसरे स्थान पर है, अमर उजाला पाठक संख्या 4.76 करोड़ के साथ तीसरे स्थान पर है। 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के आंकड़े जारी नहीं किए गए हैं क्योंकि अभी इनकी समीक्षा की जा रही है। कुछ हफ्तों बाद हिंदुस्तान समूह के आंकड़े जारी होने पर रैंकिंग में बदलाव आने के आसार हैं। इसमें शीर्ष 10 अखबारों की सूची में अंग्रेजी का केवल एक अखबार 'टाइम्स ऑफ इंडिया' है। यह अंग्रेजी अखबार एक करोड 52 लाख 36 हजार की पाठक संख्या के साथ नौवें स्थान पर है। टीवी निगरानी एजेंसी BARC (ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च काउंसिल) इंडिया के नवीनतम अनुमानों के अनुसार, भारत में लगभग 210 मिलियन घरों में अब एक टीवी सेट है, जो 2018 में 197 मिलियन से 6.9% अधिक है। टीवी दर्शकों की संख्या भी 6.7% बढ़ी, जो 2018 में 836 मिलियन से 892 मिलियन तक पहुंच गई। समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम के मुताबिक भारत में सबसे ज्यादा करीब 52 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं, इसके बाद 9.7 करोड़ लोग बंगाली, दो लाख साठ हजार लोगों ने अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बताया है।

सारांश:-कहा जाता था कि ब्रितानी हुकूमत का सूर्यास्त नहीं होता है, लेकिन भारत के क्रांतिवीरों, युवाओं, महिलाओं और जन-जन ने मिलकर ब्रितानी हुकूमत को सात समुंदर पार खदेड़ दिया। इसका श्रेय पत्रकारिता को भी जाता है। खास कर हिन्दी पत्रकारिता जिसकी पहुंच गांव, ग्रामीण और शहरी सभी लोगों तक थी, स्वतंत्रता की चिंगारी को सभी तक पहुंचाया। इसी मिशन की पूर्ति के लिए भारत में पत्रकारिता की शुरुआत हुई थी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्रताप, प्रेमचंद ने हंस, महात्मा गांधी ने नवयुग, हरिजन जैसे समाचार पत्रों का संपादन कर स्वतंत्रता की लौ हर भारतीयों के दिल में जगा दी। सैकड़ों समाचार पत्र ब्रितानी हुकूमत का नाकों दम कर दिया। अंततः 15 अगस्त 1947 को हमें आजादी मिली। इसके बाद भी हिन्दी पत्रकारिता ने अपना काम अनवरत जारी रखा। आजादी के बाद सभी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी भारतीय भाषाओं से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सभी समाचार पत्रों से आगे निकल गए। इस समय देश का ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहां से हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं नहीं निकलती हों। भारत में सबसे ज्यादा करीब 52 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं, इसके बाद 9.7 करोड़ लोग बंगाली, दो लाख साठ हजार लोगों ने अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बताया है। भारत के युवा मस्तिष्क ने इसका उत्तर भाषा प्रोद्यौगिकी से दिया। अनेक भाषाओं, उपभाषाओं एवं बोलियों से समृद्ध भारत के युवा वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर को ही यहां की भाषा से समृद्ध कर दिया।

हिन्दी अब चुटकुले कहानियां कविता या पारंपरिक गद्य-पद्य की विधाओं की भाषा मात्र न रहकर अब सूचना प्रोद्यौगिकी के तमाम आयामों, दिशाओं और क्षेत्रों तक जुड़ गई है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत चंहुमुखी मार्ग प्रशस्त किए हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टर, बैनर, हैडंबिल, पंपलेट, विजटिंग कार्ड, दीवार लेखन, विवाह कार्ड, पुस्तक लेखन, निमंत्रण, अभिवादन पत्र, सामग्रियों की पैकिंग पर मुद्रण, स्टीकर लेखन, नाम पट्टिकाएं, विभिन्न सामग्रियों पर मुद्रण, वस्त्रों पर मुद्रण, विद्युतीय बोर्डों पर लेखन, विभागों-संस्थानों के नामोल्लेख करने वाले बोर्ड, दिशासूचक बोर्ड, सूचना देने वाले विभिन्न बोर्ड, शोध प्रबंध, टंकण मुद्रण सहित अनेक मुद्रण माध्यमों में हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है।

1. **********

संदर्भ:-

1.मीडिया का विकास, नालंदा ओपन यूनिवर्सिटी प्रोफेसर अर्जुन तिवारी, पृष्ठ संख्या 93, 115,
2.सत्याग्रह वेब पोर्टल https://www.satyagrah.com/
3.समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम हिंदी पत्रकारिता दिवस: 4.चुनौतियों से चुनौतियों तक का सफर https://www.samachar4media.com/vicharmanch-news/an-article-on-hindi-journalism-day-written-by-senior-journalist-rajesh-badal-55614.html
5.सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की वेबसाइट
6.आरएनआई की वेबसाइट
7.इंडियन रीडरशिप सर्वे

दलित साहित्य का स्वरूप: प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ

डॉ.वंदना शर्मा
एम.ए.(स्वर्ण पदक)राजस्थान केंद्रीय विश्वविद्यालय, (नेट जे.आर.एफ.) एम.फ़िल. पीएच.डी (स्वर्ण पदक).- हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय
सहायक आचार्य NCERT(NIE) नई दिल्ली

वर्ग विभाजन की प्रक्रिया ने समाज को दो वर्गों में विभाजित करके रख दिया, ऐसा नहीं है की एकदम से समाज को वर्ण और वर्ग आधारित दो खाइयों में बाँट दिया गया, यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चली और अंत में जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व था वह उच्च वर्ग बन गया और जो उत्पादन के साधनों से विहिन कुनबा था उसको निम्न वर्ग करार दिया गया ।शोषण की प्रक्रिया से ही हमारे समाज में वर्गो का विभेदीकरण हो जाता है ।एक वर्ग शोषक और दूसरा शोषित ।यह जो शोषित वर्ग है उसे प्राय: दलित जैसे शब्द के आवरण में बाँध दिया जाता है ।भारतीय समाज में शोषण का यह स्वरूप भारतीय समाज में धर्म, जाति, अर्थ आदि के आधार पर किया जाता है ।दलित शब्द को लेकर खूब वाद-विवाद हुआ लेकिन मूल उद्देश्य यह है कि कोई भी दलित साहित्य चाहे वह किसी भी भाषा में लिखा गया हो उसका मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए? वह साहित्य दलित जीवन की समस्याओं को सशक्ति के साथ प्रकट करने का जिम्मा ले, तभी वह दलित साहित्य की श्रेणी में आ सकता है ।मुख्यतया: दलित साहित्य वर्णवादी, जातिवादी, मनुवादी, पुरोहितवादी, हिंदुत्ववादी सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के चिंतन अथवा मानव मुक्ति के सरोकारों के साथ समाज में व्याप्त भेदभावपरक व्यवस्था के विरोध में लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहलाता है ।हिंदी दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य शोषित, पीड़ित समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना है, वर्तमान समय का दलित लेखन दलित जीवन के उत्पीड़न, अवहेलना, निरादर, आदि के प्रति उनकी भावनाओं के साथ आस्था दिखाता है,लेकिन दलित जीवन की त्रासदी की यदि बात की जाये तो इसका वर्चस्व सम्पूर्ण भारत में विद्यमान हैं ।

अलग-अलग भाषाओं में इनकी संवेदना पर साहित्य लिखा गया, मूलतः दलित के प्रति सहानुभूति का भाव इनमें दिखाई पड़ा ।कहीं दलित लेखकों की स्वयं की स्वानुभूति थी तो कहीं सहानुभूति के रूप में साहित्य बनकर तैयार हुआ ।दलित साहित्य में गुस्सा और आक्रोश का स्वर होना लाजमी है, होना भी चाहिए क्योंकि जिस व्यवस्था के तहत ये आजादी के बाद भी यदि गुलाम बने रहे तो देश की आजादी का क्या फायेदा? आजादी के बाद संवैधानिक रूप से तो इनकों समानता मिल गई लेकिन वास्तविकता कुछ और ही थी ।समाज का वह वर्ग यह स्वीकारने को तैयार नहीं था कि दो असमान वर्ग एक साथ बैठकर भोजन कैसे कर सकतें हैं? एक ही घड़े से पानी कैसे पी सकते है? शायद इससे उनके रोब में कमी आ जाए या फिर वे अपना वर्चस्व खो दे इस मानसिकता से उच्च वर्ग अपने-आपको बाहर नहीं निकाल पा रहा था ।इस स्थिति के प्रकटीकरण का जिम्मा दलित साहित्य ने उठाया ।एक यही माध्यम था जिससे दलित जीवन की विभीषिका को प्रकट किया जा सके ।आप सहानुभूति या स्वानुभूति कह लीजिये दलित के प्रति इस साहित्य ने समानुभूति जगाई ।शाब्दिक अभिव्यक्ति के माध्यम से उनकी अनछुई, अनजानी पीड़ा को दलित साहित्य प्रकट करता है ।

वैसे भारत में पूंजीवाद, वर्णाश्रम शासन व्यवस्था, साम्प्रदायिकता हावी रहते हैं लेकिन आजादी के बाद जिस यथार्थ की कल्पना की गई थी वह शायद पूरा होने में समय लगेगा ।विश्वनाथ त्रिपाठी अपने आलेख में इस प्रकार लिखतें हैं:- "स्वाधीन भारत की प्रमुख उपलब्धियाँ दलित चेतना व नारी चेतना का प्रसार-विस्तार है ।यह काम पूरा नहीं हो पाया है ।बहुत कम हो पाया है ।बहुत अधिक होने को है ।आज दलित चेतना ही नहीं दलित शक्ति की बात की जाती है ।सभी राजनीतिक दल स्पर्धा करते हैं कि उनके यहाँ दलित कितनी अधिक संख्याँ में हैं ।यह चेतना नगरों से ज्यादा गाँवों में व्याप्त हो गई है|" भारतीय दलित साहित्य का स्वरूप काफ़ी विस्तृत है जिसके अंतर्गत संविधान में उल्लेखित लगभग सभी भाषाओं में उल्लेख किया जाता है, इसे प्राय: उत्तरी भारत की भाषाओं और दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य में विभाजित करके देखा जाता है ।दक्षिण की भाषाओं में प्रमुख रूप से तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, आदि भाषाओं का नाम लिया जा सकता है, उत्तर की भाषाओं में हिंदी गुजराती, उर्दू, पंजाबी, आदि भाषाओं में दलित साहित्य लिखा गया । सामाजिक परिवर्तन की यह क्रांति दलित साहित्य के रूप में हमारे सम्मुख आयी ।

दलित साहित्य के सम्मुख अनेक चुनौतियां हैं जिसका उसे सामना करना है उसमें सबसे पहली यह कि स्थापित व्यवस्था को सुधारना ।जो हो गया सो हो गया अब क्या करना है? यह दलित साहित्य और साहित्यकारों पर सबसे बड़ी जिम्मेदारी है ।दलित स्वयं साहित्य लिखे, उसे सामने लाये, अपना इतिहास लिखें, इन सबमें इन्हें प्रतिरोध का सामना करना पड़ सकता है ।

जिस संस्कृति की कल्पना अभिजात संस्कृति के रूप में की गई है उसको बदलना भी दलित साहित्य के लिए एक चुनौती है ।प्राचीनकाल से ही दो वर्गों की संस्कृति को बताने का प्रयास किया जाता रहा है ।उस स्थापित व्यवस्था के प्रति बनी हुई मानसकिता को परिवर्तित करना ।

दलितों के लिए सम्मानजनक स्थिति के वातावरण का निर्माण करना भी भारतीय दलित साहित्य के सम्मुख एक चुनौती है ।भारतीय वर्ण व्यवस्था में परिचालित मानसिकता, और नये मानदंड गढ़ना भी एक असहज कार्य है ।दलित साहित्य के नामकरण, दलित साहित्य की पहचान और दलित चेतना के विकास की समस्या दलित साहित्यआंदोलनों के उद्देश्य की भी प्रमुख समस्या रही है ।क्या विमर्शकार दलित जीवन के अनुकूल समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार कर पायेगा? दलित साहित्य के लेखन में सामाजिक बन्धनों से मुक्ति भी एक प्रमुख चुनौती है ।जब तक दलित समाज में व्याप्त रूढ़िवादी मानसिकता से बाहर नहीं निकल जाता तब तक दलित जीवन और लेखक दोनों के लिए ही समस्या है, दलित समाज स्वयं

अपने में ही एक और दलित ढूंढ लेता है, कि हम तो इनसे ऊपर है ।इस प्रकार की मानसिकता है ।

कई बार हिंदी में दलित साहित्य पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि यह विद्रोह का स्वर है, इसमें निराशा है, आशावादिता नहीं दिखाई पड़ती है, यह शोषितों की पुकार है ।जैसे शरण कुमार लिम्बाले लिखते है कि " मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक मिलने चाहिए|" यह भी आरोप लगाया जाता है, कि दलित साहित्य में दीन-दुखियों का आक्रोश एवं रूदन है ।दयानन्द बटरोही कहते है कि "दरअसल दलित लेखकों का आक्रोश, आक्रोश नहीं बल्कि वर्षों की चिढ़ है, यह आक्रोश, वेदना, विद्रोह, क्रोध और दीन-दुखी, उत्पीड़ित-शोषितों की अभिव्यक्ति है|" इस प्रकार की सोच दलित चेतना को आगे बढ़ने से रोकती है ।लेखकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस प्रकार की भ्रांतियों को साहित्य लेखन के माध्यम से दूर करने का प्रयास करे ।सामाजिक वेदना के परिणामस्वरूप दलित जीवन की अभिव्यक्ति हुई ।वह उनकी मूक आवाज बनकर आया ।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा सकता है कि हिंदी भाषा के साथ-साथ अन्य भाषाओं में दलित लेखन में चुनौतियां समान है बस उनका संदर्भ अलग-अलग है ।उनका प्रदेश, क्षेत्र अलग है लेकिन समस्याएं वही है ।समाजगत रूढ़ियों को भी इन्हें अपने-आप से दूर करने का प्रयास करना चाहिए ।विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से इनमें समानता लाने का प्रयास किया गया है लेकिन यह समानता इतनी जल्दी नहीं आने वाली ।इसके लिए दलित साहित्य और दलित समाज और सम्पूर्ण समाज को ग्रहण करने की भावना अपनाकर, प्राचीन रूढियों को त्यागकर दलित साहित्य और दलित जीवन का उद्धार हो सकता है ।इसके मूल में शिक्षा का भी खासा योगदान हो सकता है ।शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होकर, आर्थिक रूप से संबल होकर अपने समुदाय के हक़ के लिए लड़ सकता है ।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1.https://www.outlookhindi.com/story/magazine-1423
2.शरण कुमार लिम्बाले, 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र', पृ.सं. 20
3. दयानंद बटरोही, दलित साहित्य (वार्षिकी) (2007-2008), पृ.सं.24

संत कबीर और तुलसी के श्रीराम

रमेश प्रसाद पटेल
शोधार्थी-
(हिन्दी विभाग) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. अमित शुक्ला
शोध-निर्देशक (हिन्दी विभाग)
शा. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

शोध सारांश - कबीर के राम पर सोचते हुए मेरे मन में कई सवाल उठते हैं। कबीर के राम क्या हैं? परम्परा से आते हुए 'राम' और कबीर के राम में क्या अंतर है? कबीर विरोध और असहमति के जोश में निर्गुण राम को अपनाते हैं या इसके पीछे कोई ठोस सामाजिक कारण है? इसी सवाल से जुड़ा एक और सवाल है कि सगुण राम में ऐसी क्या अपर्याप्तता थी जिसके चलते कबीर को निर्गुण राम को चुनना पड़ा? कबीर ने निर्गुण राम की भक्ति की तो उसका विरोध हुआ क्या? अगर हाँ, तो क्यों? इस विरोध के पीछे सिर्फ भक्ति की प्रतिद्वंद्विता थी या इसके पीछे भी कोई सामाजिक कारण है? ये चंद सवाल ऐसे हैं जो कबीर के राम पर गहराई से सोचने को मजबूर कर देते हैं। कबीर के राम निर्गुण हैं, निराकार हैं, अगम्य हैं, इसकी चर्चा खूब हुई है। सगुण-निर्गुण के आध्यात्मिक विवाद से परे होकर भी क्या कबीर के राम को देखा जा सकता है? मैंने इसी प्रश्न पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

व्याख्या - कबीर के पहले और बाद में राम-भक्ति की एक परम्परा मिलती है। वाल्मीकि से लेकर तुलसी और आधुनिक काल में निराला की कविताओं में राम की गूँज मिलती है। यह जगजाहिर है कि कबीर के राम पुराण प्रतिपादित राम नहीं हैं। उनके राम और परम्परागत राम में बुनियादी अंतर है। वाल्मीकि के राम तपस्वी शम्बूक की हत्या करते हैं क्योंकि शम्बूक शूद्र हैं। भवभूति के राम भी शम्बूक की हत्या करते हैं। यह सही है कि भवभूति के राम को शम्बूक की हत्या करते समय द्वंद्व होता है, पर हत्या करते हैं। तुलसी के राम आदर्श पुरुष हैं, पर यह प्रसंग तो खटकता ही है कि उनके प्रिय भाई लक्ष्मण शूर्पणखा की नाक इसलिए काट लेते हैं कि वह प्रणय-निवेदन कर रही थी। निराला के राम पर आवरण अवतारी राम का है, पर वे मानव हैं। राम की यह उक्ति - 'मित्रवर विजय होगी न समर' राम के भगवान् चरित्र को हिलाकर रख देती है।

कबीर के राम एक 'पावरहाउस' हैं, जहाँ से वे जातिवाद से लड़ने की शक्ति लेते हैं। उनके राम अवतारी कदापि नहीं हैं -

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।।

कबीर अपने राम को अवतारी राम की छाया से भी दूर रखना चाहते हैं। उनके राम 'कमलनयन' वाले नहीं हैं, फिर भी उनकी चेतना ज्यादा मानवीय है। कबीर अपने राम के साथ मानवीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं - 'हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया'। अपने भगवान के साथ मानवीय सम्बन्ध की कल्पना करना बहुत बड़ी बात है। तत्कालीन समाज में शूद्रों के लिए मंदिर-

प्रवेश निषेध था, कुछ हद तक यह व्यवस्था आज तक बनी हुई है। वह शूद्र भगवान से प्यार करता है, पत्नी बनता है, भगवान के अपने भीतर होने की बात करता है। यह अपार क्रांतिकारिता और घोर सामाजिकता है। कबीर के राम मानवता की लड़ाई में एक विजयी झंडा हैं जिनके सामने कमलनयन वाले राम फीके पड़ जाते हैं। उनके राम किसी अवतारी राम से कम आदर्शवान् नहीं हैं। सिर्फ हमें परखने की दृष्टि और सहने की मानसिक क्षमता होनी चाहिए। कबीर राम के सहारे सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ते हैं। मुक्तिबोध ने लिखा है - ''पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर, रैदास, नाभा, सिंपी आदि-आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद की।''[1]

कबीर की चेतना अवतारी राम के साथ मेल खा ही नहीं सकती थी। वे अवतारवाद के विरोधी हैं, इसलिए निर्गुण राम को अपनाते हैं। अवतारवाद का मूल स्रोत समाज में सामंतवाद की उपस्थिति से है। तुलसी के रामराज्य से राजतंत्र का सीधा सम्बन्ध है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है, यह पुरानी मान्यता है। बाद में राजा स्वयं ईश्वर बनने लगा। अवतारवाद सामंती तंत्र का दार्शनिक आधार है। सगुण भक्ति अवतारवाद के बिना संभव नहीं है। अवतारवाद वर्णाश्रम व्यवस्था से जुड़ा होता है। कबीर भला उस अवतारवाद को कैसे स्वीकारते, जिसके मूल में वर्णाश्रम की नैतिक स्वीकृति है। अवतारी राम कबीर का अपना कैसे हो सकता था -

'दस अवतार निरंजन कहिए सो अपना न कोई'। डॉ. धर्मवीर ने लिखा है - ''इन अवतारों ने ब्राह्मणों के कल्याण के लिए भले ही अवतार लिया हो लेकिन शूद्र के उद्धार के लिए इनमें से एक भी सामने नहीं आया।''[2], कबीर अवतारवाद के विरोधी हैं तो इसके कारण स्पष्ट हैं। वे उन देवी-देवताओं के नाम मजे में लेते हैं जो मानवता की रक्षा के लिए लड़े हैं। उनके राम नरसिंह, माधव हो सकते हैं।कबीर राम को अपने शरीर के भीतर बताते हैं -

'मोकों कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में'।

वे राम को सबके भीतर बताकर एक साथ दो काम लेते हैं -

(क) भक्ति में मूर्तिपूजा, बाह्याचार और पंडित रूपी बिचौलिए से व्यक्ति बचा रहे।

(ख) चूँकि सभी के भीतर एक ही भगवान् हैं, इसलिए सभी मानव समान हैं।

कबीर सचेत कवि हैं। उन्हें पता है कि अवतारवाद की ओर ज्यों ही फिसले कि वर्णाश्रम का राक्षस दौड़ा चला आएगा। इसलिए वे बार-बार कहते हैं कि वे निर्गुण राम की भक्ति कर रहे हैं।कबीर की भक्ति में सामाजिक वेदना निहित है। वे भगवान् से प्रेम करते हैं, चौसर खेलते हैं, पर उनकी सामाजिक वेदना उभरकर सामने आ ही जाती है -

'चार बरन घर एक है रे भाँति- भाँति के लोग'।

कबीर राम से प्रेम करते-करते भटकते हैं। इस भटकन में वर्णाश्रम व्यवस्था का दर्द है। तुलसी भी राम की भक्ति करते-करते भटकते हैं, पर उनकी भटकन में वर्णाश्रम की स्थापना है। कबीर को राम के प्रेम से वेद-महिमा-मंडित सामाजिक व्यवस्था भटकाती है। तुलसी को कबीर भटकाते हैं। कबीर की भटकन में एक बड़ा उद्देश्य है। तुलसी की भटकन में राम के साथ एक छल है। वे कथा राम की करते हैं और बात वर्णाश्रम की स्थापना की करते हैं। यह छल नहीं तो और क्या...? छल करने वाला भगवान् का सच्चा प्रेमी कैसे हो सकता है? घनानंद ने लिखा है - ''अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।'' तुलसी में राम के प्रति समर्पण की भावना तब झलकती है जब वे कहते हैं कि उनमें कवि का गुण नहीं है, राम का गुणगान करना ही सब कुछ है -

''कवित्त विवेक एक नहीं मोरे।
सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरे।।''[3]

पर इस समर्पण पर संदेह तब होता है जब वे बीच-बीच में कबीर जैसे निर्गुण भक्तों को गलियाने की जगह निकाल लेते हैं। कबीर अपने राम के माध्यम से मानव में आध्यात्मिक उत्कर्ष नहीं चाहते हैं। उनके लिए महत्वपूर्ण है समाज में मनुष्यत्व का जागरण। सत्य के दो रूप बतलाए गए हैं - पारमार्थिक रूप और व्यावहारिक रूप। पारमार्थिक सत्य में व्यक्ति-व्यक्ति में भेद नहीं होता है, पर व्यावहारिक सत्य में यह भेद जरूरी है। कबीर पारमार्थिक सत्य और व्यावहारिक सत्य में एकता की बात करते हैं और समतामूलक मानवीय समाज की माँग करते हैं। मराठी कवि शरणकुमार लिम्बाले की कविता है -

''मस्जिद से अजान की आवाज आई
सब मुसलमान मस्जिद चले गए।
गिरजे की घंटियाँ बजीं
सब ईसाई गिरजे में चले गए।
मंदिर से घंटे की आवाज आई।
आधे लोग मंदिर में चले गए,
आधे बाहर ही रहे।''[4]

आधे लोग बाहर क्यों रह गए, कबीर की मूल समस्या यही है। अगर भगवान् सचमुच सबके लिए हैं तो यह भेद क्यों? कबीर को यही प्रश्न उलझाता है, सताता है। वे उस भक्ति को ही झूठा मानते हैं जो आधे लोगों को मंदिर में घुसने नहीं देती। जो भगवान् मानव-मानव में भेद करे वह सचमुच में भगवान् है क्या...? वह पत्थर की मूर्ति के सिवा कुछ नहीं। कबीर का व्यंग्य सामाजिक वेदना के चलते यहाँ कितना तीखा हो गया है -

''पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।
चाकी क्यों नहीं पूजिए पीस खाए संसार।।''[5]

कबीर की कठोरता में वह 'अकारण दंड' है, जो पग-पग पर उन्हें अपमानित करता है। वे अपनी सामाजिक स्थिति के चलते ही हिन्दू-मुस्लिम धर्मान्धता पर प्रहार करने में सफल हुए हैं। द्विवेदी जी ने लिखा है - **''वे दरिद्र और दलित थे इसलिए अंत तक वे इस श्रेणी के प्रति की गई उपेक्षा को भूल न सके। उनकी नस-नस में इस अकारण दंड के विरुद्ध विद्रोह का भाव भरा था।''**[6], तुलसी ने कबीर के राम का खूब

विरोध किया है। कबीर के 'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना....' के जवाब में वे लिखते हैं -

''तुम्ह जो कहा राम कोउ आना।
जेहि श्रुति गाब धरहिं मुनि ध्याना।।''[7]

कबीर की कविता में राम रचे-बसे हैं। तुलसी के लिए राम से भी बड़ा है राम का भक्त। फिर तुलसी कबीर का विरोध क्यों करते हैं? क्या कबीर राम के भक्त नहीं हैं? उनसे बड़ा राम का भक्त कौन हो सकता है - 'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ'। कबीर भी रामोन्मुख हैं, फिर भी तुलसी के अनुसार वे 'अधम नर' हैं। कहा जा सकता है कि तुलसी ने निर्गुण राम का विरोध किया है। पर गौर से परखा जाए तो इस विरोध का कारण उनकी निर्गुण भक्ति नहीं है। चूँकि कबीर निर्गुण राम को अपनाते हुए वर्णाश्रम-व्यवस्था पर प्रहार करते हैं, इसलिए तुलसी उनका विरोध करते हैं। यह कहा जाता है कि वाल्मीकि से लेकर तुलसी तक राम का जो रूप चित्रित किया गया है, उसमें जो बात समान है, वह है राम के जीवन की अविरल संघर्ष परम्परा। क्या कबीर के राम कम संघर्षशील हैं? सच तो यह है कि वाल्मीकि से लेकर तुलसी तक के राम का जो संघर्ष दिखाया गया है, वह काल्पनिक जगत् का है। कबीर राम के सहारे वास्तविक जगत् से टकराते हैं, लड़ते हैं -

''पंडित बाद बदंते झूठा।
राम कह्याँ दुनियाँ गति पाबै
खाँड कह्याँ मुख मीठा।।''[8]

कबीर और तुलसी के लिए सबसे बड़ी समस्या है - वर्णाश्रम। एक वर्णाश्रम को तोड़कर समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहता है, दूसरा वर्णाश्रम को बचाकर समाज को वेद-महिमा-मंडित बनाता है। तुलसी वेद की बात को समान्य जन की संवेदना में पिरोते हैं। प्रो. मैनेजर पांडेय ने बहुत ही सही लिखा है - ''वे (तुलसी) एक ओर वैदिक-पौराणिक परम्परा के लिए लोकमत में जगह बनाते हैं तो दूसरी ओर उस परम्परा में और लोकमत में अपनी जगह सुनिश्चित करते हैं।''[9] कबीर के यहाँ राम वर्णाश्रम से जिरह करने का माध्यम हैं, तुलसी के यहाँ राम वर्णाश्रम को स्थापित करने का साधन हैं। वे ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रवक्ता नजर आते हैं। तुलसी भक्ति के क्षेत्र में मानव को समान मानते हैं, पर सिर्फ भक्त तक ही। भक्ति के बाहर वे ब्राह्मण को पूज्य और शूद्र को अधम घोषित करते हैं। मुक्तिबोध ने तुलसी की भक्ति-भावना के क्षेत्र में मानव को समान मानते हैं, पर सिर्फ भक्त तक ही। भक्ति के बाहर वे ब्राह्मण को पूज्य और शूद्र को अधम घोषित करते हैं। मुक्तिबोध ने तुलसी की भक्ति-भावना को परखते हुए लिखा है - ''तुलसी को भक्ति का यह मूल तत्व तो स्वीकार करना ही पड़ा कि राम के सामने सब बराबर हैं, किन्तु चूँकि राम ने ही सारा समाज उत्पन्न किया है, इसलिए वर्णाश्रम धर्म और जातिवाद को तो मानना ही होगा।''[10]कबीर जिस समाज की स्थापना करना चाहते हैं, वह तुलसी के लिए कलियुग है। तुलसी ने कलियुग के लक्षण गिनाए हैं -

(क) स्त्रियाँ स्वतंत्र हो जाती हैं।
(ख) शूद्र अपने अधिकार की बात करने लगते हैं।

सच तो यह है कि जिस व्यवस्था को तुलसी कलियुग कहते हैं, शूद्र और नारी की दृष्टि से वही सतयुग है। वे सतयुग के संस्थापक को दंभी, पाखंडी, अधम क्या-क्या कह डालते हैं। कबीर अपने राम के माध्यम से ऐसा सतयुग लाना चाहते हैं जहाँ 'एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मनुष्य की हैसियत से मिले'। तुलसी इससे बहुत क्षुब्ध हैं। उनकी नाराजगी इस दोहे में मुखर हो रही है -

''कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निजमति कल्पि करि प्रगट किए बहुपंथ।।''[11]

तुलसी ने रामराज्य के जंजाल में अपने मत को पिरोकर अपने मत को इस तरह पेश किया है कि एक दृष्टि में वे जनवादी लगते हैं लेकिन उनके रामराज्य की मूल अवधारणा में वर्णाश्रम की प्रतिष्ठा है। शुक्ल जी ने लिखा है - ''गोस्वामी जी के समाज का आदर्श वही है जिसका निरूपण वेद, पुराण, स्मृति आदि में है; अर्थात् वर्णाश्रम की पूर्ण प्रतिष्ठा।''[12] अब एक और भक्त कवि सूर की चर्चा की जाए। सूर ने निर्गुण भक्ति के विरोध का एक अलग रास्ता अपनाया है। भ्रमरगीत का उद्धव-गोपी संवाद तपते प्रेम की मनोगाथा है, इसमें संदेह नहीं। पर इस तपते प्रेम में निर्गुण भक्ति को किस तरह झलसाया गया है, यह देखने लायक है। भ्रमरगीत में अनेक पद निर्गुण भक्ति की निस्सारता को लेकर लिखे गए हैं। सूर ने निर्गुण के विरोध का ललित रास्ता अपनाया है, तुलसी की तरह आक्रामक शैली का नहीं। 'निरगुन कौन देस को बासी' कहकर सूर क्या कहना चाहते हैं? 'निरगुन कौन देस को बासी' और 'कबीर विदेशी परम्परा के भक्त थे', ये दोनों पंक्तियाँ दो रचनाकारों की हैं। पहली पंक्ति सोलहवीं शताब्दी का कवि लिखता है और दूसरी पंक्ति बीसवीं शताब्दी का एक आलोचक (शुक्ल जी)। दोनों में यह समानता क्यों? कबीर की कविता श्रमिक संस्कृति की कविता है। वे काम करते हुए राम का नाम लेने में विश्वास करते हैं। कबीर के राम आलसी, इधर-उधर भगवान् की खोज करने वालों को नहीं मिलते। उनके राम को निस्पृह, निश्छल प्रेम से ही पाया जा सकता है। कबीर उस राम को महत्वपूर्ण नहीं मानते जो खुद मंदिर में सोता है और व्यक्ति को समाज निरपेक्ष होकर भक्ति करना सिखाता है। वह पत्थर की मूर्ति के सिवा कुछ नहीं। कबीर ही इस बात की घोषणा कर सकते थे कि पत्थर की मूर्ति से महत्वपूर्ण चक्की है, जिससे अनाज पीसकर आदमी खाता है। तुलसी को श्रम का महत्व कहाँ पता? उनकी यह पंक्ति श्रम को झुठलाती है -

''माँगि के खैबो, मसीत को सोइबो।।''[13]

तुलसी माँगकर खाने और मस्जिद में सोने की बात करते हैं। तुलसी जैसे हिन्दू प्रेमी कवि मस्जिद में सोने की बात करते हैं। यह मुहावरा मंदिर के साथ क्यों नहीं बना है? मंदिर के साथ यह छूट हो ही नहीं सकती। कबीर के राम उन्हें काम करना सिखाते हैं। तुलसी सिर्फ राम का गुणगान करके ही संतुष्ट हो जाते हैं। निर्गुण भक्तों के यहाँ श्रम महत्वपूर्ण है। तुलसी भी रामराज्य की यूटोपिया रचते हैं, लेकिन उनका रामराज्य भी श्रेणीगत समाज

को अपनाकर ही बना है। मेरे मन मे एक और सवाल उठता है कि कबीर न हुए होते तो 'मानस' का स्वरूप क्या होता? तुलसी का वर्णाश्रमी उत्साह 'कवितावली' में ठंडा क्यो पड़ गया है? हालाँकि ये प्रश्न बेतुके हैं, पर संदेह को पुष्ट करने के लिए कभी-कभी बेतुके प्रश्न भी काम के होते हैं। 'रामचरितमानस' विजयी मन की गाथा है तो 'कवितावली' हताश मन की अभिव्यक्ति। हिन्दी आलोचना में भी कबीर का विरोध खूब हुआ है। वे निर्गुण राम को अपनाते हैं और अवतारी राम का विरोध करते हैं, केवल इसलिए उनकी खरी-खोटी आलोचना नहीं हुई है। यहाँ कबीर आलोचना का शिकार हुए हैं तो इसके पीछे भी मूल कारण है - वर्णाश्रम का विरोध। कबीर की वाणी 'अटपटी' है तो निश्चित रूप से राम भी अटपटे हैं। पर वह अटपटा राम पुराण-पोषित विद्वानों के सिर का दर्द बना हुआ है। कबीर के 'प्रतिद्वंद्वी' और 'नाना पुराण निगमागम' के मर्मज्ञ कवि तुलसी को रामचरितमानस लिखने का अतिरिक्त बोझ उठाना पड़ता है। कबीर की वाणी अटपटी नहीं है। कबीर जो कहते हैं, वह विद्वानों को अटपटा लगता है। कबीर निर्गुण राम को अपनाते हैं और 'विधि विरोधी' हो जाते हैं।

कबीर भारत के राम को अपनाते हुए भी विदेशी सिद्ध किए जाते हैं। कबीर पर 'लोक विरोधी' होने का आरोप लगाया जाता है। पर क्या कबीर अपने राम के द्वारा समाज को तोड़ने की बात करते हैं जो उन्हें लोक विरोधी कवि सिद्ध किया गया है? शुक्ल जी जायसी को कबीर की तुलना में विधि पर आस्था रखने वाला और भारतवर्ष का कवि मानते हैं।

कबीर सौ प्रतिशत भक्त थे। राम उनका सहारा हैं। उनके निर्गुण राम अपनाने का उद्देश्य क्या है, यह देखना ज्यादा महत्वपूर्ण है। उनकी भक्ति का लक्ष्य क्या था, इसकी जाँच की जानी चाहिए। तत्कालीन समाज में अपनी बात कहने का 'भक्ति' एक आधार थी। चूँकि उस समाज में भक्ति या राम के सहारे ही लोग अपने आपको श्रेष्ठ घोषित करते थे, इसलिए कबीर ने राम को अपनाया, भक्ति का जवाब भक्ति से दिया और परंपरा से आती हुई भक्ति की परिभाषा बदल दी। वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ को विद्वान माना जाता था। कबीर ने इस मान्यता को उलट दिया - 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय'। जिस 'मानुष सत्य' के लिए कोई व्यक्ति भक्ति करता है, वह 'फोकट का माल' कैसे हो सकता है? 'कबीर व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे', पर इस साधना का उद्देश्य व्यक्ति, समाज को बदलना ही तो था।

कबीर और उनके राम पर सोचने में उनको दिक्कत होती है जो भक्ति और भगवान् पर ब्राह्मणों के एकाधिकार के पूर्वग्रह से ग्रसित हैं। उन्हें यह प्रश्न बार-बार परेशान करता है कि कबीर ने ब्राह्मणी भक्ति, बाह्याचार आदि का विरोध किया तो फिर 'राम' को क्यों अपनाया? राम किसी की निजी सम्पत्ति नहीं हैं। एक ब्राह्मण का राम नाम पर जितना अधिकार है, उतना ही एक शूद्र का। अपने उसी ईश्वर को खोज रहे थे, खोज चुके थे। उनकी मानवता की लड़ाई में राम एक उत्तम टेक्नोलॉजी से बनी 'मिसाइल' हैं। भारतीय समाज के लिए 'राम' शब्द एक बहुप्रचलित ट्रेडमार्क की तरह है जिस ट्रेडमार्क का सहारा लेते हुए कबीर अपनी क्रांतिकारिता दिखाते हैं। कबीर को अपनी बात दार्शनिक नहीं, सामाजिक आधार पर कहनी थी। जायसी ने भी प्रेम का वैश्विक रूप दिखाने के लिए भारतीय लोककथा का सहारा लिया है। कबीर-तुलसी उनके राम पर हिन्दी आलोचना द्वंद्व में फँसी है। सगुण- निर्गुण की चक्की में इस तरह इनको पीसा जाता है कि उनकी मूल संवेदना दब जाती है। प्रो. मैनेजर पांडेय ने लिखा है - ''विरोधी विचार का पहले पूर्ण विरोध किया जाता है। यदि विरोध से वह नष्ट नहीं होता तो उसे विकृत किया जाता है। अगर वह विरोध और विकृति की प्रक्रिया को झेलते हुए जीवित रहता है तो उसके विद्रोही स्वर को दबाकर उसे आत्मसात कर लिया जाता है।'[13] कहीं कबीर के साथ यही साजिश तो नहीं हो रही है? आधुनिक समाज के निर्माण में कबीर की कविता कितना खाद-पानी देती है, यह देखना ज्यादा जरूरी है। सामंती समाज में रहते हुए भी कबीर वह सब कुछ कर चुके हैं जो आज की 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के युग में निर्भयता के साथ करना संभव नहीं है। अगर कोई साहस दिखाता है तो 'तस्लीमा नसरीन' बनने का खतरा बना रहता है। कबीर ने समाज और सत्ता के अगुओं की खुलकर आलोचना की। सामाजिक न्याय की लड़ाई में राम कबीर के 'सारथी' हैं। यह लड़ाई अभ खत्म नहीं हुई है। पाश की कविता है -

''हम लड़ेंगे
जब तक दुनिया में
लड़ना जरूरी है।
हम लड़ेंगे
कि लड़े बिना
दुनिया में कुछ भी नहीं मिलता।''[14]

तुलसीदास सगुण शाखा के भक्तकवि हैं। उनके आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम है। अवधी भाषा में लिखा गया ''रामचरितमानस'' तुलसी की कीर्ति का मूल आधार स्तम्भ हैं। यह सुप्रसिद्ध महाकाव्य है, जिसमें राम-कथा सात काण्डों में विभक्त है। वि.सं. 1631 में रामनवमी के दिन तुलसी ने ''रामचरितमानस'' की रचना प्रारंभ की। दो वर्ष, सात महीने, छब्बीस दिनों में ग्रंथ की समाप्ति हुई। वि.सं. 1633 में मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये। तुलसी न सिर्फ अनन्य रामभक्त थे, परंतु अपने समय के जागरुक लोकनायक भी थे। वे शील,सौंदर्य और शक्ति के उपासक थे। तुलसी की भक्ति भावना में लोक-मंगल की प्रबल भावना है। उनके आराध्य राम शील, सौंदर्य और शक्ति तीनों के गुण सागर है।

निष्कर्ष - कबीर के राम और तुलसी के राम अलग-अलग है। कबीर के राम निर्गुण ईश्वर है, निराकार ब्रह्म हैं। वे न तो दिखायी देते है, न रूप, रंग, आकार सम्पन्न है। वे न तो मूर्तिपूजा के रूप में विद्यमान हैं, और न कहीं अवतार धारण करते हैं।

वे तो सर्वव्यापी हैं, अणु-अणु में बसे हुए निर्गुण, निराकार परब्रह्म है, जिन्हें कबीर राम कहकर पुकारते है, जब कि तुलसीदास के राम सगुण ईश्वर है; साकार भगवान है, जिन्होंने राजा दशरथ के घर अवतार धारण किया है। तुलसी के राम राजा के पुत्र है, जो श्रेष्ठ मानव है। शील, सौंदर्य और शक्ति से सम्पन्न राम तुलसी के आराध्य है जो मर्यादा पुरुषोत्तम राम है। तुलसी ने अपने महाकाव्य में राम के विभिन्न रूप जैसे कि आदर्श मानव. आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श वीर, आदर्श पिता को चित्रित किया है। तुलसी के ''रामचरितमानस'' और राम का प्रभाव मैथिलीशरण गुप्त के ''साकेत'' और राम पर पड़ा है। तुलसी के राम परब्रह्म, विष्णु के अवतार और मर्यादा पुरुषोत्तम है। गुप्तजी ने कहा है कि ''रामचरित मानस'' के राम ''साकेत'' में नायकों के भी नायक और सबके शिक्षक अथवा शासक के रूप में प्रतिष्ठित है।

तुलसी के राम''हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल के भक्तिकाल की सगुण भक्ति काव्यधारा की रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी की अद्वितीय कवि प्रतिभा है। इनका जन्म वि.सं. 1589 में उ.प्र. के बाँदा जिले के राजापुर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। इनके बचपन का नाम ''रामबोला'' था। इनके गुरू का नाम नरहरिदास था। तुलसीदास का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ। रत्नावली की मधुर भर्त्सना से वे रामभक्ति की ओर मुड़े।

****

संदर्भ:-

1.नेमिचंद्र जैन (सं.), मुक्तिबोध रचनावली, भाग - 5, पृ. 290
2.डॉ. धर्मवीर, कबीर के आलोचक, पृ. 31
3.आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 92
4.डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, पृ. 11
5.प्रो. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 35
6.नेमिचंद्र जैन (सं.), मुक्तिबोध रचनावली, भाग - 5, पृ. 292
7.आचार्य रामचंद्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 24
8.प्रो. नामवर सिंह, दूसरी परम्परा की खोज, पृ. 57
9.आचार्य रामचंद्र शुक्ल (सं.), जायसी ग्रंथावली, पृ. 122
10.नेमिचंद्र जैन (सं.), मुक्तिबोध रचनावली, भाग - 5, पृ. 292
11.आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. 220
12.डॉ. वीर भारत तलवार, पल प्रतिपल (पत्रिका, अंक-42, लेख-कबीर पर कब्जे की लड़ाई), पृ. 56
13.डॉ. धर्मवीर, हंस (पत्रिका, अंक मार्च 1998, लेख-अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर), पृ. 53
14.प्रो. मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ. 26
15 मध्यकालीन हिन्दी कविता, सं. रोहित उपाध्याय और डॉ. हसमुख बारोट, पृ.69

माड़ा की गुफाओं का अध्ययन

डॉ. गोविन्द बाथम
सहायक प्राध्यापक -इतिहास,
शासकीय महाविद्यालय माड़ा, जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

मध्य प्रदेश के सिंगरौली जिले में स्थित माला तहसील के पास यह पुरातात्विक गुफाएं स्थित है यहां पर ठोस चट्टानों को काटकर इन गुफाओं का निर्माण किया गया है यह गुफाएं का निर्माण कार्य शुंग काल में किया गया और परवर्ती गुप्त और कल्चर कल में इन गुफाओं का उपयोग सब और वैष्णव संप्रदाय द्वारा किया गया प्रस्तुत शोध पत्र में पुरातात्विक सर्वेक्षण के आधार पर इन गुफाओं का अध्ययन किया गया है:-

गणेश माड़ा गुफा समूह माड़ा तहसील में शासकीय महाविद्यालय माड़ा के पास स्थित है। इस समूह में एक पहाड़ी की पश्चिमी ओर ठोस पहाड़ी को काटकर गुफाओं का निर्माण किया गया है। गणेश गुफा में प्रवेश द्वार चार स्तंभों पर आधारित है, जो की सादा है, जिसके अंदर आयताकार कक्ष है जिसमें एक ओर 16 भुजी नटराज प्रतिमा का अंकन किया गया है। अंदर चार स्तंभों पर आधारित प्रदक्षिणा पथ है व मध्य में एक कक्ष बना हुआ है जो कि खाली है, गुफा की बनावट को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त गुफा का निर्माण शुंग काल में हुआ होगा एवं ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य अंतर काल के बाद बौद्ध भिक्षुओं के दल धर्म प्रचार के लिए भिन्न-भिन्न रास्तों से दक्षिण की ओर गए होगे उनही बौद्ध भिक्षुओ के दलों को स्थानीय शासको द्वारा ठोस चट्टानों को काटकर इन गुफाओं का निर्माण कराया गया है जो परवर्ती काल में बौद्ध धर्म का पतन होने पर अन्य संप्रदायों द्वारा उपयोग में लाई गई होगी। पहाडी के मध्य भाग में भी कई गुफाएं निर्मित की गई है जो समकालीन है। व शीर्ष पर मंदिरों एवं शिवलिंगो के अवशेष प्राप्त होते हैं जो की गुप्तोत्तरकालीन छठवीं-सातवीं शताब्दी के प्रतीत होते हैं।

हनुमान माड़ा गुफा समूह:- यह गुफा समूह गणेश माड़ा के विपरीत दिशा में पूर्व की ओर पहाडी की तलहटी मे स्थित है, मुख्य गुफा एकाश्मक है और अंडाकार है जिसमें प्रवेश करने के लिए एक ही प्रवेश द्वार है जो की काफी छोटा और सकरा है, जिसमे लगभग अन्दर की ओर 5ग्10 फिट का आयताकार कक्ष है, तथा इसके पीछे पृष्ठ भाग में 6ग्6 फिट का कक्ष बना हुआ है जिसके मध्य में एक शिवलिंग स्थापित कर दिया गया है। आयताकार कक्ष के उत्तरी भित्ती पर लगभग 5 फिट ऊची व 16 भुजी नटराज प्रतिमा का अंकन किया गया है, जो कि सिंदर से लेपित है और वर्तमान में जन सामान्य द्वारा उसकी पूजा देवी के रूप में की जा रही है। इस गुफा का निर्माण काल सुंगकालीन प्रतीत होता है तो प्रवर्ती काल मे अन्य सम्प्रदाय द्वारा पूजा के उपयोग मे लाए गए।

सदा शिव गुफा:- यह गुफा हनुमान माड़ा के पास ही स्थित है और प्राकृतिक रूप से निर्मित है, जिसे वर्तमान मे श्रद्धालु ब्रह्म

गुफा कहते हैं, इस शैलकृत गुफा में सदा शिव प्रतिमा के शीर्ष भाग का ही अंकन किया गया है, जो कि लगभग 6 फीट ऊंचा है। प्रतिमा मे सदा शिव त्रिमुखी है, जिसमें सम्मुख मुख सौम्य, दाएं मुख विकराल व बांये सामान्य है। उक्त प्रतिमा जलवायु व अन्य कारणो से क्षरित हो रही है, जन सामान्य द्वारा इस प्रतिमा को भी सिंदूर से लेपित कर दिया गया है व पूजा अर्चना की जाती है। इसके अतिरिक्त इन गुफाओं के पास ही गौरी गणेश, कार्तिकेय की प्रतिमाओं का अंकन चट्टानों में किया गया है। सदा शिव प्रतिमा का काल 6वी. सदी ईस्वी0 का प्रतीत होता है व अन्य प्रतिमाओं का काल 8वी.- 9वी. सदी ई0 का प्रतीत होता है। पहाड़ी में इस दिशा में चट्टानों के मध्य कई गुफाओं का निर्माण किया गया है।

जल जलिया गुफा मंदिर:-

यह गुफा मंदिर माड़ा तहसील से 500 मीटर की दूरी पर घने वन में स्थित है यहां पर प्राकृतिक रूप से निर्मित गुफा के ललाट बिम्ब पर लक्ष्मी नारायण प्रतिमा का अंकन किया गया है, जो सर्पफणयुक्त है, गुफा की दाएं ओर की भित्ति पर शुंगकालीन ब्राह्मी लिपि में एक लाइन का संक्षिप्त लेख उत्कीर्ण था जो पुजारी द्वारा चुने के रंग से लगातार पुताई करने से क्षरित हो गया है। संजय गाँधी महाविद्यालय सीधी के इतिहास के प्रोफेसर सन्तोष सिंह नें और जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर के रिटायर्ड प्रोफेसर शिवकान्त द्विवेदी नें 90वे के दशक मे इस क्षेत्र के सर्वेक्षण के दौरान यह अभिलेख देखा था। जिससे यह स्पष्ट होता है इन गुफाओ का निर्माण सुंगकाल मे हुआ होगा। यहां पर कई प्रतिमा खंड रखे हुए हैं जिसे जन सामान्य जलजलिया माई के रूप मे पूजते हैं। जलजलिया गुफा के बाई ओर एक प्राचीन बावड़ी बनी हुई है जो वर्तमान में भग्न अवस्था में है और कलचुरी कालीन प्रतीत होती है। गुफा के पास ही सघन वन मे जाने पर पर भूताली कुंड है, जिसके मार्ग में कई एकात्मक प्रस्तर के भाग, मंदिर व प्रतिमाएं हैं जो शिव परिवार से संबंधित है जो कलचुरी कालीन आठवीं-नौवीं सदी की प्रतीत होती है।

रावण माड़ा:-

यह गुफा माड़ा तहसील से बिंदुल मार्ग पर 1 किलोमीटर की दूरी पर मुख्य मार्ग के सामने स्थित है और पूर्व मुखी है गुफा के प्रवेश द्वार चार स्तंभों पर आधारित है और बनावट में सादे हैं। गुफा में एक आयताकार कक्ष और एक कक्ष मध्य में बना हुआ है। आयताकार कक्ष की दाईं भित्ती पर सिर पर कैलाश पर्वत को धारण किए हुए रावण की प्रतिमा का अंकन है। पर्वत पर शिव पार्वती विराजमान है इस प्रतिमा के रावणनुग्रह प्रतिमा कहा जाता है। इसी से इसका नाम रावण माड़ा पड़ा होगा। गुफा मुख्य कक्ष के दांए-बांए तीनो ओर प्रदक्षिणापथ बना हुआ है जिसके दाएं-बाएं दो-दो छोटी कोठारियों का निर्माण किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त गुफा का निर्माण शुंग काल में बौद्ध भिक्षुओं के निवास स्थान बिहार के रूप मे हुआ होगा। जो कालांतर में परिवर्तित होकर शासको द्वारा अपने पूजा स्थल के रूप में उपयोग में लाई गई। इस गुफा के पास ऊपर की ओर अन्य गुफाओं का भी निर्माण किया गया जो समकालीन है।

धोला गिरी शैलकृत गुफा समूह:-

यह शैलकृत गुफा समूह सिंगरौली जिले की चितरंगी तहसील में सुदूर क्षेत्र में स्थित है इसकी जिला मुख्यालय से दूरी लगभग 135 किलोमीटर है यहां पर कैमूर पठार के शीर्ष पर चार गुफाओं का समूह है, जो प्राकृतिक रूप से निर्मत है। जिसमें से एक गुफा में मध्य पाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक के चित्रों का अंकन लाल व रेरूआ रंग से किया गया है। इन चित्रों में जानवरों शिकार करते हुए मानव, का अंकन किया गया है। यह चित्र लगभग 10000 वर्ष से लेकर ऐतिहासिक काल के है। इस गुफा को हम गुफा क्रमांक 3 कह सकते है। गुफा क्रमांक 1 वह 2 में कोई चित्र नहीं है। इन्हीं गुफाओं में से गुफा क्रमांक 4 में लगभग 1 मी मोटा लूज ग्रेवल जमाव प्राप्त हुआ है, जिसका उत्खनन किया जाए तो पुरापाषाण काल के उपकरण व अन्य जानकारियां प्रकाश में आ सकती हैं.

****

Exploring Secondary School Students' Learning Styles and Their Impact on Achievement in Social Sciences

Dr. Rajkumari Gola
Assistant Professor
Department of Education School of Social Sciences
IFTM University, Moradabad E-mail id: drrkgola2021@gmail.com

Abstract:
Education is a dynamic process involving various factors that influence students' learning experiences and academic achievements. One critical factor among these is learning styles, which play a pivotal role in shaping how students absorb, process, and retain information. This article delves into the realm of secondary school students, focusing on their learning styles and examining how these impact achievements in social sciences. Through an in-depth review of literature and empirical studies, we aim to illuminate the diverse learning styles exhibited by students in secondary education and explore how educators can tailor their teaching strategies to enhance academic outcomes in the field of social sciences.

Key Words: Learning Styles, Achievement, Social Sciences, Teaching.

Introduction: Education is a multifaceted journey, and the secondary school stage represents a critical phase in a student's intellectual and social development. Social sciences, encompassing subjects like history, geography, economics, and sociology, provide a foundation for understanding human behavior, societies, and the interconnectedness of global issues. The effectiveness of education in these subjects is not only influenced by the content but also by the diverse learning styles exhibited by students. Learning styles encompass the unique and preferred approaches individuals take when acquiring new knowledge and skills. Each student possesses a distinctive combination of cognitive, affective, and physiological factors that shape their learning preferences. Recognizing and comprehending these learning styles can significantly enhance the effectiveness of educational strategies, catering to the diverse needs of students. This article delves into the meaning and nature of students' learning styles, emphasizing the importance of personalized learning experiences. Learning styles refer to the unique ways individuals prefer to approach and engage with learning tasks. Scholars have identified various models to categorize these styles, such as the VARK model (Visual, Auditory, Reading/Writing and Kinesthetic) and Gardner's Multiple Intelligences framework. Understanding the learning styles of secondary school students is crucial for educators to create inclusive and effective teaching strategies.

Exploration of Learning Styles: Learning styles encapsulate the diverse methods by which individuals' process, retain, and apply information. Scholars have proposed various models categorizing these styles; some emphasize sensory modalities like visual, auditory, and kinesthetic preferences, while others consider cognitive processes such as analytical, intuitive, reflective, and active learning. Furthermore, learning styles may be influenced by cultural background, personality traits, and prior experiences, creating a multifaceted framework for understanding how students engage with educational content.

Nature of Learning Styles: In recognizing the significance and characteristics of students' learning styles is crucial for creating inclusive and effective educational experiences. By acknowledging and embracing the diversity in learning preferences, educators can cultivate an environment that nurtures individual strengths, fostering a love for learning that extends beyond the classroom. As we celebrate one year of knowledge sharing, let us continue to explore innovative ways to cater to the unique needs of each learner, ensuring a brighter future for education.

Visual Learners: These individuals comprehend

information best through visual aids like charts, graphs, and images. Utilizing color coding, mind maps, and multimedia presentations enhances their learning experience.

Auditory Learners: Auditory learners excel in environments where information is presented verbally. Techniques such as group discussions, lectures, and verbal explanations are tailored to their learning style.

Kinesthetic Learners: Kinesthetic learners thrive through hands-on experiences and physical activities. Incorporating practical exercises, experiments, and interactive simulations supports their comprehension.

Analytical Thinkers: Analytical learners prefer systematic and logical approaches to learning. They thrive on structured materials, problem-solving activities, and exercises that promote critical thinking.

Intuitive Learners: Intuitive learners rely on instincts and insights, often seeking connections between concepts. Engaging them with creative and open-ended tasks, brainstorming sessions, and case studies aligns with their learning style.

Reflective Learners: Reflective learners benefit from contemplation and thoughtful analysis. Journaling, self-assessment, and opportunities for quiet reflection contribute to their learning process.

Active Learners: Active learners thrive in participatory and dynamic learning environments. Group projects, hands-on activities, and collaborative discussions effectively engage them.

Importance of Recognizing Learning Styles:

Personalized Learning: Tailoring teaching methods to students' learning styles enhances engagement and understanding.

Effective Communication: Understanding students' preferences enables educators to communicate information in a way that resonates with each individual.

Reduced Frustration: Recognizing diverse learning styles reduces frustration and facilitates a positive learning experience for students.

Varied Teaching Strategies: Educators can employ a variety of teaching strategies to accommodate different learning styles within a classroom setting.

Learning Styles and Their Classification:

The VARK Model: The VARK model categorizes learners into four main styles based on their preferences: Visual, Auditory, Reading/Writing, and Kinesthetic. Visual learners comprehend information through visual aids, charts, and diagrams. Auditory learners prefer listening to lectures and discussions. Reading/Writing learners excel in written tasks, while kinesthetic learners thrive in hands-on, experiential learning.

Gardner's Multiple Intelligences: Howard Gardner's theory posits that intelligence is not a singular entity but a combination of multiple intelligences. These include linguistic, logical-mathematical, spatial, musical, bodily-kinesthetic, interpersonal, intrapersonal, and naturalistic intelligences. Educators must recognize and cater to the diverse intelligences present in their classrooms.

Empirical Studies on Learning Styles and Social Sciences Achievement:

Visual Learners in Social Sciences: Research indicates that visual learners often excel in subjects like geography and history, where maps, charts, and visual aids enhance comprehension. Educators can leverage visual stimuli to engage students and improve their understanding of complex social science concepts.

Auditory Learners and Social Sciences: Auditory learners may benefit from discussions, debates, and audio-visual resources in subjects like sociology and economics. Group activities and presentations can be effective strategies to cater to the preferences of auditory learners.

Reading/Writing Learners in History and Economics: Students with a preference for reading/writing may excel in subjects that require extensive reading, writing essays, and analytical thinking. Incorporating essay assignments, research projects, and written reflections can enhance the learning experience for these students.

Kinesthetic Learners in Geography and Sociology: Kinesthetic learners thrive in subjects like geography and sociology when provided with hands-on experiences and real-world

applications. Field trips, simulations, and interactive projects can significantly enhance their understanding of social sciences.

Challenges and Strategies in Addressing Diverse Learning Styles:

Classroom Challenges: Educators face challenges in catering to diverse learning styles within a single classroom. Limited resources, time constraints, and large class sizes can impede the implementation of personalized teaching strategies.

Strategies for Inclusive Teaching: Implementing differentiated instruction, incorporating multimedia resources, and providing varied assessment methods are strategies to accommodate diverse learning styles. Collaborative learning, flexible grouping, and project-based assessments can create an inclusive learning environment.

Conclusion: In conclusion, understanding secondary school students' learning styles is pivotal for educators aiming to enhance achievement in social sciences. Recognizing the diverse preferences of visual, auditory, reading/writing, and kinesthetic learners allows for tailored teaching strategies. As we celebrate the one-year anniversary of this article, we encourage educators to embrace the uniqueness of each student and foster an inclusive learning environment that maximizes academic success in social sciences.

****

References:

1. 'Arya' Mohan Lal (2017); "A Study of Relationship between Leadership Styles of Principal and Teacher Effectiveness", International Journal of Science and Research (IJSR), Volume 6 Issue 1, ISSN: (Online): 2319-7064, January, pp. 963 – 965, Impact Factor- 6.391.
2. 'Arya' Mohan Lal (2018); "Principal's Administrative Effectiveness with Respect Their Educational Supervision and Guidance", Academic Social Research, Volume 4, Issue-3, ISSN: 2456-2645, pp-65-74, March, Impact Factor- 3.267.
3. 'Arya' Mohan Lal (2021), "A Study of Administrative Effectiveness of Principals at Senior Secondary Level", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), February, Volume-XIII, Issue-II, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor- 6.2, Pp- 1365-1369.
4. 'Arya' Mohan Lal and Singh Rajkumari (2017); "A Study of Relationship Between Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance of Secondary and Senior Secondary School in Moradabad District", Jabalpur: Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS)/Global Group of Journals (GGJ), Volume-9, Issue-7, pp-220-231, ISSN:2348-0459, July, Impact Factor- 3.987.
5. Arya' Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "A study of relationship of Academic stress and achievement Motivation among secondary students of Moradabad District", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), May, Volume-XIII, Issue-V, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor- 6.2, Pp- 517-521.
6. Bloom, B.S. Madaus, G.F. and Hastings, J. T. (1981). Evaluation to Improve Learning, New York: McGraw Hill.
7. Erwin, T.D. (1991). Assessing Student Learning and Development: A Guide to the Principles. Goals and Methods of Determining College Outcomes, San Francisco: Jossey Bass.
8. Kumar Narendra, Kumar Rajeev and 'Arya' Mohan Lal (2010); "Principal's Administrative Effectiveness and Institutional Academic Performance of Secondary Schools", Meerut: Journal of National Development (JND) An International Research Journal, Vo-23, Number-2, ISSN: 0972-8309, pp. No.-69-78, Impact Factor- 0.842.
9. Ministry of Education (June 1999). **"**Our People, Our Future: A Framework for the Development of Human Resources in the Education Sector." Asmara, Eritrea, Ministry of Education (unpublished).
10. National Education policy 2020.
11. Pandey, Mahendra Prasad and Arya Mohan Lal (2019); "Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance", Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS), ISSN: 2348-0459, Volume 8, Issue-4, pp-110-117, March.
12.Rena, Ravinder (2003). "Marks vs. Knowledge – A Shift in Students' Objective in Eritrea", Asmara: Eritrea Profile, Vol. 10, No. 21, (5th July,), p.-5.
13. Rena, Ravinder (2004). Educational Development in Eritrea. Asmara: Eritrea.
14. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
15. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2016), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
16. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम और शिक्षण'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
17. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''ज्ञान और पाठ्यक्रम'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
18. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शिक्षा के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
19. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम के लिए आंकलन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
20. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, 'पाण्डे', डॉ0 महेन्द्र प्रसाद एवं गोला, डॉ0 राजकुमारी, (2023), ''अधिगम एवं विकास का मनोविज्ञान'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।

Human Resource Management in the IT Industry: A Comprehensive Analysis in the National Capital Region

Suchika Joshi
Research Scholar
Department of Management
Sun Rise University, Alwar, Raj.
E-mail Id:suchika.meil@gmail.com

Dr. M. C. Sharma
Assistant Professor
Department of Management
Sun Rise University, Alwar, Raj.

Abstract:
This article provides a comprehensive analysis of Human Resource Management (HRM) in the Information Technology (IT) industry within the National Capital Region (NCR), emphasizing its pivotal role in the success of organizations. As the NCR emerges as a technology hub, HRM faces unique challenges and employs innovative strategies to effectively manage human capital. The strategic location, robust infrastructure, and skilled workforce make the NCR a thriving IT hub. HRM becomes critical for organizations aiming to stay competitive and foster a conductive work environment amid the diverse array of IT companies, from startups to multinational corporations. Intense competition for top talent characterizes the NCR's IT sector. HRM tackles this challenge by employing innovative recruitment strategies, leveraging social media, job portals, and collaborations with educational institutions to bridge the gap between academia and industry needs. Continuous learning is imperative due to rapid technological advancements. HRM focuses on robust training programs, often partnering with online platforms and training institutes to upskill employees, fostering a culture of innovation and contributing to organizational growth. HRM prioritizes diversity and inclusion, recognizing their benefits in fostering creativity and innovation. Initiatives to hire individuals from diverse backgrounds contribute to creating an inclusive work environment. HRM in the NCR's IT industry is dynamic and pivotal in shaping organizational success. By addressing challenges and opportunities, HRM professionals contribute to building a skilled, innovative, diverse, inclusive, and resilient workforce. As technology shapes the future of work, HRM remains indispensable in fostering a workplace thriving on talent, creativity, and adaptability. The multifaceted challenges demand strategic solutions from HRM professionals as the industry evolves.

Key Words: Information Technology, Learning, Industry, Work Environment.

Introduction: Human Resource Management (HRM) is a crucial component of success in any industry, and the Information Technology (IT) sector in the National Capital Region (NCR) is no exception. The NCR, comprising Delhi and its surrounding areas, has become a major hub for technology-driven enterprises, experiencing exponential growth. This article explores the complexities of HRM in the IT sector within the NCR, shedding light on the distinctive challenges and innovative strategies that organizations employ to effectively manage their human capital.

The IT Boom in the National Capital Region: The NCR's strategic location, robust infrastructure, and skilled workforce have propelled it into a powerhouse for the IT industry in India. As the region continues to attract a diverse array of IT companies, from startups to multinational corporations, HRM has become a critical aspect for organizations aiming to maintain a competitive edge and cultivate a conductive work environment.

Talent Acquisition and Retention: One of the foremost challenges faced by IT companies in the NCR is the intense competition for top talent. The demand for skilled professionals in areas such as software development, data analytics, cyber security, and artificial intelligence has triggered a talent war among companies. HRM teams are tasked with devising innovative recruitment strategies to attract and retain the best minds in the industry.

Recruitment in the IT sector extends beyond traditional methods, with companies leveraging social media, job portals, and networking events to identify and engage potential candidates. Moreover, organizations in the NCR often collaborate with educational institutions to bridge the gap between academia and industry requirements, facilitating a smoother transition for fresh graduates into the IT workforce.

Employee Training and Development: Continuous learning is imperative for IT professionals due to the rapid advancements in technology. HRM in the NCR's IT industry focuses on creating robust training and development programs to upskill employees and keep them abreast of the latest trends. This not only enhances the employees' job performance but also contributes to the overall growth of the organization. Many IT companies in the NCR invest in partnerships with online learning platforms, industry experts, and training institutes to provide their workforce with cutting-edge knowledge. These initiatives empower employees and foster a culture of innovation within the organization. Employee training and development are integral components of human resource management aimed at enhancing the skills, knowledge, and capabilities of the workforce. In today's dynamic and competitive business environment, organizations recognize the importance of investing in their employees' growth to stay ahead of the curve. This article explores the concept of employee training and development, its significance, and the strategies employed by organizations to foster continuous learning and skill enhancement.

Understanding Employee Training and Development: Employee training and development refer to the systematic process of equipping employees with the necessary skills, knowledge, and competencies to perform their current jobs effectively and to prepare them for future roles within the organization. It encompasses various learning initiatives designed to improve individual and collective performance, contributing to organizational success.

Significance of Employee Training and Development Enhanced Employee Performance: Training provides employees with the tools and knowledge needed to excel in their current roles. This leads to increased efficiency, productivity, and overall job performance.

Adaptability to Technological Changes: In a rapidly evolving technological landscape, regular training ensures that employees stay updated on the latest tools and technologies relevant to their job functions.

Employee Satisfaction and Retention: Investing in employee development signals to the workforce that the organization values their growth. This, in turn, fosters job satisfaction and increases employee retention rates.

Succession Planning: Development initiatives prepare employees for future leadership roles, aiding in succession planning. This ensures a pipeline of skilled individuals ready to take on key responsibilities.

Innovation and Creativity: Continuous learning encourages a culture of innovation and creativity within the organization. Employees who are well-trained are more likely to contribute fresh ideas and solutions to challenges.

Strategies for Effective Employee Training and Development:

Needs Assessment: Before implementing any training program, organizations conduct a thorough needs assessment to identify the skills gaps and learning needs of their workforce. This ensures that training initiatives are targeted and aligned with organizational goals.

Customized Training Programs: Tailoring training programs to meet the specific needs of different departments or job roles enhances their effectiveness. Customization ensures that employees receive relevant and practical knowledge applicable to their daily tasks.

Utilization of Technology: E-learning platforms, webinars, and virtual training sessions have become popular tools for delivering training content. Leveraging technology facilitates flexible learning schedules and accommodates remote or dispersed workforces.

Mentorship and Coaching: Mentorship and coaching programs provide employees with personalized guidance and support. These initiatives

are effective in transferring knowledge from experienced employees to those seeking professional growth.

Performance Feedback and Follow-up: Providing constructive feedback during and after training programs allows employees to understand their strengths and areas for improvement. Follow-up sessions reinforce learning and address any challenges faced during implementation.

Encouraging a Learning Culture: Organizations that promote a culture of continuous learning inspire employees to seek knowledge independently. This can be achieved through resources such as libraries, online courses, and workshops.

Recognition and Rewards: Acknowledging employees who actively engage in training and development activities fosters a positive environment. Recognition and rewards can include certificates, promotions, or other incentives.

Employee training and development are indispensable components of organizational growth and success. By investing in the skills and knowledge of their workforce, organizations not only enhance individual and collective performance but also cultivate a culture of innovation and adaptability. Through strategic planning, customized programs, and the use of technology, businesses can ensure that their employees are equipped to meet the challenges of a rapidly evolving professional landscape. As organizations continue to recognize the strategic importance of employee development, they position themselves for long-term success in an ever-changing business environment.

Top of Form

Workforce Diversity and Inclusion: Ensuring diversity and inclusion in the workplace is a key priority for HRM in the NCR's IT sector. Recognizing the benefits of a diverse workforce in fostering creativity and innovation, companies are implementing policies and practices that promote inclusivity. This includes initiatives to hire individuals from different backgrounds, genders, and ethnicities, creating an environment that values and respects diverse perspectives.

Flexible Work Arrangements: The COVID-19 pandemic has accelerated the adoption of remote work in the IT industry, prompting HRM in the NCR to adapt to this new normal. Companies are implementing flexible work arrangements, including remote work options, flexible hours, and hybrid models. This address the challenges posed by the pandemic while contributing to improved work-life balance, employee satisfaction, and increased productivity.

Performance Management and Employee Engagement:

Effective performance management is crucial in the IT industry, where project timelines and deliverables are often critical. HRM teams in the NCR are implementing performance appraisal systems that go beyond traditional annual reviews. Continuous feedback, goal-setting, and mentorship programs are becoming integral components of performance management, contributing to the professional development of employees. Employee engagement is another focal point for HRM in the NCR's IT sector. Companies are adopting creative strategies to foster a positive work culture, including team-building activities, recognition programs, and wellness initiatives. This not only enhances employee morale but also contributes to higher retention rates.

Challenges in HRM in the NCR's IT Industry:

Despite the many successes, HRM in the NCR's IT industry faces several challenges. Attrition rates remain a concern, with employees often lured away by lucrative offers from competitors. Balancing the need for innovation with the demands of project deadlines poses another challenge, requiring HRM to strike a delicate equilibrium. Additionally, the rapid pace of technological change requires HRM professionals to stay ahead of the curve in terms of understanding emerging skills and competencies. This necessitates continuous adaptation of training programs and recruitment strategies to meet evolving industry requirements. Human Resource Management (HRM) in the Information Technology (IT) sector of the National Capital Region (NCR) faces a myriad of challenges, reflecting the dynamic nature of the industry and the unique characteristics

of the region. This article examines the key challenges that HRM professionals encounter in managing the human capital of IT companies in the NCR, shedding light on the complexities that arise in recruitment, retention, and overall workforce management.

High Attrition Rates: A significant challenge in HRM within the NCR's IT industry is the high attrition rates. The constant demand for skilled professionals leads to intense competition among companies. Employees are often lured away by lucrative offers from competitors, posing a continuous challenge for HRM teams to retain top talent and maintain workforce stability.

Talent Shortages and Skill Gaps: Despite the abundance of educational institutions in the NCR, the IT industry often faces talent shortages and skill gaps. The rapid evolution of technology necessitates specific skill sets that may not be readily available in the job market. HRM professionals grapple with the task of identifying and acquiring individuals with the right expertise to meet the industry's evolving demands.

Balancing Innovation and Project Deadlines: Striking a balance between fostering innovation and meeting project deadlines is a delicate challenge faced by HRM in the NCR's IT sector. The pressure to innovate and stay ahead in a competitive landscape must be managed without compromising the timely delivery of projects. HRM teams play a crucial role in creating an environment that encourages creativity while ensuring projects are completed within stipulated timelines.

Adapting to Technological Changes: The IT industry is characterized by rapid technological advancements. HRM professionals must stay abreast of emerging technologies to understand the skills and competencies required. Ensuring that training programs and recruitment strategies align with the latest industry trends poses a constant challenge, as the pace of technological change continues to accelerate.

Workforce Diversity and Inclusion: While there is a growing recognition of the importance of workforce diversity and inclusion, achieving these goals remains a challenge in the NCR's IT industry. HRM teams must work to create inclusive environments that value diversity in terms of gender, background, and ethnicity. This requires implementing policies and practices that promote inclusivity and address any biases within the organization.

Remote Work Challenges: The COVID-19 pandemic has accelerated the adoption of remote work in the IT industry. While this provides flexibility, HRM faces challenges in managing remote teams effectively. Ensuring clear communication, maintaining team cohesion, and addressing potential issues related to work-life balance are ongoing concerns for HRM professionals.

Leveraging Social Responsibility: The IT industry is increasingly expected to demonstrate social responsibility. HRM faces the challenge of aligning organizational values with societal expectations. This includes promoting sustainability, ethical practices, and corporate social responsibility initiatives, all of which require strategic planning and effective communication.

Continuous Training and Skill Development: With the ever-changing technological landscape, HRM must continuously adapt training programs to keep employees' skills relevant. Developing comprehensive and effective training modules that align with industry needs while addressing individual learning preferences is an ongoing challenge.

Conclusion:

Human Resource Management in the IT industry of the National Capital Region is a dynamic and evolving field. As the industry continues to grow and transform, HRM plays a pivotal role in shaping organizational success. By addressing the unique challenges and opportunities presented by the IT sector, HRM professionals in the NCR contribute to building a workforce that is not only skilled and innovative but also diverse, inclusive, and resilient in the face of change. As technology continues to shape the future of work, the role of HRM in the NCR's IT industry will remain indispensable in fostering a workplace that thrives on talent, creativity, and adaptability. HRM in the NCR's IT industry is confronted with a

multifaceted set of challenges that demand strategic solutions. From addressing high attrition rates to fostering a culture of innovation and inclusivity, HRM professionals play a pivotal role in navigating the complexities of workforce management in this dynamic sector. As the industry evolves, HRM will continue to be at the forefront, devising innovative strategies to attract, retain, and develop the talent that drives the success of IT companies in the National Capital Region.

****

References:

1. 'Arya', Mohan Lal (2021), "An Analytical study of Flipped Learning Approach", Strad Research, vol. 8, issue 11, pp. 325-333.
2. 'Arya', Mohan Lal (2023), "A Study of Impact of Modern Technologies on Society", Naagfani, vol. 13, issue 44, pp. 90-93.
3. 'Arya', Mohan Lal (2023), "New Education Policy 2020: A Educational study", Jyotirveda Prasthanam, vol. 12, issue 2, pp. 89-93.
4. 'Arya', Mohan Lal and Ajay Gautama (2019), "Flipped Classroom Teaching: Model and its use for Information Literacy Instruction", IJRAR, vol. 5, issue 3, pp. 925-933.
5. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Bindal (2020), "An Analytical study of Innovativeness of Innovative teaching Method for stress free Education", IJRAR, vol. 7, issue 1, pp. 102-104.
6. 'Arya', Mohan Lal (2020), "Role of Emerging Technologies and ICYs in Teaching Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 10, issue 38, pp. 108-111.
7. 'Arya', Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "Artificial Intelligence (AI) and Its role in Teacher education", GIS Science Journal, vol. 8, issue 10, pp. 134-139.
8. A. Seldon and O. Abidoye (2018), *The Fourth Education Revolution*, University of Buckingham Press, London, UK.
9. B. P. Woolf (2010), *A Roadmap for Education Technology (hal-00588291)*, University of Massachusetts Amherst, Amherst, MA, USA.
10. Gola, Rajkumari and 'Arya', Mohan Lal (2020), "Emerging Technologies and Teacher Education", Shodh Sanchar Bulletin, vol. 11, issue 41, pp. 117-120.
11. I. Magnisalis, S. Demetriadis, and A. Karakostas (2011)Adaptive and intelligent systems for collaborative learning support: a review of the field," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 4, no. 1, pp. 5–20.
12. J. Loeckx (2016), "Blurring boundaries in education: context and impact of MOOCs," *The International Review of Research in Open and Distributed Learning*, vol. 17, no. 3, pp. 92–121.
13. J. Petit, S. Roura, J. Carmona et al. (2018), "Jutge.org: characteristics and experiences," *IEEE Transactions on Learning Technologies*, vol. 11, no. 3, pp. 321–333.
14. K. Ijaz, A. Bogdanovych, and T. Trescak (2017), "Virtual worlds vs books and videos in history education," *Interactive Learning Environments*, vol. 25, no. 7, pp. 904–929.
15. M. Cukurova, C. Kent, and R. Luckin (2019), "Artificial intelligence and multimodal data in the service of human decision-making: a case study in debate tutoring," *British Journal of Educational Technology*, vol. 50, no. 6, pp. 3032–3046.
16. National Education Policy 2020, NCERT, New Delhi.
17. S. Munawar, S. K. Toor, M. Aslam, and M. Hamid (2018), "Move to smart learning environment: exploratory research of challenges in computer laboratory and design intelligent virtual laboratory for eLearning technology," *Eurasia Journal of Mathematics, Science and Technology Education*, vol. 14, no. 5, pp. 1645–1662.

The Crucial Role of Leadership Styles in Motivating Teaching Staff in Secondary Schools

Dr. Mohan Lal 'Arya'
Professor
School of Social Sciences
IFTM University, Moradabad
E-mail id: drmlarya2012@gmail.com

Abstract: Leadership within secondary schools plays a pivotal role in shaping the educational environment and influencing the motivation and performance of teaching staff. Principals, as educational leaders, have the responsibility to adopt effective leadership styles that not only enhance the overall school climate but also motivate teachers to excel in their roles. This article explores the various leadership styles employed by principals and their impact on teacher motivation in secondary schools.

Key Words: Leadership styles, Motivation, Educational environment, School Climate, Teachers.

Introduction: Principals play a pivotal role in shaping the culture and success of a school, and their leadership styles significantly influence the overall learning environment. Various leadership styles characterize the approaches taken by principals in fulfilling their responsibilities. One prominent leadership style is transformational leadership, characterized by its focus on fostering positive change and innovation. Principals employing this approach inspire and motivate teachers and students alike, emphasizing a shared vision and collaboration. In contrast, transactional leadership relies on clear structures and rewards, emphasizing efficiency and goal attainment through a more traditional and bureaucratic lens. Servant leadership places the well-being of others at the forefront, with principals prioritizing support and service to teachers and students. This style cultivates empathy, collaboration, and personal growth within the school community. Conversely, laissez-faire leadership adopts a hands-off approach, granting staff autonomy and decision-making freedom, which proves particularly effective when dealing with highly skilled and self-motivated teams.

Democratic leadership involves collaboration and shared decision-making, fostering a sense of ownership and commitment among staff. On the other hand, authoritarian leadership employs a top-down approach with clear directives and an emphasis on rule adherence, often proving effective in crisis situations or when swift decisions are required. Adaptive leadership requires principals to adjust their approach based on the specific context and needs of the school. This flexible style demands a nuanced understanding of the school's dynamics and a willingness to adapt strategies accordingly. Additionally, charismatic leadership relies on the leader's personal charm and persuasive communication to inspire and unite the school community around a shared vision. In practice, principals often blend these styles, drawing upon different approaches depending on the situation. Effective leadership involves a judicious application of these styles to create a positive and thriving school environment that fosters both academic achievement and personal growth. Secondary education is a critical phase in a student's academic journey, and the quality of teaching directly affects student outcomes. The role of principals in secondary schools is multifaceted, and their leadership styles significantly impact the motivation and performance of teaching staff.

Purpose of the study: This present study aims to delve into the different leadership styles exhibited by principals in secondary schools and their influence on teacher motivation. By understanding the dynamics of leadership, we can identify effective strategies for creating a positive work environment and ultimately enhancing the educational experience for students.

Leadership Styles in Education: Leadership styles in education encompass the diverse approaches and methods employed by educational leaders to guide, motivate, and manage individuals and groups within an educational institution. These styles play a pivotal role in shaping the culture, effectiveness, and overall success of educational institutions, influencing the learning environment and impacting the development of both educators and students.

Meaning and Nature of Leadership Styles in Education: Leadership styles in education encompass a range of approaches that educational leaders employ to guide their institutions. The nature of these styles is dynamic, requiring adaptability, relationship building, visionary direction, collaboration, effective communication, and a steadfast commitment to a student-centered focus. The choice of leadership style can significantly impact the culture and success of an educational institution.

Adaptability: Effective educational leaders often display adaptability, choosing and combining leadership styles based on the specific needs of the institution, its stakeholders, and the challenges at hand.

Relationship Building: Leadership styles in education heavily involve relationship building. Leaders must establish positive and trust-based relationships with teachers, students, parents, and the wider community to foster a conductive learning environment.

Visionary Direction: Many leadership styles in education involve a visionary aspect, where leaders articulate a compelling vision for the future of the institution, aligning the efforts of the entire community toward shared goals.

Collaboration and Communication: Successful educational leaders prioritize collaboration and effective communication. Whether through a top-down or distributed leadership approach, clear communication channels are vital for fostering a cohesive learning environment.

Student-Centered Focus: Regardless of the leadership style employed, an essential aspect in education is a student-centered focus. Leaders should strive to enhance the learning experience, promote student success, and create an inclusive and supportive educational environment.

Types of Leadership Styles in Education:

Transformational Leadership: Transformational leadership focuses on inspiring and motivating followers to achieve their full potential. Principals employing this style often foster innovation, collaboration, and a shared vision, creating a

positive impact on teacher motivation. *Nature:* In the realm of education, transformational leaders often concentrate on long-term goals, encourage creativity among faculty and students, and strive to enhance the overall learning experience.

Transactional Leadership: Transactional leadership relies on a system of rewards and punishments to motivate staff. While it can be effective in the short term, its sustainability and long-term impact on teacher motivation are subjects of debate. *Nature:* In educational settings, transactional leaders may adopt a more traditional and structured approach, ensuring that policies are followed, goals are met, and standards are upheld.

Servant Leadership: Servant leaders prioritize the needs of their team members, aiming to support and develop them. This style fosters a sense of community and collaboration, contributing positively to teacher motivation. *Nature:* In the educational context, servant leaders focus on the needs of teachers, students, and the community, fostering a collaborative and inclusive learning environment.

Distributed Leadership: Distributed leadership involves the delegation of responsibilities and decision-making across various levels within the school. This approach empowers teachers and enhances their motivation by acknowledging their expertise and contributions. *Nature:* In education, distributed leadership promotes collaboration, empowering teachers and staff to contribute to decision-making processes and take on leadership roles in specific areas.

Laissez-Faire Leadership: Laissez-faire leaders adopt a hands-off approach, allowing followers a high degree of autonomy in decision-making and task completion. *Nature:* In the educational context, laissez-faire leadership may be effective in situations where individuals are experienced, self-motivated, and capable of independent work.

Impact of Leadership Styles on Teacher Motivation: Job Satisfaction: Different leadership styles have varying effects on teacher job satisfaction. Exploring how each style contributes to or hinders job satisfaction can provide insights into fostering a positive work environment.

Professional Development: Effective leadership should promote continuous professional development for teaching staff. Examining the correlation between leadership styles and opportunities for professional growth can shed light on motivating factors.

Collaboration and Team Building: Leadership styles greatly influence the level of collaboration and team spirit among teachers. Understanding how each style fosters or hampers teamwork is essential for promoting a positive school culture.

Teacher Burnout: Teacher burnout is a significant concern in the education sector. Analyzing how leadership styles contribute to or alleviate burnout can guide principals in creating a sustainable and supportive work environment.

Some Case Studies of Leadership Styles:

1. Successful Implementation of Transformational Leadership: Explore case studies of secondary schools where principals effectively implemented transformational leadership, resulting in increased teacher motivation and improved student outcomes.

2. Challenges and Lessons Learned from Transactional Leadership: Examine instances where transactional leadership led to short-term gains but posed challenges in maintaining teacher motivation and satisfaction in the long run.

3. The Impact of Servant Leadership on School Climate: Investigate schools where servant leadership positively influenced the school climate, leading to a motivated teaching staff and improved student engagement.

4. Distributed Leadership in Action: Analyze how distributed leadership models have been successfully implemented in secondary schools, empowering teachers and fostering a collaborative environment.

Recommendations or Suggestions for school Principals: Assessing School Culture: Principals should assess the existing school culture to determine the most suitable leadership style for fostering motivation among the teaching staff.

Professional Development Programs: Implementing effective professional development programs tailored to teachers' needs can enhance motivation and job satisfaction.

Fostering Collaboration: Encourage collaboration among teachers through team-building activities, shared decision-making, and a supportive working environment.

Addressing Teacher Burnout: Develop strategies to identify and address signs of teacher burnout, including workload management, mental health support, and stress reduction initiatives.

Conclusion: The role of principals in motivating teaching staff in secondary schools is crucial for creating a positive learning environment. By understanding and implementing effective leadership styles, principals can contribute significantly to teacher motivation, job satisfaction, and overall school success. This article has explored various leadership styles and their impact on teacher motivation, providing insights and recommendations for educational leaders striving to create thriving secondary schools.

****

References:

1. 'Arya' Mohan Lal (2017); "A Study of Relationship between Leadership Styles of Principal and Teacher Effectiveness", International Journal of Science and Research (IJSR), Volume 6 Issue 1, ISSN: (Online): 2319-7064, January, pp. 963 – 965, Impact Factor- 6.391.
2. 'Arya' Mohan Lal (2018); "Principal's Administrative Effectiveness with Respect Their Educational Supervision and Guidance", Academic Social Research, Volume 4, Issue-3, ISSN: 2456-2645, pp-65-74, March, Impact Factor- 3.267.
3. 'Arya' Mohan Lal (2021), "A Study of Administrative Effectiveness of Principals at Senior Secondary Level", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), February, Volume-XIII, Issue-II, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor-6.2, Pp- 1365-1369.
4. 'Arya' Mohan Lal and Singh Rajkumari (2017); "A Study of Relationship Between Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance of Secondary and Senior Secondary School in Moradabad District", Jabalpur: Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS)/Global Group of Journals (GGJ), Volume-9, Issue-7, pp-220-231, ISSN:2348-0459, July, Impact Factor- 3.987.
5. Arya' Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "A study of relationship of Academic stress and achievement Motivation among secondary students of Moradabad District", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), May, Volume -XIII, Issue-V, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor- 6.2, Pp- 517-521.
6. Bloom, B.S. Madaus, G.F. and Hastings, J. T. (1981). Evaluation to Improve Learning, New York: McGraw Hill.
7. Erwin, T.D. (1991). Assessing Student Learning and Development: A Guide to the Principles. Goals and Methods of Determining College Outcomes, San Francisco: Jossey Bass.
8. Kumar Narendra, Kumar Rajeev and 'Arya' Mohan Lal (2010); "Principal's Administrative Effectiveness and Institutional Academic Performance of Secondary Schools", Meerut: Journal of National Development (JND) An International Research Journal, Vo-23, Number-2, ISSN: 0972-8309, pp. No.-69-78, Impact Factor- 0.842.
9. Ministry of Education (June 1999). "Our People, Our Future: A Framework for the Development of Human Resources in the Education Sector." Asmara, Eritrea, Ministry of Education (unpublished).
10. National Education policy 2020.
11. Pandey, Mahendra Prasad and Arya Mohan Lal (2019); "Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance", Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS), ISSN: 2348-0459, Volume 8, Issue-4, pp-110-117, March.
12. Rena, Ravinder (2003). "Marks vs. Knowledge – A Shift in Students' Objective in Eritrea", Asmara: Eritrea Profile, Vol. 10, No. 21, (5th July,), p.-5.
13. Rena, Ravinder (2004). Educational Development in Eritrea. Asmara: Eritrea.
14. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
15. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2016), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
16. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम और शिक्षण'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
17. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''ज्ञान और पाठ्यक्रम'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
18. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शिक्षा के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
19. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम के लिए आंकलन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
20. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, 'पाण्डे', डॉ0 महेन्द्र प्रसाद एवं गोला, डॉ0 राजकुमारी, (2023), ''अधिगम एवं विकास का मनोविज्ञान'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।

Social media's impact on modern literary works

Dr. Gaurav Gaud
(Associate Professor)
Sagar Institute of Research and Technology, Bhopal
Corresponding Author Email:
gaudgaurav62@gmail.com

ABSTRACT

This paper entitled. Social media impact on modern literary works. Social media has succeeded in popularizing reading through online groups and hash tags, such as "Bookstagram" and TikTok's "Bookwork." In these communities, people share content about books and reading, ranging from book reviews and recommendations to pictures and videos meant to aestheticism reading by making it seem like a beautiful and cultured thing that only a select few will appreciate and enjoy.

Due to this, more young people have come to declare themselves as readers and purchase books that are commonly promoted on these platforms. The influence of online platforms has led to a growth of the publishing industry through the increase of book sales, and certain books have gained rampant success because of attention on social media. Popular titles include "The Song of Achilles" by Madeline Miller, "A Court of Thorns and Roses" by Sarah J. Maas, and "Fourth Wing" by Rebecca Yarrows.

Keywords- Indian Society, Social Media, Bookstagram, aestheticism

I INTRODUCTION

The pressures of social media and the desire for writers to succeed in promoting their books through the algorithm has caused the content in their stories to narrow as they focus on popular ideas, themes and plot points in their writing to gain a wider audience and better reception of their work. Authors are attempting to reach a larger audience through the algorithm by using certain topics and plot elements in their stories that have popular hash tags in order to gain more views and potential consumers. Among the most prominent features of web 2.0, we have Twitter, a social networking and micro blogging site which allows its

user to express himself in the limit of 140 words which was later extended to 280 words. The posts or tweets (as it is called) are dished out among the users through mails, messages or web. Though it was started as a medium of communication, today the users have stretched its limits and they are using it to write novels. Thus it has become a good and acceptable platform for literature. The first published book entirely composed on Twitter was John Roderick (musician)'s Electric Aphorisms which he composed in individual tweets between December 2008 and May 2009. Later it was deleted by the publication studio.

II INVESTIGATING WORKS OF SOCIAL MEDIA-This trend has become even more prevalent due to BookTok popularizing certain "tropes" – specific plot and story elements – which have gained popularity and their own viral hashtags, such as "enemies to lovers," "slow burn," "high fantasy," "hurt/comfort" and more. There have been cases before social media when books have conformed to certain topics and themes due to a sudden boom in popularity. An example is when "Twilight" by Stephenie Meyer was published and gained a large readership; this led to an influx of stories using similar paranormal elements in order to conform to the new desires of consumers.

While social media is continuing to increase the popularity of reading and bolstering the publishing industry, it has also succeeded in lowering the variation of books available. Online platforms have given writers a new way to promote themselves by creating platforms in order to advance themselves and their books. However, social media has made it harder for them to find an audience because of how the algorithm has oversaturated consumer's feeds with only a few popular books and authors. The majority of authors get lost in the mix. In an increasingly digital world, the rise of social media has brought an unprecedented time for readers and booksellers alike. No one can be certain whether it will continue to support readers and the publishing industry in the long run as technology continues to develop and change.As Mathew Arnold said about media holds true even today but with literature things have undergone a tremendous change. Today it has become a part of media and extended its limits in different dimensions. But to quote Francesca Baker's words, "Literature itself is media, a tool for messaging, communication and art." Therefore we don't need any other media for literature but the lightning fast speed of social media and the influence it has on the mass has relegated literature to a secondary position. Today literature itself is in a hurry; hurry of getting accomplished and then published, and for that matter social media has proved to be a boon. To talk about media in general, before 19th century Press was the only source of communicating any kind of information to public. At that time Press and media were synonymous to each-other but today with the deluge of sources of information the amplitude of the term media has expanded to include the modern sources of information. Today media whether electronic or print touches our lives at every turn and now it's not limited to informing us but it has moved a step further to entertain us. Today whatever comes through media becomes the basis of what people think, feel and say and conversely it is the duty of media to express people's feelings, emotions and reactions. No field is insignificant for media. Something that touches the lives of a large number of people is as important as anything. The gamut of media is humongous; any event taking place anywhere can form news, from as serious as war to as frolicsome as fashion. Media is preoccupied with eminent personalities. Everything they do make news, even as trifle as sneezing, coughing etc. All the big personalities of the world stand so tall and towering only due to media. There are many journalists who have turned to writing novels and books. Writing for media is like brew.

III THE ADVANCEMENT IN TECHNOLOGY -The advancement in technology has radically reframed and is continuously reframing the relationship between media and literature thereby foregrounding the necessity of new literary practices. In the light of the above statement, it can be said that literature on social media is one such practice and it has not only killed print literature

but it has killed literature in total. It does not favour the creation of the classics by default and one basic reason behind that is paucity of time. It requires a long time, leisure and a lot of mental exercise to hatch a classic. Today's fast and mechanical life style cannot afford to enjoy long pieces of work but it also cannot do without literature and the kind of literature it finds affinity with is made available on social media platform. Bombay and Delhi… poverty", "misfortunes of refugee family"(68), underclass denied of opportunities; lack of hygiene and sense of sanitation: "Indians defecate everywhere", "labour is a degradation", businessman: "all his duty is, by whatever means, to make money": "symbolic actions" irrational "reservation policy (which) places responsibility in the hands of the unqualified". The close study of the novel, The White Tiger sorts out the society is separated into two groups such as rich and poor, exploitation and exploited, colonizer and colonized, man with big belly and man with small belly and haves and have-nots. In this novel Balram arises from the darkness to the light by killing his master. He supports voiceless people by his action and words. Balram wants to remove the trashes such as subaltern issues in Indian society. He decides to ignore the oppression from the society as depicts his stand "Let animals live like animals; Let human live like human; that's my whole philosophy in one sentence" .

IV CONCLUSION- Most of the writings on social media are a sudden reaction to something that they have seen or read or heard and writing comes as a tool of catharsis. Moreover, the stimulus given by social media is as strong as anything as there are no restrictions of space, time, form, meter or anything. The thoughts come pell-mell and they are expressed in a free flow. In print, it is a herculean task to get massive readership and even if you get, it may take a long time. But social media affords the favourability of you being read anywhere in the world by anybody who cares to be on these apps. With the changing times, there are new trends setting in such as long drawn sentences and detailed descriptions of landscape are now a thing of past. The techno-savvy generation has neither time nor patience to pore over ponderous novels so they have changed the face of literature. Today we have fictional works of extreme brevity which are called Flash Fiction. They are always open for further development of plot and character. They include six word story, 280 word story, Dribble which is a 50 word story also known as Minisaga, Drabble which is a 100 word story also known as Micro-fiction, Sudden fiction which is 750 word story and similarly there is 1000 word story. The purist and the classicist, of course, don't conform to the new trends. According to them, these emerging trends are destroying the beauty of literature which lies in elaborate picturesque descriptions, charm.

****

References

1. Adams, Richard. "Social media urged to take 'moment to reflect' after girl's death." The Guardian, Jan 30, 2019. theguardian.com/media/2019/jan/30/social-mediaurged-to-take-moment-to-reflect-after-girls-death/
2. Aneez, Shihar. "Sri Lanka arrests 19 after Buddhist-Muslim violence; four injured." Reuters. November 18, Audience and Selling Books. 2015. Print.
3. Baker, Francesca. "Is Social Media Killing Literature?" The London Magazine. April 30, 2014. thelondonmagazine.org/is-social-media-killingliterature-by-francesca-baker/.
4. Blossom, John. Content nation: Surviving and thriving as social media changes our work, our lives, and our future. John Wiley & Sons, 2009.
5. Bloxhamy Andy, Social Networking: Teachers blame Facebook and Twitter for pupil's poor Books, 2012. Print.
6. Brown, Alex. ―OMG! The Impact of Social Media on English Language‖ http://blogs.imediaconnection.com/blog/2012/08/28/o mg-the-impact-of-social-media-on- the-english - language.
7. The Female masculinities in old English Literature.
8. The difference between modernism and realism.
9. The utilization of language activities in teaching and learning of English Language.
10. Discuss women in nation-building and influence on literature.
11. The relevance of folktale in the learning of literature.
12. The significance of proverbs in literature.
13. The influence of politics in the building of literary texts.
14. The analysis of speech in literature.
15. The importance of fiction in literature.
16. The relevance of emotion and narration in novel writing in literature.
17. Discuss how conflicts are brought out in literary novels.
18. The challenges of language on national development.
19. What is the communication medium used in literature?
20. The difference between linguistic and grammatical theories.
21. The problems related to tenses in literature.
22. The evaluation of word formation in literature.

A Comprehensive Study on the Aspiration Levels of General and Special Students of Rampur District

Umra Idrees
Research Scholar
Department of Education
IFTM University, Moradabad
E-mail Id: iumra454@gmail.com

Dr. Rajkumari Gola
Assistant Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad
E-mail Id: drrkgola2021@gmail.com

Abstract:

This comprehensive study investigates the aspirations of general and special students of Rampur District, highlighting the pivotal role these aspirations play in shaping educational and career paths. The research aims to inform inclusive educational policies by acknowledging the various factors that influence aspirations, including family background, socio-economic status, cultural environment, peer influence, and educational opportunities. Utilizing a mixed-methods approach, the study conducts a structured survey, complemented by in-depth interviews and focus group discussions with a representative student sample. Both quantitative tools, like statistical software, and qualitative methods, such as thematic analysis, are employed to ensure a nuanced comprehension of the data. Key objectives involve assessing aspiration levels, exploring influencing factors, and proposing strategies for inclusive education. The study expects to identify socio-economic background, educational environment, inclusivity practices, parental support, personal motivation, and awareness of opportunities as significant factors impacting student aspirations.

Key Words: Aspiration, socio-economic status, cultural environment, inclusivity practices.

Introduction:-In the pursuit of educational excellence and social inclusion, understanding the aspirations of students becomes crucial. This study delves into the aspiration levels of both general and special students in Rampur District, shedding light on the factors that influence their educational goals and career ambitions. The aim is to provide insights that can contribute to the development of more inclusive and effective educational policies. Education serves as a cornerstone for individual and societal progress, shaping the aspirations of students and influencing their trajectory in life. The aspiration level of students, often considered as their ambitions and goals, plays a pivotal role in determining the path they choose and the efforts they invest in their academic and personal development. Understanding and fostering healthy aspirations among students is crucial for cultivating a generation that strives for excellence and contributes positively to society. Rampur District, situated in the heart of the country, is home to a diverse population with varying educational needs. In recent years, there has been a growing awareness of the importance of addressing the unique challenges faced by special students, those with physical or cognitive disabilities. Inclusive education has become a focal point, aiming to create an environment where all students, regardless of their abilities, can thrive.

Defining Aspiration Levels: Aspiration levels can be defined as the height of goals and ambitions that students set for themselves, both academically and personally. These aspirations are influenced by a myriad of factors, including family background, socio-economic status, cultural environment, peer influence, and individual aptitude. The spectrum of aspiration levels varies widely among students, ranging from those who aspire for academic excellence to those with aspirations in the arts, sports, entrepreneurship, and other fields.

Factors Influencing Aspiration Levels:

Family Background: The family is often the primary influencer of a student's aspirations. The values, expectations, and experiences within the family shape the student's perception of success and guide their ambitions.

Socio-economic Status: Socio-economic factors can significantly impact a student's aspirations. Students from economically disadvantaged backgrounds may have aspirations centered around

financial stability, while those from affluent backgrounds may aim for prestigious careers.

Cultural Environment: Cultural norms and expectations within a society can shape the aspirations of students. Some cultures may prioritize certain professions or academic achievements, influencing students to align their aspirations with these societal expectations.

Peer Influence: Peer interactions play a crucial role in shaping aspirations. Students may be inspired or influenced by the aspirations of their peers, leading to the adoption of similar goals or pursuits.

Educational Opportunities: Access to quality education and exposure to diverse fields can broaden a student's perspective, influencing their aspirations. Exposure to various subjects, extracurricular activities, and vocational training can significantly impact the choice of aspirations.

Fostering Healthy Aspirations:

Encouraging Exploration: Educational institutions and parents should encourage students to explore a wide range of subjects and activities. Exposure to diverse experiences can help students discover their passions and develop well-rounded aspirations.

Mentorship and Guidance: Mentorship plays a crucial role in guiding students toward realistic and achievable aspirations. Mentors can provide valuable insights, share personal experiences, and offer guidance on the steps required to achieve their goals.

Celebrating Individuality: It's essential to recognize and celebrate the diversity of aspirations among students. Each student is unique, and their aspirations may not conform to traditional expectations. Fostering an environment that appreciates individuality encourages students to pursue authentic and meaningful goals.

Promoting a Growth Mindset: Emphasizing a growth mindset encourages students to view challenges as opportunities for learning and development. This mindset fosters resilience, perseverance, and a willingness to set ambitious but attainable goals.The aspiration levels of students are dynamic and multifaceted, influenced by a combination of personal, familial, and societal factors. Recognizing the individuality of students and providing support, guidance, and resources to help them achieve their aspirations is crucial for fostering a generation of motivated and fulfilled individuals. By understanding and addressing the factors that shape these aspirations, educators, parents, and society at large can contribute to the development of well-rounded, ambitious, and socially responsible individuals.

Objectives of the Study:

To assess the aspiration levels of general students of Rampur District.

To explore the aspiration levels of special students of Rampur District.

To identify the factors influencing the aspirations of both general and special students.

To suggest potential strategies for fostering inclusive education and supporting students in realizing their aspirations.

Methodology:

This study adopts a mixed-methods approach, combining qualitative and quantitative research methods to obtain a comprehensive understanding of the aspiration levels of students in Rampur District.

Quantitative Research: A structured survey will be conducted among a representative sample of general and special students in various schools across Rampur District. The survey will include questions related to academic aspirations, career goals, and perceived barriers to achieving their aspirations. The data collected will be analyzed using statistical tools to draw meaningful conclusions.

Qualitative Research: In-depth interviews and focus group discussions will be conducted with a subset of students, teachers, and parents to gain deeper insights into the qualitative aspects of aspiration levels. This qualitative data will provide a more nuanced understanding of the personal, social, and environmental factors that influence students' aspirations.

Data Analysis and Interpretation: The quantitative data will be analyzed using statistical software to identify patterns, correlations, and

significant differences in the aspiration levels of general and special students. Descriptive statistics such as mean, median and mode will be employed to summarize the data, while inferential statistics like t-tests and ANOVA will be used to determine the significance of differences between groups. The qualitative data will be transcribed and coded to identify recurring themes and patterns. Thematic analysis will be employed to extract meaningful insights from the interviews and focus group discussions. Triangulation of the quantitative and qualitative findings will be conducted to ensure a comprehensive and holistic interpretation of the data.

Factors Influencing Aspiration Levels:

The study will explore various factors that may influence the aspiration levels of both general and special students. These factors may include:

Socioeconomic Background: The financial status of students' families can play a significant role in shaping their aspirations, especially in terms of pursuing higher education.

Educational Environment: The quality of education, availability of resources, and support from teachers and peers can impact students' confidence in pursuing their aspirations.

Inclusive Practices: For special students, the level of inclusivity in the educational environment, including accessibility and accommodation, may influence their aspirations.

Parental Support: The role of parents in shaping and supporting their children's aspirations cannot be overstated. Understanding the extent of parental involvement is crucial.

Personal Motivation: Intrinsic motivation, interests, and personal values may significantly contribute to the determination of students to achieve their goals.

Awareness of Opportunities: The extent to which students are aware of various career opportunities and educational paths can influence their aspirations.

Implications for Educational Policy and Practice: The findings of this study will have significant implications for educational policy and practice in Rampur District. Recommendations may include:

Enhancing Inclusive Education:

Identifying and addressing barriers to inclusive education for special students, including accessible infrastructure, adaptive teaching methods, and support services.

Career Guidance Programs:

Implementing comprehensive career guidance programs to expose students to a wide range of career options and help them make informed decisions about their future.

Teacher Training:

Providing training for teachers to create an inclusive and supportive learning environment that fosters the aspirations of all students.

Community Engagement: Involving the community in supporting educational aspirations, fostering a sense of collective responsibility for the success of all students.

Financial Support Programs:

Establishing scholarship programs and financial aid to ensure that socioeconomic status does not limit students' access to higher education.

Conclusion:

The study on the aspiration levels of general and special students in Rampur District is poised to contribute valuable insights to the ongoing discourse on inclusive education. By understanding the unique challenges and aspirations of special students and identifying factors that influence all students' educational goals, this research aims to inform policies and practices that foster a more equitable and supportive educational environment for every learner in Rampur District. Implications for educational policy and practice include the enhancement of inclusive education, implementation of career guidance programs, teacher training, community engagement, and financial support initiatives. Ultimately, the research aims to contribute authentic insights to the discourse on inclusive education in Rampur District, striving to establish an equitable and supportive educational environment for all students.

****

References:-

1. 'Arya' Mohan Lal (2017); "A Study of Relationship between Leadership Styles of Principal and Teacher Effectiveness", International Journal of Science and Research (IJSR), Volume 6 Issue 1, ISSN: (Online): 2319-7064, January, pp. 963 – 965, Impact Factor- 6.391.
2. 'Arya' Mohan Lal (2018); "Principal's Administrative Effectiveness with Respect Their Educational Supervision and Guidance", Academic Social Research, Volume 4, Issue-3, ISSN: 2456-2645, pp-65-74, March, Impact Factor- 3.267.
3. 'Arya' Mohan Lal (2021), "A Study of Administrative Effectiveness of Principals at Senior Secondary Level", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), February, Volume-XIII, Issue-II, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor- 6.2, Pp- 1365-1369.
4. 'Arya' Mohan Lal and Singh Rajkumari (2017); "A Study of Relationship Between Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance of Secondary and Senior Secondary School in Moradabad District", Jabalpur: Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS)/Global Group of Journals (GGJ), Volume-9, Issue-7, pp-220-231, ISSN:2348-0459, July, Impact Factor- 3.987.
5. Arya' Mohan Lal and Nikita Yadav (2021), "A study of relationship of Academic stress and achievement Motivation among secondary students of Moradabad District", Journal of Interdisciplinary Cycle Research (JICR), May, Volume-XIII, Issue-V, ISSN No.: 0022-1945, Impact Factor- 6.2, Pp- 517-521.
6. Bloom, B.S. Madaus, G.F. and Hastings, J. T. (1981). Evaluation to Improve Learning, New York: McGraw Hill.
7. Erwin, T.D. (1991). Assessing Student Learning and Development: A Guide to the Principles. Goals and Methods of Determining College Outcomes, San Francisco: Jossey Bass.
8. Kumar Narendra, Kumar Rajeev and 'Arya' Mohan Lal (2010); "Principal's Administrative Effectiveness and Institutional Academic Performance of Secondary Schools", Meerut: Journal of National Development (JND) An International Research Journal, Vo-23, Number-2, ISSN: 0972-8309, pp. No.-69-78, Impact Factor- 0.842.
9. Ministry of Education (June 1999). "Our People, Our Future: A Framework for the Development of Human Resources in the Education Sector." Asmara, Eritrea, Ministry of Education (unpublished).
10. National Education policy 2020.
11. Pandey, Mahendra Prasad and Arya Mohan Lal (2019); "Principal's Administrative Effectiveness and His Institutional Academic Performance", Global Journal of Multidisciplinary Studies (GJMS), ISSN: 2348-0459, Volume 8, Issue-4, pp-110-117, March.
12. Rena, Ravinder (2003). "Marks vs. Knowledge – A Shift in Students' Objective in Eritrea", Asmara: Eritrea Profile, Vol. 10, No. 21, (5th July,), p.-5.
13. Rena, Ravinder (2004). Educational Development in Eritrea. Asmara: Eritrea.
14. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
15. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2016), ''शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
16. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम और शिक्षण'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
17. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''ज्ञान और पाठ्यक्रम'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
18. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), ''शिक्षा के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
19. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2017), ''अधिगम के लिए आंकलन'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।
20. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, 'पाण्डे', डॉ0 महेन्द्र प्रसाद एवं गोला, डॉ0 राजकुमारी, (2023), ''अधिगम एवं विकास का मनोविज्ञान'', आर0 लाल बुक डिपों, मेरठ।

मध्य भारत की जनजातियों में आजीविका के पारंपरिक स्रोत

रमेश लाल केवट
शोधार्थी, जनजातीय अध्ययन विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक (मध्य प्रदेश)
Rameshlalk94@gmail.com
सपर्क सूत्र -7987584227

शोध सरांश :-

विश्व में जनजातियों की एक बड़ी आबादी भारत में निवास करती है। सन 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी का 8.6 प्रतिशत जनजातीय है, जिनका विस्तार देश के संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र में पाया जाता है। भारत की अधिकांश जनजातीय आबादी दुर्गम, पहाड़ी या वन क्षेत्रों में पायी जाती है। इन क्षेत्रों में जनजाति जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दे जैसे की निरक्षरता, कठिन भौगोलिक वातावरण, कुपोषण, पर्याप्त खाद्य संसाधनों की कमी, अस्वच्छता और कमजोर आर्थिक स्थिति आदि मुद्दे जनजातियों को विभन्न प्रकार की आपदाओं और सामयिक परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते है। इन मुद्दों का असर जनजातियों की आजीविका पर गहन रूप में देखा जाता है। भारत में जनजाति आजीविका स्त्रोतों से जुड़े मुद्दे और बहस कोई नई बात नहीं है, बल्कि यह मुद्दा हमेशा चर्चा का विषय रहा है। भारत के सन्दर्भ में माना जाता है कि विभिन्न कारणों से जनजातीय क्षेत्रों में आधुनिक आजीविका स्त्रोतों की कमी और पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों से जुड़ाव होने से इनकी महत्ता अधिक होती है। यही स्थिति गहन रूप में वर्तमान चयनित क्षेत्र पुष्पराजगढ़ तहसील में भी देखने को मिलती है। प्रस्तुत अध्ययन मध्यप्रदेश राज्य के अनूपपुर जिले की पुष्पराजगढ़ तहसील की जनजातियों द्वारा अपनी जीवन निर्वाह हेतु उपयोग में लाये जाने वाले पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की पहचान और उनकी भूमिका का आंकलन करने के लिए संपन्न किया गया है। पुष्पराजगढ़ तहसील एक जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है, सन 2011 की जनगणना के अनुसार इस तहसील की कुल 76.8 प्रतिशत आबादी जनजातीय है। पुष्पराजगढ़ एक दुर्गम और सघन वन क्षेत्र है, जहां पर निवासित जनजातियों के जीवन में पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की गहन भूमिका पायी जाती है। इस शोध आलेख में जनजातियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों को प्रमुख चार भागों में विभक्त करके प्रस्तुत किया गया है। जैसे कि जंगल, पशुपालन, कृषि और मछलीपालन। इन आजीविका स्त्रोतों का उपयोग क्षेत्र की भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। अतः क्षेत्र के मौसम में परिवर्तन होने से आजीविका स्त्रोतों के उपयोग में भी परिवर्तन देखने मिलता है।

बीज शब्द- मध्यप्रदेश, अनूपपुर, पुष्पराजगढ़, जनजातीय समुदाय, सामाजिक-सांस्कृतिक, जीवन निर्वाह, आर्थिक लाभ,

प्रस्तावना-मध्यप्रदेश राज्य एक जनजातीय बाहुल्य प्रदेश है, जिसकी 2011 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या 153.17 लाख है। यह जनजातीय आबादी मध्यप्रदेश की कुल आबादी का 21.1 प्रतिशत है। इस राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाली जनजातियों में आनुवंशिकता, जीवन शैली, सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक-आर्थिक संरचना, धार्मिक विश्वासों और उनके द्वारा बोली जाने वाली बोली (भाषा) में विविधता देखने को मिलती है। सिंह, दीक्षित और यादव (2019) मानते हैं कि विभिन्न भाषाई, सांस्कृतिक, भौगोलिक, शैक्षणिक और आर्थिक जटिलताओं के कारण मध्य प्रदेश की अधिकतर जनजातियां अन्य समकालीन समुदायों की तुलना में काफी हद तक विकास की मुख्य धारा में पिछड़ गई हैं। मध्य प्रदेश राज्य में 46 मान्यता प्राप्त अनुसूचित जनजातियां निवास करती हैं, जिनमे से तीन (बैगा, भारिया और सहारिया) की पहचान 'विशेष रूप से संवेदनशील जनजातीय समूह' (PVTG) के रूप में की गई है। मध्य प्रदेश राज्य की मुख्य जनजातियों की बात की जाए तो गोंड, भील, बैगा, कोरकू, भारिया, हलबा, कोल, मारिया और सहरिया आदि जनसंख्या के आधार पर बड़े जनजाति समूह माने जाते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का उदेश्य पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले पारंपरिक अजीविका स्त्रोतों की वर्तमान स्थिति, महत्ता और जनजातियों की इन स्त्रोतों पर निर्भरता के आंकलन का प्रयास है। आजीविका समय और स्थान के संबंध में गतिशील शब्द है, अतः स्थान परिवर्तित होने से आजीविका का अर्थ भी परिवर्तित हो सकता है। आजीविका पर क्षेत्र विशेष की भौगोलिक स्थिति और संस्कृति का प्रभाव भी देखा जाता है। यह अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आजीविका का विविधीकरण केवल मौजूदा जीवन स्तर में सुधार के बजाय सर्वांगीण रूप से आने वाले जीवन और पर्यावरण की बेहतरी भी सुनिश्चित करता है। पारंपरिक आजीविका स्त्रोत के उपयोग और महत्ता के संबंध में ज्ञान की एक निश्चित समृद्धि और विविधता अभी भी जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक विरासत के एक हिस्से के रूप में जीवित है। अतः तेजी से बदलते इस मशीनीकरण के दौर में यह अति महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि इस जैव-सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित रखने एवं इसके प्रसार के लिए इस विरासत का उचित रूप में दस्तावेजीकरण किया जाए और साथ ही संबंधित जनजातियों की पहचान के माध्यम से इसे बढ़ावा दिया जाए। इस महत्वपूर्ण ज्ञान की पर्यावरणीय विविधता के सभी घटकों को संरक्षित रखने और इसे बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक स्थायी प्रबंधन दृष्टिकोण के ढांचे के भीतर इस महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत पर विचार करना बहुत आवश्यक हो गया है।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत अध्ययन मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले के पुष्पराजगढ़ तहसील में निवासरित जनजातियों द्वारा आजीविका निर्वाह हेतु उपयोग में लाए जाने वाले पारंपरिक स्त्रोतों की पहचान और उपयोगिता का आंकलन करने के लिए किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार पुष्पराजगढ़ तहसील में कुल 176,741 जनजातीय आबादी निवास करती है, जो तहसील की कुल जनसंख्या का 76.8 प्रतिशत है। अतः आबादी के आधार पर पुष्पराजगढ़ तहसील एक जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है, जिसमें गोंड और बैगा मुख्य जनजातियां हैं। इसके अतिरिक्त पनिका, प्रधान, अगरिया और कोल आदि जनजातियां भी पुष्पराजगढ़ तहसील में निवास करती हैं। इस तहसील का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 1652.20 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें कुल 269 गांव और 119 ग्राम पंचायतें मौजूद हैं। क्षेत्रफल के आधार पर देखें तो यह तहसील उत्तर-पश्चिम में उमरिया जिले, उत्तर पूर्व में शहडोल जिले, पूर्व में जतहरी तहसील, दक्षिण-पूर्व में छत्तीसगढ़, दक्षिण पश्चिम और पश्चिम में डिंडोरी जिले से घिरा हुआ भौगोलिक क्षेत्र है। इस तहसील की कुल 96.3 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण है जबकि मात्र 3.7 प्रतिशत जनसंख्या अर्ध शहरी क्षेत्र में निवास करती है। पुष्पराजगढ़ तहसील की औसत साक्षरता दर 60.9 प्रतिशत है और औसत लिंगानुपात 994 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष है। इस तहसील में कुल 57 प्रतिशत आबादी कामकाजी है। कुल कामकाजी आबादी में से 59.20 प्रतिशत किसान, 33.43 प्रतिशत खेतिहर मजदूर, 0.89 प्रतिशत घरेलू उद्योग और 6.48 प्रतिशत अन्य कार्यों को करते हैं। भौगोलिक रूप से पुष्पराजगढ़ क्षेत्र बहुत ही दुर्गम, शुष्क और पहाड़ी क्षेत्र है, जहां अधिकतर क्षेत्र में मात्र एक ही फसल (धान) उत्पन्न होती है। अतः इस क्षेत्र में आजीविका स्त्रोत जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप अन्य क्षेत्रों से भिन्न होते हैं।

शोध प्रविधि - जैसा कि वर्णित है पुष्पराजगढ़ तहसील एक जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है, जो भौगोलिक रूप से बहुत ही दुर्गम, शुष्क और पहाड़ी क्षेत्र माना जाता है। इस क्षेत्र में आधुनिक आजीविका स्त्रोतों की कमी और पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की प्रचुरता के चलते पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातियां अपनी आजीविका निर्वाह हेतु इन्हीं पारंपरिक स्त्रोतों एवं लघु वनोत्पाद पर निर्भर करती हैं। इन स्त्रोतों की जनजातीय जीवन में महत्ता और भूमिका का आंकलन करने के लिए प्रस्तुत अध्ययन सम्पन्न किया गया है। इस अध्ययन में पुष्पराजगढ़ तहसील में निवासित जनजातियों की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, क्षेत्र अवलोकन एवं आजीविका स्त्रोतों से संबंधित तथ्य एकत्रित करने हेतु पूर्ण रूप से गुणात्मक तथ्यों का सहारा लिया गया है। अतः प्राथमिक तथ्य एकत्रित करने हेतु असंरचित साक्षात्कार और अर्ध-सहभागी अवलोकन तकनीक का उपयोग किया गया है। जिसमें शोध उपकरणों के रूप में साक्षात्कार निर्देशिका, अर्ध-सहभागी अवलोकन, आवाज की रिकॉर्डिंग

और फोटोग्राफी तकनीक का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों को संपूर्णता देने के लिए द्वितीयक सूचनाओं की भी सहायता ली गई है, जिसमें विभिन्न दस्तावेजों, शोध पत्रिकाओं, पुस्तकों और समाचार पत्रों जैसे स्रोतों से तथ्य एकत्रित किए गए हैं। सूचनादाताओं का चयन उदेश्यात्मक निदर्शन तकनीक के माध्यम से किया गया है, जिसमें क्षेत्र के सभी आयु वर्गों के पुरुष और महिलाओं को सम्मिलित किया गया है।

पारंपरिक आजीविका स्त्रोत - पुष्पराजगढ़ तहसील प्राकृतिक रूप से बहुत ही समृद्ध क्षेत्र है, जो प्राकृतिक और मानवनिर्मित आजीविका स्त्रोतों के उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु प्रदान करता है। इस अध्ययन में जनजातियों द्वारा जीवन निर्वाह में उपयोग किए जाने वाले पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों को प्रमुख चार भागों जंगल, पशुपालन, कृषि और मछली पालन आदि रूपों में प्रस्तुत किया गया है।

1)**जंगल से प्राप्त होने वाले आजीविका स्त्रोत**- यह स्त्रोत उन लोगों को संदर्भित करता है, जो जंगल और वन्य क्षेत्रों से अपनी आजीविका का सारांशिक अंश प्राप्त करते हैं। पुष्पराजगढ़ तहसील एक सघन वन क्षेत्र है जहां प्राकृतिक स्त्रोतों की प्रचुरता है। अतः इस क्षेत्र की जनजातियों के जीवन में जंगल से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक स्त्रोतों की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। जिसमें की महुआ, तेंदपत्ता, शहद, अचार की चिरोंजी, काली हल्दी, हर्रा बहेरा, जलाऊ लकड़ी और पशुओं के लिए चारा आदि प्रमुख प्राकृतिक स्त्रोत हैं, जो जनजातियों की आजीविका के मुख्य आधार हैं।

महुआ- भारत की अनेक जनजातियों के लोग महुआ के फूलों, फलों, और बीजों का प्रचुर मात्रा में उपयोग करते हैं। महुआ पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातियों में आजीविका का एक प्रमुख स्रोत है। महुआ एक बड़ा पर्णपाती पेड़ है, जिसका इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता है। महुए के पेड़ में गर्मी के मौसम की शुरुआत (मार्च महीने) में व्यापक मात्रा में फूल लगते हैं, जिन्हें संग्रहित कर सुखा लिया जाता है। पुष्पराजगढ़ की जनजातियों द्वारा एकत्रित किए गए महुआ के फूलों का कुछ भाग आवक के समय ही साप्ताहिक बाजार में विक्रय कर दिया जाता है।

जनजातियों को महुआ के फूलों की आवक के समय 15 से 20 रुपये और बारिश के मौसम में 35 से 40 रुपये प्रति किलोग्राम का दाम प्राप्त हो जाता है। बाकी शेष भाग को जनजातियों द्वारा वर्ष भर के उपयोग और विक्रय हेतु मिटटी से बने हुए पात्र (कुठली) में सुरक्षित भंडारित कर लिया जाता है। पुष्पराजगढ़ की जनजातियां महुआ के फूलों का उपयोग औषधीय रूप में भी करती हैं। जनजातीय लोग मानते हैं कि महुआ के फूलों की तासीर गर्म होती है, जिसका उपयोग खाद्य पदार्थ के रूप में करने से दमा, निमोनिया, जुखाम और काली खांसी जैसे रोगो से राहत मिलती है। महुआ के फूलों का उपयोग करने के लिए सर्वप्रथम कुछ मात्रा में महुआ के फूलों को हल्की आंच में भुन लिया जाता है, तत्पश्चात इन भुने हुए फूलों को ठण्डा कर चूर्ण बना लिया जाता है। इस चूर्ण को आवश्यकतानुसार गेंहू के आटे में मिलाकर रोटियां बना ली जाती हैं, जो खाने में अत्यंत ही स्वादिष्ट लगती हैं। साथ ही भुने हुए महुआ के फूलों को खाने में उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त जनजातियों द्वारा महुए की शराब (दारू) भी काफी मात्रा में बनाई जाती है जो उनकी आय का एक प्रमुख स्रोत है। अतः पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातियों में महुआ के फूलों का गहन संस्कृतिक, आर्थिक और औषधीय महत्व देखने को मिलता है।

तेंदूपत्ता -तेंदूपत्ता भी इस क्षेत्र की जनजातियों में आजीविका का मुख्य स्रोत है। इसके नये पत्तों का विक्रय किया जाता है, जिनसे बीड़ी का निर्माण किया जाता है। तेंदूपत्ता का आवक समय मई से जून के मध्य होता है, जिस समय जनजातीय लोग नए पत्तों को तोड़कर एक गठ्ठे के रूप में बांधकर उसे सूखने के लिए रख देती हैं। तत्पश्चात बांधे गए गट्ठों को ठेकेदार द्वारा खरीद लिया जाता है। पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में जनजातियों द्वारा बीड़ी बनाने का कार्य नहीं किया जाता है, इसलिए पत्तों का सीधा विक्रय कर दिया जाता है। इस तरह जनजातियों द्वारा तेंदूपत्ता का विक्रय कर 5000-6000 रूपए सालाना आय प्राप्त कर ली जाती है।

शहद -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातियों में शहद को एक प्राकृतिक मिठाई मानती है। पुष्पराजगढ़ एक बहुत ही सघन वन क्षेत्र है, जहां शहद का उत्पादन भारी मात्रा में होता है। इस क्षेत्र की जनजातियां शहद के छत्तों को ढूंढने एवं शहद एकत्रित करने में पारंगत होती हैं। जनजातियां एकत्रित की गई शहद का उपयोग औषधि निर्माण (काली खांसी का इलाज), खाद्य पदार्थ (मिठाईयों) और पारंपरिक मान्यताओं को पूरा करने में करती हैं। इसके अतिरिक्त शहद का विक्रय कर आर्थिक लाभ भी कमाती हैं।

बांस -बांस की लकड़ी बहुत मजबूत और टिकाऊ होती है, जिसमें कभी भी घुन नहीं लगता है। पुष्पराजगढ़ के जनजातीय लोगों द्वारा बांस की लकड़ी का कई प्रकार से उपयोग किया जाता है, जैसे कि घर का छप्पर और बाड़े की सीमा निर्मित करने, खिलौने, औजारों में लगने वाली लकड़ी के रूप में और सांस्कृतिक उत्सवों, मेलों और नृत्य-संगीत कार्यक्रमों में सजावटी सामान बनाने आदि में उपयोग किया जाता है। अतः कह सकते हैं बांस एक बहू उपयोगी वस्तु या लकड़ी है, जो पुष्पराजगढ़ की जनजातियों की आजीविका निर्वाह में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

अचार की चिरोंजी और हर्रा बहेरा -अचार एक मौसमी फल प्रदान करने वाला पेड़ है, जिसमें मई से जून के मध्य छोटे-छोटे फल लगते हैं। इन फलों के पक जाने पर इन्हें खाद्य पदार्थ एवं विक्रय हेतु उपयोग किया जाता है। फल खाने के पश्चात प्राप्त गुठलियों को फोड़ लिया जाता है, जिनमें से चिरोंजी (छोटे बीज) निकलती है। जनजातियों का मानना है कि अचार की चिरोंजी बहुत ही स्वादिष्ट और पोष्टिक होती हैं, जिस कारण से इसकी मांग भी बहुत अधिक होती है। चिरोंजियों का आकार काफी छोटा होने के कारण उत्पादन कम होता है किन्तु इसका अच्छा मूल्य लगभग 600-700 रूपए प्रति किलोग्राम प्राप्त हो जाता है, जो जनजातियों को आर्थिक आधार प्रदान करता है। इसके अतिरिक हर्रा - बहेरा भी पुष्पराजगढ़ की जनजातियों में एक मुख्य स्त्रोत माना जाता है। यह एक बहुत ही ठोस फल वाला पेड़ है, जिसकी गुठलियों को फोड़कर प्राप्त बीजों को विक्रय हेतु एकत्रित किया जाता है। जनजातियों द्वारा बहेरा के फलों को एकत्रित कर उसे सुखाने के लिए रख दिया जाता है, फलों के सूखने के पश्चात प्राप्त गुठलियों को फोड़कर बीज निकाल लिए जाते हैं। जिन्हें विक्रय कर आर्थिक आय प्राप्त की जाती है।

विभिन्न औषधियां - पुष्पराजगढ़ क्षेत्र के जंगलों में पारंपरिक औषधियां प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। क्षेत्र में निवासरित जनजातियों में इन औषधियों को प्राप्त करने की जगह, उपयोग की विधि एवं रोग उपचार के संबंध में गहन ज्ञान देखने को मिलता है। पूर्व में जनजातियों द्वारा औषधियों को मात्र समाज सेवा हेतु ही उपयोग किया जाता था किन्तु कालांतर में यह औषधियां आजीविका के एक स्त्रोत के रूप में उपयोग की जाने लगी हैं। पुष्पराजगढ़ तहसील में स्थित अमरकंटक एक बहुप्रसिद्ध प्राकृतिक एवं धार्मिक स्थल है, जहां प्रतिवर्ष लाखों की तादात में श्रद्धालु और पर्यटक यात्रा करने पहुँचते हैं। इस विशेष स्थल पर क्षेत्र की जनजातियां जंगलों से एकत्रित की गई विभिन्न पारंपरिक औषधियों का विक्रय करती हैं, जो जनजातियों की आर्थिक आय में सहायक होता है।

2) पशुपालन - पुष्पराजगढ़ की जनजातियों द्वारा अन्य क्षेत्र की जनजातियों के समान ही विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों जैसे कि गाय, बकरी और मुर्गी आदि का भी उपयोग मुख्य आजीविका स्त्रोत के रूप में किया जाता है, किन्तु पशुपालन इस क्षेत्र की जनजातियों का मुख्य व्यवसाय नहीं है। पशुओं को मात्र घरेलू (दूध और मांस) और कृषि के उपयोग के लिए ही पाला जाता है।

इस क्षेत्र की जनजातियों के लगभग प्रत्येक परिवार में कुछ गाय पाली जाती हैं, जिनका उपयोग मात्र घरेलु उपयोग (दूध की आवश्यकताओं) और खेती में हल चलाने में किया जाता है, गाय का मांस पूर्णतः वर्जित माना जाता है। पुष्पराजगढ़ एक

सघन वन क्षेत्र होने के बावजूद इस क्षेत्र में बैलगाड़ी का उपयोग नहीं किया जाता है। जबकि गाय के विपरीत बकरी एक ठोस आय का साधन है, लगभग प्रत्येक परिवार द्वारा कुछ बकरियां पाली जाती हैं जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर विक्रय कर आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण किया जाता है और मांस का खाद्य आपूर्ति में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त पक्षियों में मात्र मुर्गियों का ही पालन किया जाता है। प्रत्येक परिवार में कुछ देशी मुर्गियां पाली जाती हैं, जो घरेलु खाद्य आपूर्ति एवं विक्रय दोनों रूप में उपयोग में लायीं जाती हैं। वर्तमान में बदलते समय के प्रभाव में दूध का विक्रय कर आय प्राप्त करने हेतु कुछ जनजातीय परिवार भैंस का भी पालन करने लगे हैं। कम पशुपालन का एक मुख्य कारण इस क्षेत्र में उपजाऊ और सिंचित कृषि का आभाव है, जिसके कारण पशुओं को खिलाने के लिए चारे की समस्या उत्पन्न होती है।

3) कृषि से प्राप्त होने वाले आजीविका स्त्रोत -

देश की अन्य जनजातियों के समान ही पुष्पराजगढ़ की जनजातियों का भी मुख्य व्यवसाय कृषि ही हैं। क्षेत्र की जलवायु के अनुसार कृषि से उत्पादित की जाने वाली फसलों और फलों में काफी विविधता देखने को मिलती है, जिस कारण से किसी एक विशेष फसल पर पूर्ण निर्भर नहीं रहा जाता है।

मुख्य फसलें -

पुष्पराजगढ़ का अधिकतर क्षेत्र असिंचित (सूखाग्रस्त) क्षेत्र है, इस कारण से जनजातियों द्वारा अधिक निर्भरता खरीफ की फसलों पर ही की जाती है। अतः इस क्षेत्र की मुख्य फसलें धान, मक्का, सोयाबीन, कोदों और कुटकी हैं। क्षेत्र में रवि की फसलों का उत्पादन बहुत कम किया जाता है, जिसका मुख्य कारण पथरीली जमीन और सिचाई के संसाधनों की कमी है।

धान-

इस क्षेत्र की जनजातियों द्वारा सर्वाधिक उत्पादित की जाने वाली फसल धान है, जो जनजातियो की दैनिक और आर्थिक दोनों आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। चावल इस क्षेत्र की जनजातियों द्वारा उपयोग किया जाने वाला मुख्य खाद्य स्त्रोत भी है, जो जनजातियों की आय का मुख्य स्त्रोत है। जबकि गेंहू या अन्य खाद्य पदार्थ अल्प मात्रा में ही उपयोग किए जाते हैं। इसके अतिरिक वर्ष भर की खाद्य आपूर्ति के लिए भी अनाज सुरक्षित भंडारित कर लिया जाता है। इस क्षेत्र की जनजातियां धान की फसल से सांस्कृतिक रूप से भी अत्यंत जुड़ाव रखती हैं। धान की कटाई के पश्चात नए अनाज के आने की खुशी में जनजातियों द्वारा उत्सव मनाया जाता है, जिसमें समस्त जनजातीय समुदाय के लोग एकत्रित होकर पारंपरिक गीत गाते हैं और नृत्य करते हैं। जनजातियों द्वारा चावल का उपयोग खाने के अलावा पारंपरिक रूप से स्थानीय पेय पदार्थ (कोसना) बनाने में भी किया जाता है।

मक्का

इस क्षेत्र में मक्का दूसरी मुख्य फसल है। प्रत्येक जनजाति परिवार प्रतिवर्ष औषतन 400 से 600 किलोग्राम तक मक्का का उत्पादन करता है। जो जनजातियों की घरेलु एवं आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायता करती है। जनजातियों द्वारा मक्का का उपयोग विभिन्न तरीके से किया जाता है, जैसे कि हरे भुट्टे को भूनकर खाद्य पदार्थ के रूप में, इसके अतिरिक्त रोटी बनाकर उपयोग किया जाता है, जो बहुत ही स्वादिष्ट और पोष्टिक होती हैं, साथ ही मक्का का दलिया भी उपयोग में लाया जाता है। मक्के की दलिया को दही या मट्ठा के साथ उबालकर पकाया जाता है, जिसे 'महेरी' कहा जाता है।

सोयाबीन

पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में धान के पश्चात खरीफ की फसल में सोयाबीन एक प्रमुख नगदी फसल है, जो इस क्षेत्र की जनजातियों की आय के प्रमुख स्त्रोतों में से एक है। जनजातियों के अधिकतर खेतिहर परिवार इस फसल से औषतन 15 से 20 क्विंटल अनाज उत्पादित कर लेता है। जिससे जनजातीय किसान परिवार को एक आवश्यक आय प्राप्त हो जाती है। विक्रय के अतिरिक्त जनजातीय लोग सोयाबीन का उपयोग खाद्य के रूप में अधिक किया जाता है, जो उनकी घरेलू अवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायक सिद्ध होता है।

कोदों और कुटकी

यह दोनों अनाज मोटे अनाज की श्रेणी में आते है, जो सर्वप्रमुख पोष्टिक अनाज माने जाते है। कोदों और कुटकी की सोयाबीन और धान की तुलना में कम उत्पादन क्षमता के चलते पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में कम उत्पादन किया जाता है। कुछ समय पूर्व तक मध्य भारत की लगभग समस्त जनजातियों द्वारा यह दोनों प्रकार के अनाज उत्पादित किए जाते थे किन्तु कालांतर में इनके उत्पादन में कमी आयी है। जबकि पुष्पराजगढ़ के कुछ क्षेत्रों में कोदों और कुटकी के उत्पादन को धान और मक्का के बाद मुख्य फसलों में गिना जाता है। इन फसलों की उत्पादन क्षमता कम होती है, प्रत्येक जनजातीय परिवार औषतन 100 से 150 किलोग्राम कोदों और कुटकी का उत्पादन करता है। यह दोनों अनाज एक ही किस्म के होते हैं अंतर मात्र इनके आकार में होता है। जहां कोदों बड़े आकार के सरसों के बराबर होता है, तो वहीं पर कुटकी थोड़ी छोटी लगभग तिली बीज के बराबर होती है। कोदों का बाजार विक्रय मूल्य भी कुटकी की अपेक्षा अधिक होता है। कोदों का विक्रय मूल्य औषतन 50 से 60 रूपए प्रति किलोग्राम प्राप्त होता तो वहीं कुटकी की अधिकतम 30 से 40 रूपए ही कीमत प्राप्त होती है।

अन्य फसलें -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में उत्पादित की जाने वाली अन्य सहायक फसलों में अलसी, रमतीला, गेंहूँ, चना, मसूर आदि मुख्य सहायक फसलें हैं।

कृषि से प्राप्त होने वाले मुख्य फल एवं सब्जियां - जनजातीय क्षेत्रों में उत्पादित किए जाने वाले प्रमुख फल और सब्जियां स्थानीय जनजातीय समुदायों के लिए महत्वपूर्ण आजीविका स्त्रोत हैं, यह स्त्रोत जनजातीय अर्थव्यवस्था का मुख्य एवं आवश्यक हिस्सा बनते हैं। पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में उत्पादित किए जाने वाले कुछ प्रमुख फल और सब्जियों का यहाँ वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं।

आम -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में आम का अत्यधिक उत्पादन होता है, जो इस क्षेत्र की जनजातियों में आजीविका का मुख्य स्त्रोत है। पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में बाजार व्यवस्था के आभाव में जनजातियों को आम का सही मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। इस कारण से एक से अधिक उत्पादन होने के बावजूद आम जनजातीय आजीविका का एक मुख्य स्त्रोत नहीं माना जाता है। अतः इस क्षेत्र की जनजातियों ने आम से आय प्राप्त करने के अन्य पारंपरिक उपाय भी खोज लिए है। जैसे कि आम को छीलकर सुखा लिया जाता है जिसे 'अमकरी' कहा जाता है। जनजातियां अमकरी का सीधा विक्रय भी करती हैं, इसके अतिरिक्त इसे पीसकर बनाया गया अमचूर और आम की गुठली का भी विक्रय कर आय प्राप्त की जाती है।

नींबू -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में नीबू भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण फल माना जाता है, जो घरेलू और विक्रय दोनों रूप में उपयोग किया जाता है। इस क्षेत्र के अधिकतर जनजातीय घरों के आसपास या बाड़ों में नीबू के पेड़ लगे होते हैं। पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जलवायु नींबू के उत्पादन के लिए अत्यधिक उपयुक्त जलवायु प्रदान करती है, जिसके कारण इस क्षेत्र में नींबू का प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता है। इसके अतिरिक्त नीबू पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जनजातीय संस्कृति का भी एक अभिन्न भाग है, जनजातीय लोग विभिन्न अनुष्ठानों पर इस फल को एक पवित्र फल के रूप में ईश्वर को अर्पित करते हैं।

केला -केला एक बहुत ही प्रमुख फल है, जो जनजातियों की आजीविका के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत है। पुष्पराजगढ़ के लगभग प्रत्येक घर के पीछे स्नान करने वाली जगह के पास केले के पेड़ लगाए जाते हैं। पुष्पराजगढ़ के दूरदराज के पिछड़े क्षेत्र जानकारी के आभाव में केले उत्पादन करते हैं, मात्र जनजातियों की घरेलू अवश्यकताओं तक ही सीमित होता है, इसका उन्हें अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है। जबकि कुछ विशेष गाँव जो तहसील के आसपास हैं, वे इसके उत्पादन की जानकारी और आर्थिक महत्व के चलते अधिक उत्पादन कर रहे हैं, जो जनजातियों को आर्थिक आय में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

पपीता -पपीता एक अन्य बहु उपयोगी फल है, जो पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जलवायु में प्रचुरता से उत्पादित होता है। यह एक ऐसा फल है, जो इस क्षेत्र की जनजातियों की अधिकतर आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकता है किन्तु उत्पादन की जानकारी और आर्थिक स्पर्धा के आभाव के चलते इसे मात्र घरेलू उपयोग के लिए ही उत्पादित किया जाता है, इसका कोई विशेष आर्थिक लाभ जनजातियों को नहीं मिल पाता है। जबकि अर्ध शहरी या उसके आसपास के क्षेत्रों में लोग आर्थिक लाभ हेतु पपीते का अधिक उत्पादन कर रहे हैं।

कटहल -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र की जमीन कठहल के उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त मानी जाती है, जिस कारण से इस क्षेत्र में में कठहल का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता है। चूँकि बाजार व्यवस्था की कमी और अधिक उत्पादन होने से जनजातियों को कटहल का उचित विक्रय मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। इसके बावजूद बाहरी व्यापारी जनजातीय क्षेत्र में विभिन्न फलों और सब्जियों की खरीद करने आने लगे हैं जो जनजातियो को आर्थिक लाभ प्रदान करते हैं। जनजातियां कटहल को आपस में एक दूसरे के साथ बांटकर उपयोग करती हैं जिससे उनके आपसी संबंध भी मजबूत होते हैं।

अन्य फल -प्रमुख फलों के अतिरिक्त अमरूद, नाशपाती, बेर, इमली, जामुन और सब्जियों में टमाटर, भटा, आलू और अन्य मौसमी सब्जियां जैसे कि लौकी, गिलकी, कद्दू, ककड़ी, कचरिया और हरे पत्तों वाली सब्जियों का भी उत्पादन पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में होता है, किन्तु इस क्षेत्र में बाजार की उचित व्यवस्था न होने से अधिक उत्पादन होने के बावजूद जनजातियां सही आर्थिक लाभ लेने से वंचित रह जाती हैं।

4) पानी से प्राप्त होने वाले आजीविका स्त्रोत -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में कृषि के बाद मछली पालन एक बहुत ही महत्वपूर्ण पारंपरिक व्यवसाय है, जो जनजातियों के लिए घरेलू खाद्य और आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। इस क्षेत्र में मिलने वाली प्रमुख मछलियाँ जिनके स्थानीय नाम रोहू, कतला, म्रगाल, पड़ीना, और चिलहाटी प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त झींगा और केकड़ा भी आजीविका का एक प्रमुख स्त्रोत माने जाते हैं। इस क्षेत्र में अनेक प्राकृतिक और मानव निर्मित पानी के स्त्रोत मौजूद हैं, जहां से जनजातीय लोग अपनी घरेलू और आर्थिक अवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए मछली और अन्य जलीय जीवों को पकड़ती हैं।

आधुनिक आजीविका स्त्रोतों के आभाव और पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों पर निर्भरता के मुख्य कारक -ऊपर वर्णित तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पुष्पराजगढ़ की जनजातियों के जीवन निर्वाह में पारंपरिक आजीविका स्त्रोंतो की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। इस स्थिति के लिए निम्न कारक जिम्मेदार हो सकते हैं।

पारंपरिक स्त्रोतों से सांस्कृतिक जुड़ाव -अनेक शोध कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत की प्रत्येक जनजातियों का उसके सांस्कृतिक तत्वों के साथ गहन जुड़ाव देखने को मिलता है। पारंपरिक आजीविका स्त्रोत भी जनजातीय संस्कृति का अभिन्न अंग होते हैं। भारत की जनजातियां सदियों से इस अमूल्य ज्ञान को मौखिक रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती आ रहीं हैं। इसके विपरीत आधुनिक स्त्रोतों की जानकारी के आभाव में जनजातीय लोगों के बीच इन स्त्रोतों के प्रति उपयोग में झिझक देखने को मिलती है।

आर्थिक विकास के प्रति प्रतिस्पर्धा की कमी -यह एक सर्वविदित तथ्य है कि लगभग सम्पूर्ण विश्व की जनजातियों में अपनी आवश्यकताओं के प्रति संतुष्टि की प्रबल भावना देखने को मिलती है। जनजातियां अपने भौगोलिक परिवेश के आसपास मिलने वाले प्राकृतिक संसाधनों में ही जीवन निर्वाह की प्रवृति विकसित कर लेते हैं। जहां एक ओर इस प्रवृति ने जनजातियों को सदियों तक आत्मनिर्भर रूप से अपने अस्तित्व को संरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है, तो वहीं दूसरी ओर यह प्रवृति जनजातियों के आर्थिक विकास में बाधा भी उत्पन्न करती है। आत्म संतुष्टि की प्रवृति पुष्पराजगढ़ की जनजतियों में भी प्रबल रूप में देखने को मिलती है, जिसके चलते इस क्षेत्र की जनजातियों में आर्थिक विकास के प्रति सजगता कम पायी जाती है।

आधुनिक आजीविका स्त्रोतों का आभाव -अनूपपुर जिले में कुल चार तहसील हैं, जिनमें पुष्पराजगढ़ तहसील भौगोलिक रूप से जिले के आधे भू-भाग में फैला हुआ है। जनजाति जनसंख्यात्मक बहुलता, सांस्कृतिक विविधता और कमजोर आर्थिक स्थिति इस क्षेत्र की पहचान है। इस तहसील में कुल 57 प्रतिशत आबादी कामकाजी है, जिसमें से 59.20

प्रतिशत किसान, 33.43 प्रतिशत खेतिहर मजदूर, 0.89 प्रतिशत घरेलू उद्योग और 6.48 प्रतिशत आबादी अन्य व्यवसायिक कार्यों को करती है। इन आंकड़ों से पुष्पराजगढ़ तहसील में उद्योगिक और अन्य आजीविका स्त्रोतों की आपूर्ति का अंदाजा लगया जा सकता है।

शिक्षा का निम्न स्तर -संपूर्ण विश्व में किसी भी मानव समाज को अपना अस्तित्व संरक्षित रखना होता है। किसी भी स्थिति में शिक्षा के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। विश्व में कोई भी देश या समुदाय कितना विकसित है, इस तथ्य की वैधता का ज्ञान उस समुदाय विशेष के शिक्षा के स्तर से लगाया जा सकता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत की जनजातियां अन्य वर्गों की अपेक्षा गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, खाद्य संसाधनों की कमी, अस्वच्छता, कमजोर सामाजिक-आर्थिक स्थिति आदि समस्याओं से जूझ रही हैं। इन समस्त कारकों का दुष्प्रभाव जनजातियों की आजीविका पर पड़ता है।

उचित जानकारी का आभाव -जैसा कि ऊपर वर्णित कई तथ्य बताते हैं कि पुष्पराजगढ़ में पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की प्रचुरता है। इसके बावजूद इस क्षेत्र में निवासित जनजातियों की आर्थिक स्थिति बहुत कमजोर और दयनीय अवस्था में है। इस स्थिति का एक मुख्य कारण इस क्षेत्र की जनजातियों में विद्यमान स्त्रोतों की आर्थिक महत्ता का आभाव है, जो उन्हें प्राप्त पारंपरिक स्त्रोतों के उचित और आवश्यक मूल्य से वंचित करता है।

कमजोर बाजार व्यवस्था -पुष्पराजगढ़ तहसील एक जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है, जिसकी कुल जनसँख्या में 76.8 प्रतिशत आबादी जनजातीय है। इस क्षेत्र में आवागमन हेतु कठिन रास्ते, बिखरी हुई जनसंख्या और कमजोर अर्थव्यवस्था के चलते इस क्षेत्र में आजीविका स्त्रोतों के क्रय-विक्रय के लिए बाजार व्यवस्था का अभाव देखने को मिलता है। इस स्थिति के चलते पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की प्रचुरता होने के बावजूद जनजातियों को आवश्यक आर्थिक आय प्राप्त नहीं हो पाती है।

भौगोलिक बाधाएं -पुष्पराजगढ़ तहसील भौगोलिक रूप से एक बहुत ही दुर्गम और सघन वन क्षेत्र है। इस क्षेत्र में कुछ वर्ष पूर्व तक पक्की सड़कों और अन्य आवागमन के संसाधनों आभाव था। यह स्थिति आवागमन और बाजार व्यवस्था को गहराई से प्रभावित करती है, जिस कारण से इस क्षेत्र की जनजातियां अपनी आजीविका में वृद्धि हेतु शहरी क्षेत्रों से नहीं जुड़ पाती हैं। वर्तमान समय में सरकार के प्रयासों के बाद स्थिति में सुधार हुआ है। जिसके चलते इस क्षेत्र की जनजातियों में आर्थिक प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, जो उनकी आजीविका में भी सुधार हेतु आवश्यक है।

उपसंहार -इस अध्ययन में प्रदत्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि पुष्पराजगढ़ तहसील में कुछ विशेष पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की प्रचुरता है, जो इस क्षेत्र की जलवायु के अनुसार उपयुक्त हैं। इस क्षेत्र की जनजातियों में पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों के उत्पादन, उपयोग और संरक्षण से संबंधित मगहन ज्ञान पाया जाता है, जिसे वे सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी में मौखिक रूप से हस्तांतरित करती आ रहीं हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न आजीविका स्त्रोतों की उपलब्धता होने के बावजूद अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा जनजातियों की आर्थिक स्थिति कमजोर है। इस स्थिति के पीछे निम्न कारक हैं जैसे कि जनजातियों की पारंपरिक स्त्रोतों से जुड़ाव, आर्थिक विकास हेतु प्रतिस्पर्धा में कमी, समकालीन समाज से मिलने में संकोच, आधुनिक आजीविका स्त्रोतों की कमी, शिक्षा का निम्न स्तर, उचित जानकारी का आभाव, बाजार व्यवस्था की कमी और भौगोलिक बाधाएं आदि जिम्मेदार हो सकते हैं। जहां एक ओर जनजातियों की पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों पर अधिक निर्भरता जनजाति जीवन का प्रमुख आधार है, जो उन्हें क्षेत्र में अपने अस्तित्व को जीवित रखने के लिए उपयुक्त बनाते हैं। वहीं आधुनिक आजीविका स्त्रोतों की क्षेत्र में कमी भी जनजातियों के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है। इन बाधाओं को दुरुस्त करने के लिए एक मध्यम मार्ग अपनाया जाना चाहिए। जिसमें पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों के उपयोग को आधुनिक समझ के साथ जोड़ दिया जाए तो परिणाम सार्थक हो सकते हैं।

आवश्यक सुझाव -जनजातीय स्वास्थ्य में आवश्यक सुधार और व्यापक जनजातीय स्वास्थ्य नीति के कार्यान्वयन के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए।

आधुनिक स्त्रोतों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए -कोई भी समाज बदलते समय के साथ अपने आप को बदले बिना अधिक समय तक संरक्षित नहीं रह सकता है। इसके अतिरिक एक देश का सर्वांगीण विकास तभी संभव है, जब उसमें रहने वाले समस्त वर्ग मुख्य धारा में समाहित हों जाए। भारत में जनजातीय समुदाय एक ऐसा वर्ग है, जो अन्य वर्गों की तुलना में आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर माना जाता है। अतः भारत के परिप्रेक्ष्य में यह नहीं कहा जा सकता है कि समस्त वर्गों का एक समान विकास हो रहा है। जिसका एक मुख्य कारण जनजातीय क्षेत्रों में आजीविका स्त्रोतों की कमी है। अतः जनजातीय क्षेत्रों में आजीविका स्त्रोतों की सार्थक वृद्धि कर उन्हें भी समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित किया जा सकता है।

बाजार व्यवस्था को दुरुस्त किया जाना चाहिए -जैसा की तथ्यों के आधार पर विदित है कि पुष्पराजगढ़ तहसील एक दुर्गम ग्रामीण जनजातीय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में पारंपरिक आजीविका स्त्रोतों की प्रचुरता होने के बावजूद आर्थिक आय के संसाधन बहुत कम है। जिसका एक प्रमुख कारण क्षेत्र में बाजार व्यवस्था का आभाव है, जिसके कारण जनजातियां उत्पादित आजीविका स्त्रोतों के क्रय विक्रय से वंचित रह जाती हैं। यदि क्षेत्र में बाजार व्यवस्था को दुरुस्त किया जाता है, तो जनजातियां उत्पादित सामाग्री का विक्रय कर सकती है। यह स्थिति जनजातियों को एक मजबूत आर्थिक आधार प्रदान कर सकती है।

उचित जानकारी का प्रसार होना चाहिए -पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में अनेकों ऐसे स्त्रोत हैं जो बाहरी दुनिया में अमूल्य माने जाते हैं। जनजाति क्षेत्रों में इन स्त्रोतों की प्रचुरता होने के बावजूद उचित जानकारी के आभाव में जनजातियां इनका लाभ लेने से वंचित रह जाती हैं। जैसे कि कटहल शहरी क्षेत्रों में एक बहुत

ही पोष्टिक और महंगी सब्जी मानी जाती है, जिसका पुष्पराजगढ़ क्षेत्र में भारी मात्रा में उत्पादन होता है। जानकारी और बाजार के आभाव में इस क्षेत्र में यह सब्जी एक मुख्य आय का एक ठोस स्त्रोत नहीं मानी जाती है। इसी तरह अन्य अनेकों स्त्रोत जैसे कि शहद, आम, अमरूद, जामुन अत्यधिक मात्रा में उत्पादित होते है, इसके बाबजूद जनजातीया बहुत कम आर्थिक लाभ ले पाती हैं। इस समस्या के निवारण हेतु विभिन्न माध्यमों जैसे कि आँगनवाड़ी एवं स्कूलों में विभिन्न कार्यक्रमों और दरसंचार माध्यमों द्वारा आजीविका स्त्रोतों के संबंध में गहन जानेकारी प्रदान की जा सकती है।

जनजातियों की झिझक को दूर किया जाना चाहिए -भारत में जनजातीय समुदाय बड़े पैमाने पर आधुनिक समाज से अलग कटा हुआ जीवन व्यतीत कर रहा है; वे आधुनिक समाज के संपर्क में आने से झिझकते हैं। भारत सरकार द्वारा इस झिझक को कम करने और जनजाति विकास को बढ़ावा देने के लिए किए जा रहे अनेक प्रयासों के बावजूद सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं। जिससे ज्ञात होता है कि जमीनी स्तर पर विकास नीतियों को ईमानदारी के साथ लागू नहीं किया जा रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप आज भी अधिकतर जनजातीय आबादी की आर्थिक स्थिति दयनीय अवस्था में है। अतः जनजातियों को उनकी सांस्कृतिक पहचान के साथ समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए कठोर और व्यापक कदम उठाने की आवश्यकता है। अतः जनजातियों के समग्र कल्याण को बढ़ावा देने के लिए इसके सभी हितधारकों को पूर्ण जिम्मेदारी के साथ कार्य करने की आवश्यकता है, तभी कुछ बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

****

सन्दर्भ सूची

1. Lamichaney, A., Chettri, P. K., Mukherjee, A., Maity, A., & Kumari, S. (2019). Indigenous Methods Of Grain Storage Followed By The Lepcha And Limbo Tribes In The Himalayan Tract Of Sikkim. *Indian Journal Of Traditional Knowledge (IJTK)*, *18*(4), 769-774.
2. Nagnur, S., Channal, G., & Channamma, N. (2006). Indigenous Grain Structures And Methods Of Storage. *Indian Journal Of Traditional Knowledge,* 5(1), 114-117.
3. Dwivedi, M. K., Shyam, B. S., Shukla, R., Sharma, N. K., & Singh, P. K.GIS Mapping Of Antimalarial Plants Based On Traditional Knowledge In Pushparajgarh Division, District Anuppur, Madhya Pradesh, India. *Journal Of Herbs, Spices & Medicinal Plants*, *26*(4), 356-378.
4. *Pushparajgarh Tehsil Population, Caste, Religion Data - Anuppur District, Madhya Pradesh.* (N.D.). Retrieved 08/04/2022, Retrieved From
5. Https://Www.Censusindia.Co.In: Https://Www.Censusindia.Co.In/Subdistrict/Pushparajgarh-Tehsil-Anuppur-Madhya-Pradesh-3696
6. Panduranga, R., Honnurswamy, N.,Status Of Scheduled Tribe In India.*International Journal Of Social Science And Humanities Research*, 2(4), 1
7. Singh, G., Dubey, M. K., Singh, S. R. K., &Meshram, M. (2022). Socio-Economic And Livelihood Pattern Of Ethnic Group Baiga In Baiga-Chak Of Dindori District Of Madhya Pradesh. The Pharma Innovation Journal, 11 (6), 1791-1797
8. Singh S. S. And Sharma A., (2019). A Study Of Composite Index: With Special Context To Gond Tribe Of Central India.*Humanities & Social Sciences Reviews,* 7(6), 1064-1076.
9. Singh, G. Dixit, H. And Yadav, K.S. (2019). Ensuring Livelihood Of Baiga Tribes Through Quality Seed Production Programme. *International Journal Of Current Microbiology And Applied Sciences,* 8(7) 2319-7706.
10. Government Of Madhya Parades Https://Anuppur.Nic.In/En/About-District/

Water crisis in India – Contemporary Perspectives and Paradigms

Saurabh Shubham
Research Scholar
University of Hyderabad

T.N. Mishra
Retired Director
Mines and Geology
Government of Bihar

Abstract: Water crisis and management is a permanent cause of concern for Indian Civilization. The water management issue is of outmost importance with the huge population which India has and needs proper attention with respect to the latest steps by the government of India and its implications on water management in different parts of India. This article focuses on different aspects , especially by the NITI Aayog and government of India to solve the 'water question'. This article also focuses on the international collaborations which India has made while trying to protect its water resources. It also focusses on the awareness level in the common people regarding water management and practices.

Keywords - Water crisis, population, international collaborations, water resources, water management.

1.1 Introduction -Water management in India has gained special attention and expertise ever since the formation of NITI Aayog (National Institution for Transforming India). The NITI Aayog has also given considerable freedom at the local, provincial and regional levels regarding water management and water governance. Apart from this, foreign collaborations like with the countries in the middle east and other parts of the world has also made the task of government easy . But, people in general have to be educated and enlightened about water management and water crisis. The rise of digital governance, and the government scheme DIGITAL INDIA has also promoted water governance, besides helping in public administration.

1.2 Contemporary Indian Scenario and Foreign Collaboration- India has partnered with Israel and other countries of the middle east and Europe to solve the water crisis problem. The rise and growth of water shortage in the several

developed countries of the world like the United States of America and other parts of the world and Israels' success in water resource management has drawn the attention of several developing countries like India to make an agreement with Israel and to solve the water crisis problem.It has been reported that txo enhance the existing bilateral collaboration, two Memoranda of Understanding (MoUs) were formalized during Prime Minister Modi's visit. These agreements aim to address issues pertaining to water conservation in India and involve the collaboration between the Ministry of Drinking Water and Sanitation of India and the Ministry of National Infrastructure, Energy, and Water Resources of the State of Israel. The first MoU focuses on the National Campaign for Water Conservation in India, while the second involves the partnership between U.P. Jal Nigam (Government of Uttar Pradesh) and the Ministry of National Infrastructure, Energy, and Water Resources of the State of Israel, specifically targeting State Water Utility Reform in India.

Furthermore, the SUN Group based in India has entered into a partnership with Israel's Water-Gen. This collaboration is centered on sharing technology for extracting water from the air, a crucial initiative given the escalating issues related to groundwater extraction, which has become increasingly unsustainable.

The India- Israel cooperation regarding water crisis has setup an India- Israel centre for water technology and is expected to develop systems and ideas which enable MoHUA in achieving the target of Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation (AMRUT) mission.

Biannually, Israel hosts the WATEC (Water Technology and Environment Control) conference, serving as a platform to exhibit its advancements in water and energy technologies. Regularly, delegations from the Indian government and businesses participate in the WATEC conference. Notably, in 2019, Gajendra Singh Shekhawat, the Union Jal Shakti Minister, visited Israel and actively engaged in the WATEC conference. During this visit, he held a bilateral meeting with his Israeli counterpart, Dr. Yuval Steinitz, the Minister of Energy. The Discussionsand reaffirmed the commitment of both nations to collaborate in enhancing global access to water resources.

The India Israel cooperation is a watermark in the history of India regarding water governance.

Besides this, Indias' NITI Aayog has made state rankings on the basis of water governance. It has also launched indicators like composite water management Index for various states. The NITI aayog has thus encouraged water conservation. The NITI aayog needs cooperation in this task from the grassroot level to the macroscopic level. We need to observe that NITI Aayogs' steps regarding water conservation are very much crucial.

In some states, water governance is closely related to crop conservation and management, but these are mainly deccan states , The water policy of different states in INDIA are differently oriented due to geography and culture. For example, Meghalaya has a system called drip irrigation , which is used to conserve rain water

During a conference on the India-Israel Strategic Partnership on Water held on November 18, 2019, Minister Gajendra Singh Shekhawat expressed a collaborative sentiment, stating, "Let's innovate together, diverge from conventional thinking, and support each other in overcoming challenges. Let's unite to generate synergy in the mission to save lives, preserve water, and consequently safeguard the planet. The rise and growth of environmentalism, ever since the Paris Climate Change conference in 2016 has furthered the cause of water conservation. The rise and growth of environmental consciousness, especially against desertification has led to a greater impact on the water resources, especially in the water resources sector.

The central government has also promoted water conservation by printing of figures like the Ran ki Vav in the hundred rupee new note and organizing small prize money quizzes for water conservation. The rise and growth of water conservation practices has also been furthered by the government portal MyGov, which has been actively used by several citizens. Water conservation is also a problem in the case of hilly and rocky terrain areas like Jharkhand where rainwater flows off. There is

a rise growth of practices like Bori Baandh or check dams which have been increased in practice and also intellectuals like Rajendra Singh and Simon Oraon have made significant intellectual contributions to the cause of water conservation in Jharkhand.

Several Non Government Organisations like Pradaan have contributed a lot in the growth and development of water resource management in India.

We can also make a study of the Har Ghar, Har Nal Jal project of the government of India in which considerable progress has been made since 2019, but the Covid crisis has made the project to a standstill.

The rise and growth of covid lockdown measures had promoted water conservation to a great extent in all parts of India. There was also a rise of general environmental conservation in all parts of the world. A reservoir of all the botanical resources in India has been made, in addition to other natural resources.

The rise of river cleaning projects, at the local, regional and national levels have also given rise to conservation of water projects. There is a great impact on the health of the general people of these projects. Some of the prominent examples are the cleaning of local rivers like Phalgu in Gaya, Sabarmati in Gujarat and Hampi in Karnataka. There was a rise of initiative from the local people on the cleanliness and rejuvenation project.

The Ganga river cleaning project has a lot of impact on the water cleaning projects of north India. Especially, cities like Varanasi, Prayagraj and Patna have been affected, where people have been impacted on a positive side due to cleaning of river water. The rise of water conservation practices have been detected to lead to rise in the general water level and the water table.We need to observe that wetlands and marshy lands have also led to the rise of water levels at their respective places. Also, there needs to be a geographical indicator to access the water quality at respective places. The rise and growth of environmental awareness, especially with regards to conservation of wetlands has also generated water consciousness and water conservation.

It is an important point to note that India has roughly 18 percent of the world population and limited amount of water resources. The stress on the water resources has been increasing with increasing population density. The population density has been increasing continuously and there has been a tremendous pressure on the water resources , despite serious measures, both from the government and non government side. We need to understand that the growth of urban culture has led to tremendous financial pressure on water resources like Yamuna in Delhi. There has been a continuous rise of NGOs working in the environmental sector.

Also, generally people don't care about water resources until very necessary. The Kaveri river water dispute between Karnataka and Tamil Nadu is a great example of how natural resources can impact the interstate and the relation between two states. It has also impacted centre- state relations.

The NGOs have been impacted due to covid and are yet to recover and work. Many of them have been permanently closed. Also, the rise of water conservation practices have developed in a refined and scientific way.

The use of renewable energy and the launch and leading of projects like LiFe (Lifestyle for Environment) and ISA(International Solar Alliance) by the Indian government has also promoted the growth of water conservation.

1.3 Recent G-20 Summit and Water Governance :-The traditional and modern methods of water conservation were shown to the G-20 delegates in the recent G-20 Summit held in various parts of India. The second session of the Environment and Climate Sustainability Working Group commenced with a primary focus on water resource management. Over 130 delegates from 19 G20 member countries, 9 invitee countries, and 13 international organizations participated in the meeting at The Mahatma Mandir in Gandhinagar, Gujarat. In her opening address, the Ministry of Jal Shakti welcomed delegates from G20 and invitee countries, underscoring the essential role of holistic water resource management in a nation's development and the global quest for water security.

The need for

collaboration and knowledge-sharing in the field of water resources was emphasized, with recognition given to the valuable work and innovations in water resource management by G20 members.The G20 members and other participants subsequently shared their best practices through presentations, covering a range of themes such as integrated and sustainable use of water resources, ecosystem management, waterbody restoration, rainwater management, groundwater management, water efficiency with adaptation to climate change, drought/flood management, watershed management with a focus on civil society participation, efficient water governance, safe drinking water and wastewater management, water supply augmentation, and participatory groundwater management practices.

The delegates were thanked for their active participation and for sharing best practices in water resources management. The presentations, encompassing a multitude of water issues and challenges, were acknowledged as immensely valuable for all G20 members. The commitment of India to collaborative scientific endeavors, rooted in the concepts of 'Universal brotherhood & Collective wisdom,' was highlighted, emphasizing the collective pursuit of 'One Earth, One Family, and One Future.'

Following the session, delegates visited exhibition stalls showcasing the quality work in various themes under the Ministry of Jal Shakti, including Atal Jal, Swachh Bharat Mission, Jal Jeevan Mission, Namami Gange, Jal Shakti Abhiyan, Nation Water Mission, etc. Excursion visits were then organized to sites demonstrating India's water management practices, including Adalaj Vav, showcasing ancient water management practices, Sabarmati Siphon illustrating India's engineering prowess with a tunnel under the Narmada river, Sabarmati Escape facilitating safe canal evacuation in emergencies, and Sabarmati River Front focusing on environmental improvement, social upliftment, and sustainable development along the riverfront. The G-20 summit and its success has strengthened the peoples' confidence in the central government regarding conservation of natural resources and especially water resources.

Measures of some states :-With regards to water conservation, the rise of awareness has also contributed in the environmental conservation, as also evident in the rural areas. As known from reliable sources, Tamil Nadu has made rainwater harvesting mandatory and has achieved considerable degree of success in it. The Kerala government has also sought to strict measures to protect its water resources. As a matter of fact, the ranking of Kerala in water management index of NITI Aayog.

Detailed description of the measures of NITI Aayog :-We need to consider the fact that water resource management has been the point of concern for NITI Aayog, which has released several compendiums for water resource management.
The composite water management Index, takes into account Restoration of water bodies, groundwater, irrigation, watershed development, participatory irrigation practices, rural drinking water and many other parameters.

There has been also an initiative from the government and private media- both print and electronic to support the causes of water conservation in India as per the local, regional and national requirements and specifications. Also, there has been a good role of NGOs – both National and International in water conservation projects.

Conclusion:-The government and the general masses, both have taken drastic steps to conserve water. This process has been further accelerated by the actions of the NITI Aayog and the ministry of Jal Shakti of the government of India.

Overall, during the covid – 19 period, it was seen that water conservation was given priority and there was a revival of all the water resources from the local to the international levels.

Also, we have seen that there was a revival of water resources due to the indigenous religion and culture in many parts of India – especially Jharkhand and Bengal. As already discussed in the article – the G20 presidency of India has seen serious discussion on water crisis. The general people have also become aware of the problem and started participating in the water conservation process. Also, there was a rise and growth in the rural water sanitation process as a result of Swatch Bharat mission and the local initiatives.

Anna Hazare, the anti corruption crusader has taken several steps in his village Ralegan Siddhi to promote water conservation and environmental practices. Also, with the rise in environmental consciousness in the post covid era, his works and actions have become more relevant and eye catching in the contemporary scenario.

Besides this, there are several examples like Rajendra Singh from Rajasthan and Simon Oraon from Jharkhand have established themselves as water conservation activists. Rajendra Singh has also been awarded Magsaysay award for his water conservation efforts.Water crisis problem can also be handled by the agricultural department in an amicable manner by the judicious use of water and water resources over a long period of time. This has been made possible by the use of rain water harvesting too. Agriculture in Punjab and Haryana, Rajasthan and Gujarat are burning examples.

The main challenges before the water conservation project at the overall level are – to preserve the existence of water resources, water pollution and the rise of community awareness regarding it and the most serious challenge- recognition and generation, including preservation of drinking water resources. Without proper drinking water resources, people are prone to many health diseases, especially those with scarce water resources areas like desert and coastal regions. So, conservation of water resources is both, the duty and right of the people of a country, as it adds to overall social, economic and cultural well being and progress.

****

Bibliography –

Books and Compendiums –

1. Aayog, NITI , Composite Water Management Index, March, 2017, pp. 8-12.
2. Aayog, NITI , Composite Water Management Index, July, 2023, pp. 49-50.
3. Aayog, NITI , Composite Water Management Index, July, 2023, pp. 10-14.

Websites-

1. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1911249

आज का सार्वभौमिक प्रश्न: युद्ध या मानवाधिकार?

प्रो. कन्हैया त्रिपाठी
(लेखक भारत गणराज्य के महामहिम राष्ट्रपति जी के विशेष कार्य अधिकारी रह चुके हैं)

सारांश: *युद्ध के समय हमारे मानवीय पक्ष समाप्त हो जाते हैं. केवल संप्रभुता एवं बर्चस्व की लड़ाई होती है. युद्धों के इतिहास यह बताते हैं कि इसमें धन-जन-सम्मान सबका नाश होता है। संघर्ष उसके बाद भी कायम रहता है। क्योंकि बचे हुए लोगों के जीवन और जीवनोपयोगी संसाधनों की भी बहुत दुर्दशा होती है। ऐसे में, मानवाधिकार कैसे सुरक्षित रह सकते हैं? इसके लिए बड़े पैमाने पर आह्वान और संवेदनाओं की बरसात होती है लेकिन युद्ध से रिक्त लोगों, धन-जन और अवसर की भरपाई के दुष्परिणाम राष्ट्र भी भोगते हैं। आखिर युद्ध हमारे लिए संकट के विषय हैं तो फिर इनका दुहराव क्यों होता रहता है, सवाल यह है। इस प्रपत्र में हाल ही में यूक्रेन और रूस के युद्ध को ध्यान में रखकर संघर्ष और मानवाधिकारों पर चिंता व्यक्त की गई है। साथ ही, इस प्रपत्र में युद्ध के संकट से उपजे जन-धन-संपदा और मनुष्यता की कई बर्बर कार्यवाही को रेखांकित करते हुए इससे कैसे मुक्त रहा जा सकता है, इस पर विचार किया गया है।*

की-वर्ड:- मनुष्य, युद्ध, संघर्ष, स्वतंत्रता, मानवाधिकार एवं भविष्य

सभ्यता विमर्श में हमारे लिए कई चीजें प्रत्यक्ष प्रश्न बनती हैं, तो कुछ चीजें परोक्ष रूप से। मनुष्य ने अपने जीवन में इन्हीं प्रश्नों का सामना किया है। अब जब सैमुअल हर्टिंगटन जैसे अध्येता क्लैस ऑफ़ सिविलाइजेशन के माध्यम से विमर्श को रोमांचक विमर्श में परिवर्तित कर रहे हैं, तो किसी को यह समझना मुश्किल हो जाता है कि हम किसी सार्थक नतीजे पर बहस को ले जाकर कोई सैद्धांतिकी में आमूलचूल परिवर्तन कर पाएंगे या नहीं? लेकिन जो भी हो हमारे सोचने-समझने का तरीका बदला है और इसमें और बदलाव भी आने वाले समय में होगा, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र महासभा अध्यक्ष चबा कोरोसी ने अपने एक संबोधन में कहा, "हमें अभी तक नए युग का नाम तक नहीं मिला है, हम अभी तक इसका वैज्ञानिक रूप से वर्णन नहीं कर सकते हैं, लेकिन हमें लगता है कि यह आ गया है। हमारे वैश्विक सहयोग की बुनियादी शर्तें बदल गई हैं। हम अब एक अलग दुनिया में रहते हैं।"[1] इस बदलाव में सभ्यतागत और सांस्कृतिक रूप से बदलाव का रेखांकन एक न एक दिन होगा ही। किंतु राज्य जो शासन और संस्थागत संस्कृति के प्रतिमान हैं, उनके बीच में अंतर्कलह बहुत से नए सवाल पैदा करेंगे। जो सकारात्मक बदलाव की उम्मीद कर रही है पूरी दुनिया वह तो हम नहीं देख सकेंगे। जिन देशों में युद्ध हो रहे हैं और परमाणविक धमकियां भी आ रही हैं, वे हमारी मनुष्यता के लिए चुनौती है। हम जानते हैं कि संघर्ष के अनेकों स्वरूप हैं और पृथ्वी पर रहने वाले हर

प्राणी इस संघर्ष से विरत नहीं है। हर व्यक्ति का समय के साथ युद्ध है, क्योंकि न जाने कितनी चुनौतियाँ हैं हर व्यक्ति के जीवन में। यद्यपि इसे न ही उतना रेखांकित किया जाता है और न ही इसकी व्याख्या होती है। चर्चाएँ तो मानव-प्रायोजित युद्ध के ही होते हैं, और संघर्ष की अनेकों गाथाएं भी इन्हीं की लिखी जाती हैं। बड़ी संख्या में विस्थापन, हिंसा, अनिवासी होने के दर्द एक तरफ हैं, तो पर्यावरण और स्वास्थ्य के खतरों से जूझता मनुष्य कभी गरीबी, भुखमरी और भय का शिकार हो रहा है, तो कभी उसके भीतर की क्रूरता जागृत हो जा रही हैं। भोग तो अंततः मनुष्य करता है, इसलिए राज्य भी तो उसी के द्वारा शासित, अनुशासित और नियंत्रित है। प्रत्येक राज्य की सीमाएं इसीलिए उसके बस में हैं, और वह अपनी संप्रभु-शक्ति को सतत बनाये रखने के लिए युध्द तक कर रहा है। विश्व में जितने भी युद्ध हो रहे हैं, उसके पीछे मनुष्य की अपनी महत्वाकांक्षा, सीमा-विस्तार, प्रभुत्त्व कायम करने की चेष्ठा ही दोषी है। इसलिए यह संघर्ष भी बड़े पैमाने पर हमें मनुष्यों द्वारा सहन करते हुए देखने को मिल रहा है। सवाल यह है कि क्या यह मनुष्य जनित समस्या है युद्ध और संघर्ष? क्या यह राज्य की समस्या नहीं है? नहीं, ऐसा नहीं है। राज्य जब अपने अस्तित्व के साथ संघर्षशील हो जाते हैं, तो इस संघर्ष का स्वरूप बदल जाता है, और वे ज्यादा जिम्मेदार होते हैं क्योंकि यह शासित द्वारा उसकी महत्वाकांक्षा से उत्पन्न संघर्ष होता है। एक समय आता है कि यह युद्ध जैसी भयावह स्थिति के रूप में तब्दील हो जाता है। ऐसे में, राज्य तो सबसे ज्यादा अहितकर निर्णय लेकर कभी-कभी बड़े जनमानस को प्रभावित करते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध हो या द्वितीय विश्वयुद्ध दोनों की अवस्थाओं और परिणामों का आंकलन करें तो सिहरन ही हो जाती है कि मनुष्य समाज ने कितनी भयावह स्थितियों का सामना किया है। नागासाकी और हिरोशिमा में आज भी अपंगता के साथ जीवन जीने पर विवश मनुष्य, क्या इस मनुष्य सभ्यता और राज्य की महत्वाकांक्षाओं को प्रश्नांकित नहीं करते? होलोकॉस्ट की चर्चा होती है।

होलोकॉस्ट स्मरण ज़रूरी :-

यह एक प्रकार का नरसंहार था- इस घटना के साथ प्रलय सी स्थिति में हमारी सभ्यता पहुँच गई और उस होलोकॉस्ट के दुष्परिणाम पर आए दिन चिंताएं व्यक्त की जाती रही हैं। '77 वर्ष पहले, ऑशवित्ज़ प्रताड़ना शिविर को आज़ाद कराए जाने के साथ, हॉलोकॉस्ट रुक गया था. मगर वो समय, इस तरह के अपराध फिर कभी ना हों, ये सुनिश्चित करने के हमारे प्रयासों की शुरूआत थी' –एंतोनियो गुटेरेस के शब्द।[2] पार्क ईस्ट सिनेगॉग के रब्बाई (धार्मिक विद्वान) आर्थर श्नीयर जो स्वयं हॉलोकॉस्ट के भुक्तभोगी थे, उनकी अपनी आत्मा की आवाज़ को हॉलोकॉस्ट के सन्दर्भ में समझें- जीवित बचने के साथ ही, मैंने ये प्रतिज्ञा ली थी कि मैं अपना जीवन यहूदी विरोध-वाद और किसी भी तरह की नफ़रत का उन्मूलन करने में मदद के लिए समर्पित कर दूंगा, ताकि किसी अन्य आबादी को उसी तरह के अत्याचारों का सामना ना करना पड़े, जैसे अत्याचार यहूदी लोगों पर किये गए थे।[3] किसी भी युद्ध का वीभत्स स्वरूप होलोकॉस्ट का रूप ले सकता है इसलिए ऐसे क्रूर सचाई के सन्दर्भ में जिन्होंने संघर्ष किया है, वह मानवाधिकारों के हनन की किस पराकाष्ठा को अपने हृदय में दबाकर आगे बढे हैं, इसे समझा जा सकता है। नेतान्याहू को अपने बयान पर सफाई देनी पड़ी थी 2015 में और होलोकॉस्ट के विद्रूपता को उसी रूप में स्वीकार करना पड़ा था जो उसकी तथ्यात्मक व्याख्या है।

होलोकॉस्ट को स्मरण रखने की बातें की जा रही है, तो इसके पीछे बड़ा उद्देश्य छिपा हुआ है। ऐतिहासिक तथ्यों को सहेज कर रखना और इतिहास को तोड़-मरोड़कर पेश करने को चुनौती देना, इन प्रयासों का अहम हिस्सा है। अतीत, वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की भलाई की ख़ातिर, हमें ये सुनिश्चित करना होगा कि मानवता, इन भीषण और घातक अपराधों को कभी ना भूले।[4] मनुष्यता की रक्षा और सभ्यता के बचाव के लिए उस विशेष घटना का ध्यान रखना आवश्यक माना जा रहा है। यह मानवाधिकार की सततता के लिए भी आवश्यक है। निवर्तमान यूएन मानवाधिकार प्रमुख मिशेल बाशेलेट के बयान स्मरण हो आते हैं। मिशेल बाशेलेट ने यहूदियो के जनसंहार– हॉलोकॉस्ट को भयावह हैवानियत का अपराध क़रार दिया और ध्यान दिलाया था कि पूरे योरोप में, साठ लाख यहूदियों, रोमा और सिण्टी लोगों, दासों, विकलांगता वाले लोगों, एलजीबीटी लोगों, युद्ध बन्दियों और नाज़ी नैटवर्कों के विरोधी सदस्यों को क्रूरतापूर्वक मार दिया गया था। ...हॉलोकॉस्ट को याद करना एक अनिवार्य काम है, क्योंकि इन अपराधों से ये झलकता है कि नफ़रत फैलाव के परिणामस्वरूप, कितनी घातक त्रासदियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।[5]

संघर्ष की आतंरिक और बाहरी चुनौतियों को सामना किया जा सकता है लेकिन अतीत को भुलाना एक बड़ी भूल मानी जा रही है। हम अपने अतीत से फिर किसी भूल और नफ़रत के शिकार नहीं हों, इसके लिए होलोकॉस्ट स्मरण आवश्यक माना जा रहा है। मानवाधिकारवादी कार्यकर्ताओं, पैरोकारों और नफ़रत के खिलाफ आवाज़ उठाने वाले लोगों ने एक स्वर में इसको अपनी स्मृतियों में रखने का आह्वान किया है।

युद्ध और मानवाधिकार की विसंगतियाँ:-

युद्ध एक मनोविकार है। इसके पीछे पूर्णतया मनोविज्ञान छिपा हुआ है। इसे समझना आवश्यक है। मानवाधिकार तो मनुष्य के लिए एक श्रेष्ठ अवस्था है। लेकिन मानवाधिकार के साथ भी विभिन्न विसंगतियाँ हैं। दोनों के बारे में युद्ध और मानवाधिकार के विशेषज्ञ इसपर भी सहमत नहीं हैं कि दोनों विसंगतियों से जूझ रहे हैं लेकिन इनके मनोविज्ञान को समझते हुए यह पता चलता है कि इसमें कहीं न कहीं विसंगतियाँ हैं। राज्य अपने-अपने संप्रभु क्षेत्र में इसको पूर्णतया लागू नहीं कर पा रहे हैं। कभी-कभी राज्य को यह लगता है कि राज्य यदि पूर्णतया मानुषी केन्द्रित हो जाएंगे तो उनके संसाधन और

आर्थिक समस्याएं उन्हें जकड़ लेंगी। इससे भी मानव अधिकारों का हनन होता है। अनेक देशों में राजनीतिक दल की की आपसी गुटबंदी और हित इन मानव अधिकारों के हनन में सहायक बन जाते हैं। यथा-कोई योजना पूर्ववर्ती विपक्षी पार्टी की सरकार द्वारा लायी गयी, वह सत्ता में मात देकर आई पार्टियां उन्हें सही और गलत के बहस में या अपने राजनीतिक लाभ की दृष्टि से अपनी नई चीजों को प्रस्तुत कर देती हैं। ऐसे में, अनेक उन वर्गों का लाभ होता है जो उनके पक्ष में रहते हैं लेकिन जो उन्हें किसी तरीके से अपने एजेंडे में फिट नहीं बैठते उन्हें मानव अधिकारों के अतिक्रमण के लिए तैयार रहना पड़ता है। यह सामान्य विसंगति नहीं है। बहुत से देशों में रंगभेद और अल्पसंख्यकों के मामले प्रकाश में आते रहते हैं। चीन में मुस्लिमों की स्थितियाँ बहुत चिंताजनक बताई जाती हैं। बांग्लादेश और पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिंदुओं पर आवाज़े उठती हैं और भारत में भी अल्पसंख्यक मुसलमानों के बारे में ऐसे मुद्दे बार-बार प्रकाश में आते हैं। इसमें युद्ध युद्ध और मानवाधिकार के विशेषज्ञ विसंगतियों को तलाशने की कोशिश करते हैं। इसे गलत नहीं माना जाना चाहिए बल्कि मानव अधिकारों के संदर्भ में ऐसे सवाल उठने भी चाहिए क्योंकि सवाल राज्यों को सतर्क करते हैं और सतर्क राज्य अपने नागरिकों का ज्यादा ख्याल रख पाते हैं।

प्रोफेसर निगेल मैकलेनन का एक प्रपत्र 'द साइकोलॉजी ऑफ वार' हाल ही में साइक्रेग में प्रकाशित हुआ था। उनका मानना है कि, 'युद्ध मानवीय स्थिति का इतना हिस्सा लगता है कि यह पूछना वाजिब है: क्या मनुष्य युद्ध के लिए कठोर हैं? क्या आनुवांशिकी लोगों को युद्ध के लिए प्रेरित करती है ताकि संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करने वाले 'अन्य' के जीन को नष्ट करने के बाद उनके जीन को बेहतर ढंग से पुन: उत्पन्न किया जा सके? कई मानवविज्ञानी और पुरातत्वविदों ने सबूत प्रदान किए हैं कि मानव युद्ध लगभग 6000 से 10000 साल पहले उभरा था। युद्ध का उद्भव कृषि प्रणालियों और समाजों के निर्माण के साथ मेल खाता है। इसने भोजन के बड़े पैमाने पर उत्पादन के कई लोगों को शिकार और इकट्ठा करने के कभी न खत्म होने वाले चक्र से मुक्त कर दिया। बदले में, इसने कुछ लोगों को दूसरों के श्रम पर जीवित रहने में सक्षम बनाया, एक 'नेतृत्व' वर्ग तब उभरा। यदि कुछ लोगों के पास खाली समय और इसे निर्देशित करने की स्थिति के बाद ही युद्ध शुरू हुआ, तो यह इंगित करता है युद्ध की इच्छा कठोर नहीं है, या, यदि कठोर है, तो युद्ध की इच्छा के लिए आवश्यक है कि समय और संसाधन उपलब्ध हों जिसमें ऐसे किसी भी जीन को व्यक्त किया जाना है।'[6] यह एक आंकलन है और इस आंकलन को झुठलाया भी नहीं जा सकता। उत्तरोत्तर प्रो. अपने अध्ययन में यह व्यक्त करते हैं कि, 'पूरे इतिहास में राजनेताओं ने लोगों को 'देशों' जैसे मनमाने विचारों पर बड़े पैमाने पर हत्या करने का निर्देश दिया है। 'राजनीति में प्रवेश करने वाले लोगों के प्रकार से युद्ध एक जहरीला दुष्प्रभाव हो सकता है। व्यापक रूप से राजनीतिक प्रणालियों में फलने-फूलने के लिए जिन विशेषताओं को आवश्यक माना जाता है, वे हैं: झूठ बोलना, संकीर्णता और मनोरोगी। शायद यह कई राजनीतिक "नेताओं" का बेकार मनोविज्ञान है, जो युद्ध की ओर ले जाता है; सत्ता से चिपके रहने के अपने प्रयासों में वे कोई भी सिद्धांत त्याग देते हैं, कोई भी झूठ बोलते हैं, और कोई भी कार्य करने का आदेश देते हैं।.....देशभक्ति बदमाशों की अंतिम शरणस्थली है', इससे पहले विंस्टन चर्चिल ने भी 'देश' के विचार की शरण ली थी।'[7] यदि किसी अध्येता के निष्कर्ष को पूर्णतया न भी मानिता मिले, तो भी अकादमिक बहस में युद्ध के मनोविज्ञान को समझने के लिए आधार और सूत्र तो माना जा सकता है जो युद्ध के साथ मानुषी सभ्यता की विसंगतियों को रेखांकित करने के लिए ज़रूरी है और एक दृष्टि प्रदान करता है।

कृषि परंपरा के साथ संघर्ष की आशंका तो व्यक्त की जा सकती है लेकिन कृषि-कल्चर से युद्धों को जोड़कर देखा भी जा सकता है। जेबी हमारे विकास का मापदंड केवल कृषि थी तो उस समय के संघर्ष, अंतरद्वंद्व तो उन्हीं परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। अब सभ्यता का विकास हुआ। राज्यों का अस्तित्व और संप्रभुता की एक व्यापक समझ से मनुष्य सभ्यता संचालित होने लगी तो उसे इस परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है और उसे उसी संदर्भ में आज देखा भी जा सकता है क्योंकि विश्व में अधिकांश जगह तो राज्य ही शासन करके अपने परिक्षेत्र में मनुष्यता के और मनुष्यों के मानवीय पक्ष की सुरक्षा के पैरोकार बनते हैं। आज जो परिस्थितियाँ बनी हुई हैं दुनिया भर में, ऐसी परिस्थिति में तो राज्यों के युद्ध और मानवाधिकारों को भी समझना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इनका मनोविज्ञान क्या है।

युद्ध और मनवाधिकारों का अंतर्संबंध:-

मानवाधिकारों और सशस्त्र संघर्ष के बीच संबंध धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, जातीय, नस्लीय लैंगिक और अंतरराष्ट्रीय कानूनी विद्वानों के बीच न्यायोचित युद्ध की प्रकृति और युद्ध में उचित आचरण के बारे में ऐतिहासिक बहस में निहित है, जो अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून को भी रेखांकित करते हैं। मानवाधिकारों, युद्ध और संघर्ष के बीच संबंधों की समझ संघर्ष विश्लेषण से शुरू हो सकती है, क्योंकि मानवाधिकारों का उल्लंघन संघर्ष का कारण और परिणाम दोनों हो सकता है। इसका भयानक स्वरूप युद्ध हैं। इसके और भी अनेक कारण हमें विश्लेषण से मिलेंगे और उस पर प्रायः चर्चा संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार सुरक्षा परिषद में भी होती रही है। युद्ध की विभीषिका झेल रहे राज्य इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। शरणार्थी-लोग इसके उदाहरण हैं। आर्थिक-मामले और अन्य संप्रभुता के लिए लड़ाई लड़ने वाले राज्य इसके उदाहरण हैं। परमाणु-सशक्तीकरण की होड़ इसके उदाहरण हैं। मानव अधिकारों का हनन हथियारों की सशक्तीकरण के कारण है। धन का अपव्यय तुद्ध और हथियार के एकत्रीकरण में जब होने लगेंगे तो उसका धन का संबंध नागरिकों से जुड़ा हुआ है कि नहीं इसका जवाब यदि तलाशा जाए तो युद्ध और मानव अधिकार के अंतर्संबंध भी समझ आने लगेंगे।

मानवीय इच्छाओं और व्यवस्था की इच्छाओं में इतना अंतर बढ़ गया इससे मानव अधिकारों का हनन ज्यादा होने लगा है। संघर्षरत लोग और मशीनीकृत व्यवस्था के साथ बाज़ार की होड़ युद्ध के कारण हैं और मनवाधिकारों के हनन के कारण भी हैं।

मानवाधिकारों का संरक्षण आवश्यक:-

वर्टेण्ड रसल ने एक महत्वपूर्ण बात की थी कि सभी मानव गतिविधि इच्छा से प्रेरित हैं। इच्छाशक्ति का होना जहां आवश्यक है वहीं इच्छाओं को अनुशासित करना भी आवश्यक है। यदि इच्छाशक्ति का दुरुपयोग हो और उसको मनुष्यता के खिलाफ खड़ा किया जा रहा हो तो वहाँ मानव अधिकारों का हनन संभव है। युद्धरत देशों के लिए संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार सुरक्षा परिषद की एडवाइजरी ऐसे समय में काम नहीं आ रही है क्योंकि वहाँ इच्छाशक्ति से युद्ध लड़े जा रहे हैं और लाखों लोग जीवन में जो दिन नहीं देखने थे, उन्हें देखने पड़ रहे हैं। व्यक्ति की इच्छाशक्ति और राज्य की इच्छाशक्ति मानव अधिकारों के हनन के लिए यदि काम करने लगेंगी तो निःसन्देह उससे मनुष्यता का नाश होगा। यूक्रेन और रूस में जो आज हो रहा है या पहले जो ईराक और अमेरिका के बीच या इज़राइल और फिलीस्तीन के बीच हुआ उसे हम मानवाधिकारों के बड़े पैमाने पर हनन करने वाले उपक्रम के रूप में चिन्हित कर सकते हैं और उस पर सवाल खड़ा कर सकते हैं। इन सभी घटनाओं में इच्छाशक्ति के गलत प्रयोग दिखाई देते हैं। राज्यों की इच्छाशक्ति और समुदायों या व्यक्तियों की इच्छाशक्ति संघर्ष और युद्ध का रूप न लें इसके लिए जितनी भी पहल हुई वह नाकाफी लगती हैं।

सवाल यह है कि जब राज्य भी जानते हैं कि मानव अधिकारों का हनन ठीक नहीं है और इतने सारे वृहद पैमाने पर अपील भी हो रही है दुनिया भर में तो कोई न कोई ऐसी चीज है जो हमारे मानवाधिकारों को सुरक्शित और संरक्षित करने में विफल हैं।

डिप्लोमेसी-कूटनीति को विकल्प के रूप में देखा जाता है जो कि कई देशों के भीतर शांति स्थापित करने में सफल भी हुई हैं लेकिन कूटनीति की भी सीमाएं होती हैं जो किसी बिन्दु पर जाकर ठहर जाती हैं और देश युद्धरत और संघर्षरत बने रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र की राजनीतिक मामलों की प्रमुख रोज़मैरी डीकार्लो ने ज़ैपोरिझिझिया परमाणु संयंत्र में मौजूदा स्थिति पर गहरी चिन्ता व्यक्त की, जोकि योरोप का सबसे विशाल परमाणु ऊर्जा प्लांट है। उन्होंने कहा कि बीते सप्ताहान्त, इस परमाणु संयंत्र पर गोलाबारी होने की ख़बरें थीं, इसके बावजूद इस परमाणु ऊर्जा प्लांट में महत्वपूर्ण उपकरणों को कोई हानि नहीं पहुँची है, और तत्काल कोई परमाणु सुरक्षा चिन्ता की बात नहीं है।...ये केवल सौभाग्य की बात है। हम नहीं जानते कि ये सौभाग्य कब तक जारी रहेगा। विश्व एक और परमाणु युद्ध का जोखिम बिल्कुल भी नहीं उठा सकता है।[8] यदि राज्य अपनी बर्बर, विघटनकारी और हिंसक इच्छाशक्ति पर नियंत्रण नहीं रख सके तो संघर्ष और मानवाधिकार के प्रश्न और गंभीर होंगे। वर्टेण्ड रसेल ने उन्हीं दुराग्रही इच्छाशक्तियों का समान करने का आग्रह किया है। दुनिया के शांतिवादी आंदोलन और शांतिवादी लोगों के भीतर जिस चेतना को प्रज्ज्वलित होना चाहिए वह कदाचित अब तक नहीं हो सकीं जिससे आने वाले समय में भी स्थितियाँ सुधरेंगी इसके आसार नहीं हैं लेकिन सकारात्मक सोच और सतत सभ्यता के हिमायती इसकी संभावना से इनकार भी नहीं करते। डॉ. राधाकृष्णन ने बहुत महत्त्वपूर्ण बात लिखी है अपनी पुस्तक 'पूरब और पश्चिम' में की, 'सभी धर्म पड़ोसी से प्रम करने का उपदेश देते हैं, किन्तु प्रेम करने की क्षमता पा सकना कठिन काम है।'[9] यदि संसार के लोग प्रेम की स्थापना कर पाते तो शायद मानव अधिकारों का सबसे ज्यादा संरक्षण होता। प्रेम की भाषा बोल देंगे, प्रेम का संदेश दे देंगे और प्रेम उपस्थित ही नहीं होगा तो वह तो मित्थ्यालाप हो गया। इसलिए यह आवश्यक है कि असत्य से परहेज करें। सत्य ही प्रेम का स्वरूप है तो हम इनके माध्यम से समस्त संघर्ष, बर्बरता और युद्ध की विभीषिका का शमन कर सकते हैं। तब तो यही अंगीकार करना आवश्यक है और यदि ऐसा होता है तो मानव अधिकारों का हनन होगा ही नहीं और मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए इस प्रकार की कोई कोशिश भी करने की आवश्यकता नहीं होगी। डॉ. राधाकृष्णन ने यह लिखा है कि, 'इतिहास अप्रत्याशित की कहानी है....आज हमें अपने ही मस्तिष्कों और हृदयों के बल पर नए सिरे से शुरू करना है।'[10] यह शुरुआत कैसी हो, अब इसे भी हमें ही तय करना है। यदि हमारी शुरुआत नए सिरे से मनुष्यता और प्रकृति के नवोन्मेष की गाथा बनेगी तो निःसन्देह प्रेम-पूर्वक, सौहार्दपूर्ण वातावरण में हम नई पीढ़ी को ले जाने में सक्षम होंगे।

महाभारत में पितामह भीष्म और युधिष्ठिर संवाद है। यह संवाद शांतिपर्व में है। इसमें उन मूल्यों को बताया गया है जो मनुष्य जाति की श्रेष्ठतम आचरण पद्धति हो सकती है। इसमें उन गुणों की स्थापनाएं हैं जिससे व्यक्ति ईश्वरत्व को प्राप्त करने में सक्षम बन सकता है। ईश्वरत्व को प्राप्त करना भी प्रेम का अधिष्ठान है। इस अनुभूति से संपूरित लोग ही मानवाधिकारों का संरक्षण करते हैं। 'सभी धर्मों के सच्चे उपदेश का सार यही है कि मनुष्य सृष्टिकर्ता परमात्मा के ही समान पवित्र आत्मा है। मानुषी का काम अपनी इच्छा को पूरा करना है। परमात्मा की इच्छा है कि मनुष्य की भलाई हो। मनुष्य की भलाई प्रेम से ही हो सकती है। और प्रेम का व्यवहार वास्तव में यही है कि हम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करें, जैसा हम चाहते हों कि दूसरे हमारे साथ करें। यदि इस धर्मोपदेश को समझकर सब लोग इस पथ पर चलें तो सर्वत्र प्रेम का ही व्यवहार हो। फिर ऐसी कोई बात ही नहीं रह जाय जिसके कारण दबाव, शक्ति, ज़ोर या ज़ुल्म की जरूरत हो।'[11] इससे यह पता चलता है कि युद्ध की शून्य संभावना होती है फिर भी युद्ध हो रहे हैं, संघर्ष तो नानाप्रकार के हैं। हमें युद्ध और संघर्ष-शून्य बनाकर समाज की संरचना प्रतिष्ठित करनी है, तो इसका एक मात्र विकल्प है-प्रेम। महात्मा गांधी ने स्पष्ट किया था की, 'मेरे मन में कोई दुविधा नहीं है। मुझे अपने कर्तव्य का स्पष्ट भान है। अहिंसा और सत्या

को छोडकर, हमारे उद्धार का कोई दसरा रास्ता नहीं है। मैं जानता हूँ कि युद्ध एक तरह की बुराई है और शुद्ध बुराई है। मैं यह भी जानता हूँ कि एक दिन इसे बंद होना ही है। मेरा पक्का विश्वास है कि खूनखराबी या धोखेबाज़ी से ली गई स्वाधीनता, स्वाधीनता है ही नहीं। इसकी अपेक्षा कि मेरे किसी काम से अहिंसा का सिद्धांत ही गलत समझा जाय या किसी भी रूप में मैं असत्य और हिंसा का हामी समझा जाऊँ, यही हज़ारगुना अच्छा है कि मेरे विरुद्ध लगाए गए सभी अपराध अरक्षणीय, असमर्थनीय समझे जाएँ। संसार हिंसा पर नहीं टीका है, असत्य पर नहीं टिका है किन्तु उसका आधार अहिंसा है, सत्य है।[12]

वस्तुतः हम गांधी के अंतस की आत्मशक्ति को मान सकते हैं। वह युद्ध शून्य पृथ्वी की कल्पना करते हैं, किन्तु यह स्वीकार करना ज्यादा अच्छा है कि प्रेम, सत्य और अहिंसा मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु सार्वभौम स्वीकृति हो सकती है, और इसकी शुरुआत और विस्तार हमें ही करना होगा।

****

सन्दर्भ:-

1. यूएनजीए की आम बहस के समापन पर पीजीए की टिप्पणी, 26 सितंबर, 2022
2. https://news.un.org/hi/story/2022/01/1052402
3. https://news.un.org/hi/story/2020/01/1022012
4. https://news.un.org/hi/story/2022/01/1052462
5. Ibid
6. **Professor Nigel MacLennan, The Psychology of War,**
7. **https://www.psychreg.org/psychology-war/** 07 March 2022
8. Ibid
9. https://news.un.org/hi/story/2022/11/1064397
10. डॉ. राधाकृष्णन, पूरब और पश्चिम, अनु. रमेश वर्मा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1981, पृ. 141
11. वही, पृ. 131
12. द्रष्टव्य: भूमिका, एक ही आवश्यक बात (महात्मा टॉलस्टॉय की पुस्तक द वन थिंग नीडफुल), अनु. प्रो. श्री जगतनारायण लाल, रामदेव प्रसाद सिंह, मुरादपुर, पटना सन 1981 पृष्ठ- XXXVI
13. महात्मा गांधी, युद्ध और अहिंसा, सर्वोदय साहित्यमला 108वां ग्रंथ, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1941, पृष्ठ-192 द्रष्टव्य: हिन्दी 'नवजीवन', 20 सितंबर, 1928

पता: पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, भटिंडा (पंजाब), मो. 9818759757
ईमेल: hindswaraj2009@gmail.com या Kanhaiya.tripathi@cup.edu.in
वेबसाइट: www.kanhaiyatripathi.com

बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में बौद्ध मूर्ति शिल्पांकन

(छतरपुर,तेवर त्रिपुरी,के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. प्रमेश दत्त शर्मा
नगर निगम संग्रहालय,ग्वालियर (म.प्र.)

प्रस्तावना

बुंदेलखंड़ मध्य भारत का एक प्राचीन क्षेत्र है। भौगोलिक और संस्कृतिक विविधताओं के बावजूद बुंदेलखंड़ में जो एकता और समरसता है, उसके कारण ये क्षेत्र स्वय में अनूठा बन पड़ता हैं। राजनीतिक रूप से इसमें उत्तर प्रदेश के सात (07) जिले एवं मध्य प्रदेश के छः (06) जिले सम्मिलित है। बुंदेलखण्ड़ का इतिहास आरम्भ से गौरवशाली रहा है। बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में बौद्ध मूर्तिकला का आरंभ मौर्यकाल में अशोक के शासन काल से आंरभ होता है। मौर्य के उपरांत बौद्धमूर्ति कला के उदाहरण शुंग,सातवाहन, कुषाण,गुप्त, चंदेल, एवं कलचुरी काल में हमें बुन्देलखण्ड एवं उसके समीपस्थ क्षेत्र जैसे ◌छतरपुर ,त्रिपुरा, दतिया, रीवा, सतना,पन्ना आदि स्थलों में देखने को मिलते हैं। भारत के पूर्वी क्षेत्र से भिन्न इस क्षेत्र के बौद्ध मूतिशिल्प में सौम्य रूप के दर्शन होते हैं। तेवर (त्रिपुरी),छतरपुर आदि क्षेत्रों के बौद्ध मूर्ति शिल्पाकंन इसके उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय उपमहादीप में भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियों में इतनी अधिक विविधता विद्यमान है कि यहॉ के निवासियों एवं उनकी कला एवं संस्कृति में भी यह स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। बुंदेलखण्ड भारतीय उपमहादीप का ऐसा ही भू-भाग हैं। बुंदेलखण्ड का ये क्षेत्र 24°00'-26°00' उत्तर से 78° 10'-81°30' पूर्व तक फैला हुआ है। इस क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 54,560 वर्ग कि0मी0 है। तथा इसकी जनसंख्या 1,83,53,044 है। राजनीतिक रूप से इसमें उत्तर प्रदेश के के सात (07) जिले - चित्रकूट, बांदा, हमीरपुर, महोबा, झांसी, ललितपुर, जालौन एवं मध्य प्रदेश के छः (06) जिले - दतिया, टीकमगढ़, सागर,दमोह, छतरपुर एवं पन्ना सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त भिड़ जनपद की लाहर तहसील एवं ग्वालियर जनपद की भांडेर तहसील भी भौगोलिक रूप से बुंदेलखंण्ड से ही सम्यता रखती है। नदी तंत्र के आधार पर बुंदेलखण्ड की सीमाए, उत्तर दिश में यमुना नदी, पश्चिम एवं पश्चिमोत्तर सीमा क्रमशः चंबल एवं सिंध नदिया तथा पूर्व में टोस नदी निर्धारण करती है।[1]

बुंदेलखण्ड़ का इतिहास आरम्भ से गौरवशाली रहा है। महाकाव्य काल से इस क्षेत्र के इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है कि अगस्त मुनी इस वनाच्छादित क्षेत्र में आये एवं कालिंजर को अपनी तपस्थली बनायी। रामायण के अनुसार दंण्डकारण्य क्षेत्र चित्रकुट से प्रारम्भ होता था तथा अयोध्या के भागवान राम यहॉ आके ठहरें थे। कालान्तर में ये क्षेत्र भगवान राम के अनुज भ्राता श्री शत्रुध्न के पुत्र शत्रुधाती के अधिकार में

था तथा इसकी राजधानी केन नदी के किनारे बसे कुशवती को बनाया। महाभारत काल में बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र कई राज्यों में विभक्त हो गया था। जिसमें सर्वप्रमुख चेदि राज्य था।जिसका शासक शिशुपाल था तथा श्री कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध किया गया था।[2] बौद्धमूर्ति कला वस्तुतः बौद्ध धर्म की प्रचलित मान्यताओं, क्रमिक विकास व उसमें शामिल होती नवीन प्रवृतियों एवं बौद्ध धर्म में उदय नये सम्प्रदाय का द्योतक है। बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में बौद्ध मूर्तिकला का आरंभ मौर्यकाल में अशोक द्वारा स्थापित स्तंभ के शीर्ष से होता हैं। ये स्तंभ अशोक ने मुख्यतः बौद्ध के जीवन की घटना स्थलों एवं महत्वपूर्ण स्थानों पर स्थापित करवाये थें। मौर्य काल से लेकर शुग-सातवाहन काल तक का समय बौद्धमूर्तिकला के उद्भव व विकास की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण था। तत्कालीन समय में बौद्ध शिल्पकारों के मन में कुछ करने की दृढ़ इच्छा तो वहीं हीनयान मत की प्रधानता के कारण कई सैद्धांतिक विवशताएं भी थी। जिसमें बुद्ध प्रतिमा का निर्माण निषेद था। मौर्यकाल से सातवाहन तक की कला को आरम्भिक बौद्धमूर्ति कला के अंतर्गत रख सकते है। कुषाण काल से बुद्ध बोधिसत्व की मानव रूप में प्रतिमाएं निर्मित हुई, भक्ति और उपासना की प्रवृति बढ़ी। मौर्य के उपरांत विकसित शुंग सातवाहन कुषाण,गुप्त, चंदेल कलचुरी कालीन बौद्ध मूर्तिकला के दर्शन हमें बुंदेलखण्ड एवं उसके समीपस्थ क्षेत्र जैसे - छतरपुर,त्रिपुरी, दतिया, रीवा, सतना,पन्ना आदि स्थलों में विद्यवान मूर्तिकला से होते है।

तेवर(त्रिपुरी)- मध्य प्रदेश के जबलपुर में, जबलपुर से 12.8 किलो मीटर पश्चिम में, जबलपुर- भेड़ाघाट मार्ग पर तेवर नामक गॉव है। यहा 25°25' उत्तरी अंक्षाश एवंम् 82°22' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। साधारणतः यह माना जाता है कि वर्तमान तेवर और उससे लगभग दो मील पश्चिम स्थित करनबेल प्राचीन त्रिपुरी के आधुनिक अवशेष है। परन्तु प्राचीन काल में त्रिपुरी का विस्तार इससे कही अधिक था और नर्मदा तट तक फैला हुआ क्षेत्र इसमें सम्मिलित था, चेदी देश का अंग माना जाता था। महाभारत काल में बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र को कई राज्यों में विभक्त किया गया था, चेदि जिसका प्रमुख राज्य था। इस संबंध में ये उल्लेखनीय है कि केन नदी, जिसका समीकरण प्राचीन शुक्तिमती के साथ किया गया है। जिसके तट पर प्राचीन चेदि-राजधनी शुक्तिमती स्थित थी, का उद्गम जबलपुर जिले के उत्तरी भाग से हुआ है। कलचुरी नरेश विजय के क्र.सं. 944 (1193 ई.) रीवा अभिलेख में स्पष्ट कहा गया है कि त्रिपुरी नर्मदा तट पर स्थित हैं।3 त्रिपुरी में सागर विश्वविद्यलय के तत्वाधान में 1952-53 और 1966 से अब तक किये गये पुरातत्विक उत्खन्न से त्रिपुरी की प्राचीनता पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। उत्खन्न से ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए है जो मध्य प्रदेश के महेश्वर, नाबदाटोली, एरण इत्यादि स्थालों से ज्ञात ताम्रपाषाण संस्कृति की उत्तर कालीन रूप जान पड़ती है। लगभाग 1000ई. में त्रिपुरी में बसावत आरम्भ हो चुकी थी। ईसा पूर्व द्वितीय शती तक त्रिपुरी एक स्वतंत्र जनपद की राज्य की राजधानी बनी तथा इसके पश्चात कई शताब्दियों तक सातवाहन, शकक्षत्रप, तथा बोधियों के राज्य में समाष्टि रही। इस काल में राजनीतिक दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्व नही था। त्रिपुरी को सबसे अधिक गौरव कलचुरी काल में प्राप्त हुआ। जब यह एक विशाल राज की राजधानी बनी ।[4]

त्रिपुरी में बौद्ध धर्म का प्रचार था। 1952 के उत्खनन में सातवाहन कालीन स्तरों से ईट से भवनों के अवशेष प्राप्त हुए है। उत्खननकर्ता के अनुसार प्रथम ई.पू से लेकर द्वितीय ई. तक इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म लोकप्रिय था। सम्भवतः सातवाहन के पश्चात त्रिपुरी में बौद्ध धर्म का कुछ प्रचार हुआ। इस काल में त्रिपुरी में बौधिवंशी राजाओं का शासन था। जो सम्भवतः बौद्ध थें। उत्तर गुप्त कल में त्रिपुरी में बौद्ध धर्म के प्रचलन का निश्चित प्रमाण उपलब्ध है। तेवर में किये गये उत्खनन से मृण्यमुद्रा प्राप्त हुई है। जिस पर उत्तर गुप्तकालीन ब्राहमी में 'श्री नालन्दा महाविहारा चार्या भिक्षु सडघस्य' लेख उत्कीर्ण हैं।[5] इस मुद्रा के संबंध में यह अनुमान लगया जा सकता है कि त्रिपुरीवासी नालन्दा से ये मुद्रा लाये हो या किसी त्रिपुरीवासी को ये मुद्रा नालन्दा भिक्षसंघ द्वारा प्रदान की गई हो। कलचुरी काल में बौद्ध धर्म लोकप्रियता त्रिपुरी से प्राप्त बौद्ध प्रतिमों से स्पष्ट है। इस क्षेत्र से बुद्ध, बोधिसत्व वज्रपाणि एवं उनकी शक्ति की प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं।

तेवर से प्राप्त भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध, को पद्मासन में बैठे हुये दाएं हाथ से भूमिस्पर्श करते हुये तथा बाएं हाथ को पर्यक बुद्ध पैरों के ऊपर रखे प्रदर्शित किया गया हैं। इस मुद्रा को वज्रासन भी कहा गया हैं। जिसका उल्लेख शाक्तानंद तरंगिणी में किया गया हैं।[6] बोधिसत्व वज्रपाणि जिनका बौद्ध धर्म में महत्वपूर्ण स्थान है। आरम्भ में बौद्ध धर्म में इन्हें सहायक देवता का स्थान प्राप्त था। जो गौतम बुद्ध के जन्म से ही सेवा करते थे। कालांन्तर में इन्हें ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य से उत्पन्न माना गया हैं। तेवर से प्राप्त बोधिसत्व की प्रतिमा चापयुक्त मेहराब के नीचे कमलासन पर बैठे प्रदर्शित है। इनके दोनों हाथों में धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में है। इनके मुकुट में किसी ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा नहीं है। परन्तु दो ध्यानी बुद्ध, दाएं ओर अभयमुद्रा में अमोद्यसिद्धि एवं बाएं ओर धर्मचक्र प्रर्वतन मुद्रा में बैरोचन की लघु प्रतिमा उत्कीर्ण है। उसके नीचे चवरधारी एक-एक परिचर है। कमलासन के नीचे मध्य में धर्मचक्र है। जिसके दोनों ओर एक-एक हिरण उछलते हुये अंकित है। प्रतिमा के नीचे बौद्ध मंत्र एवं एक दान अभिलेख ''श्री वज्रपाणि महाबुद्ध साधुनामा..... महादान पति जीतदाम'' है। जीतदाम दानदाता का नाम है।[7] कनिंघ महोदय ने अभिलेख के आधार वज्रपाणि की प्रतिमा माना है। तारा बौद्ध सम्प्रदाय में विभिन्न ध्यानी बुद्धों से उद्भुत देवियों को तारा कहा गया है। साधनमाला के अनुसार तारा की उपासना व मंत्रपाठ से मानव दुखों से मुक्त होकर ऐश्र्यशाली व भाग्यशाली होता है। बौद्धकला में तारा की प्रतिमा सामान्यतः

दोहरे कमलासन में अर्धपर्यंकासीन निर्मित की जाती हैं। जिनके बाएं हाथ में नाग पुष्प व दाएं हाथ वरदमुद्रा युक्त होता है। सिरोशीर्ष पर ध्यानी बुद्ध की प्रतिकृति एवं सहायक देवी देवताओं की उपस्थिति इनकी पहचान में सहायक होती है। वज्रयान सम्प्रदाय के विकास के साथ-साथ तारा देवियों में विभेद भी बढ़े है। इन्हें विभिन्न नामों से पुकारा गया है। इनके सौम्य व रौद्र दोनो प्रकार मिलतें है।[8]

छतरपुर- यह मध्य प्रदेश के सुदूर उत्तरी पूर्वी सीमा पर स्थित है। विश्व प्रसिद्ध खजुराहों मंदिर(चंदेल शासको द्वारा निर्मित) छतरपुर जिले में ही स्थित है। ये जिला सागर सम्भाग के अंतर्गत स्थित है तथा ये क्षेत्र 24°9‘ उत्तरी व 79°6‘ पूर्वी देशांतर पर स्थित है। छतरपुर की स्थापना 1785 में हुई थी इसका नाम बुंदेला राजपुत छत्रसाल(स्वतंत्रता सेनानी) के नाम पर रखा गया है। जो बंुदेलखण्ड की आजादी के स्थापक थे।पुरात्तव की दृष्टि से छतरपुर में स्थित खुजराहों के मंदिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिनका निर्माण चंदेल शासकों द्वारा 950 ई.स 1050 ई. के मध्य करवाया। खुजराहों में हिन्द एवं जैन मंदिर स्थापत्य का अत्यन्त ही सुन्दर वास्तुशिल्प दृष्टिगोचर होता हैं। साथ ही छतरपुर जिले के अंतर्गत बौद्ध प्रतिमाओं का अंकन भी देखने को मिलता हैं, जिससे इस क्षेत्र अंतर्गत बौद्ध शिल्पांकन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

बिलहरी(छतरपुर) से कल्चुरी कालीन भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध की दो प्रतिमाएं प्रतिवेदित हुई है। इन प्रतिमाओं की विशेषता कमल के मध्य वज्र का अंकन है। वज्र का अंकन बुद्ध की कठिन तप व संयम को दर्शता है। बिलहरी(जबलपुर) से प्राप्त बुद्ध भूमिस्पर्श मुद्रा में (1.2×0.55×0.33मी) बुद्ध सप्त छत्र के नीचे शाक्य सिहों के अवलम्बित दोहरे पद्मपीठ पर बैठे है। बुद्ध के सिर पर घुंघराले बालों युक्त उष्णीष हैं। उनका बाएं हाथ संघाटी का छोर पकड़े गोद में है जबकि दाएं हाथ भूमिस्पर्श कर रहा है। सिर के पीछे कमल की पंखड़ियों से अलकृत प्रभामंडल हैं, इनके दाएं तरफ मैत्रेय नागपुष्प लिये खड़े है तथा बाएं ओर जटाजुट धारी, पद्म लिये अवलोकितेश्वर खड़े है। छत्र के दोनों ओर मालाधारी गंधर्वो का अंकन हैं दोहरे पाठपीठ पर सामने की ओर अंजलि मुद्रा में उपासकों का अंकन है। पादपीठिका के नीचे बौद्ध मंत्र अभिलिखित हैं। यह प्रतिमा लगभग 11वी शती की है।[9] बिलहरी (छतरपुर) से बोधिसत्वों में अवलोकितेश्वर की प्रतिमा प्राप्त हुई है। जो बोधिसत्व में सबसे अधिक लोकप्रिय है। भारतीय बौद्धकला में बुद्ध के अतिरिक्त सर्वाधिक प्रतिमाए इन्ही के रूपों वाली निर्मित हुई है। जिसमें षड़क्षरी, लोकेश्वर, सिहंनाद, अवलोकेश्वर, खसर्पण, लोकनाथ, हलाहल, पद्म, नर्तेश्वर, हरिहरिहरिवाहनोंद्भव, रक्त लोकेश्वर, आदि है। बिलहरी(छतरपुर) से खसर्पण की प्रतिमा (0.7×0.5×0.35मी) प्राप्त हुई हैं। इसमें वे दोहरे पदमपीठिका पर ललितासन में बैठे हैं। वे बाएं हाथ में सनाल पद्म लिये तथा दाएं हाथ वरद्मुद्रा युक्त है। दोनों हाथ कलाइयों से खण्ड़ित है। इनके सिर पर जटाजुट धारण किये हुये हैं। हार बाजूबन्द, कमर मेखला व धोती पहने खसर्पण का प्रभामंडल अंडाकार है। पद्मपीठ के नीचे शाक्य सिंह प्रदर्शित हैं। देवता के दाएं ऊपर तारा अपने बाएं हाथ में सनाल पदल लिये दाएं हाथ वरद्मुद्रा में त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं। उनके सिर के पास बाएं तरफ ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य भूमिस्पर्श मुद्रा में प्रदर्शित हैं। तारा के नीचे किरीट मुकुटधारी सुधनकुमार अपनी कुक्षि में पुस्तक दबाएं अंजलिमुद्रा में खड़े हैं। उनके नीचे एक अन्य देवता दाएं हाथ में सनाल पद्म लिये बैठे हैं। खसर्पण के बाएं तरफ चतुर्भुजी भृकुटि स्थांनक मुद्रा में दांये हाथों में अक्षमाला व वरदमुद्रा धारण किये है। जबकि बांये हाथ में त्रिदड़ी लिये है। परन्तु इनका बाएं हाथ खण्ड़ित है। तारा के सामने हयग्रीव वामन रूप में घटोदर, टेढी भौहों, मूछों सहित अपने दोनों हाथ दंड़ पर टिकायें खड़े हैं। खसर्पण के ऊपर मेहराव का अंलकरण है तथा दोनों तरफ गंधर्व युगल प्रदर्शित है। इस प्रतिमा की एक अन्य विशेषता ये है कि, खसर्पण के वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है जो सामान्यतः भारत से प्राप्त अन्य बौ़द्ध प्रतिमाओं में देखने को नहीं मिलता हैं।[10]

तारोद्भव कुरूकुल्ला- बिलहरी(छतरपुर) से तारा की प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। जिसकी पहचान डी.के. सिन्हा ने तारोद्भव कुरूकुल्ला से की है।11 इस प्रतिमा में देवी दोहरे कमलासन में वज्रपर्यांकासन में आसीन है। चतुर्भुजी देवी के चारों हाथ खण्ड़ित है। दाएं ऊपरी हाथ उठा हुआ है। निचला दाएं हाथ यद्यपि खण्ड़ित हैं, परन्तु वह निश्चित रूप से वरदमुद्रा की ओर संकेत करता हैं। दोनो बाएं हाथ कोहनियों से खण्ड़ित है। परन्तु एक में नीलोत्पल रहा होगा जिसका अंकन अब तक अवशिष्ट है। देवी क सीरोशीर्ष पर खण्ड़ित ध्याली बुद्ध का अंकन है जो कि डी.के. सिन्हा के अनुसार ध्यानी बुद्ध अमिताभ की हैं। देवी कंठहार, केयूर, कमरधनी,बाजुबन्द,कटिमेखला,नुपूर आदि धारण किये है। परिकर में छः देवियों का अंकन है। जिसमें सबसे ऊपरी देवी बाएं कोने की नारी आकृति खण्ड़ित है। दाएं ओर दो आसन व एक स्थानक देवी का अंकन है जिसके हाथों के आयुध वर्तमान में स्पष्ट नहीं हैं। बाएं तरफ नीचे की नारी आकृति त्रिभंग मुद्रा में खड़ी दाएं हाथ में खड्ग व बाएं में धनुष लिये हैं। कमलासन के नीचे शाक्त सिंह व अंजलिमुद्रा में उपासक-उपासिका का अंकन है। नीचे पादपीठ पर बौद्धमंत्र अभिलिखित है। पुरालिपि के आधार पर यह प्रतिमा 10 वी शती ई. की मानी जा सकती हैं।

खजुराहो(छतरपुर), खजुराहो संग्रहालय में कमलासन पर बैठे बुद्ध (140×110×47सेमी.)की भूमिस्पर्श मुद्रा में प्रतिमा संग्रहित हैं। मूर्ति का बाएं माथा, नाक,हाथ की उंगलिया पैर व कुछ हिस्सा खण्डित हैं। अंडाकार चेहरा, लबे कर्ण, घुंघराले कुंचित केश युक्त उष्णीष, उन्नत वक्ष, क्षीणकटि, मासल भुजाए, लंबी भैहे, गले में गराड़ियों का प्रदर्शिन इस मूर्ति की शिल्पगत विशेषताएं है जो खजुराहों की उन्नत कला परम्परा से पूर्वगामी लगती है। सिर के पीछे पद्मपंखुड़ियों से अंलकृत खण्डित प्रभामण्डल है। बुद्ध बाएं हाथ से संघाटी का छोर पकड़े गोद में

रखे हैं। तथा दायें हाथ से भूमि का स्पर्श कर रहे है। पादपीठिका पर अंकित बौद्धमंत्र की लिपि के आधार पर कृष्णदेव ने इस प्रतिमा का काल 10 वी शताब्दी निर्धारित की है।[12]

निष्कर्ष:-

बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में कला का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल से विद्यवान रहा है। कला, काल एवं स्थान के अनुरूप बदलती रहती है। बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र की कला के अन्तर्गत प्रागैतिहासिक गुहा चित्र, बौद्ध, जैन मंदिर,मूर्तिशिल्प एवं शैव, वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित कलावशेष दृष्टिगत होते हैं। राजनीतिक रूप से इस क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश के सात (07) जिले - चित्रकूट, बांदा, हमीरपुर, महोबा, झांसी, ललितपुर, जालौन एवं मध्य प्रदेश के छः (06) जिले - दतिया, टीकमगढ़, सागर,दमोह, छतरपुर एवं पन्ना सम्मिलित है। बुंदेलखण्ड़ क्षेत्र में लगभग 5वी शती ई.पू. के आस-पास नवीन कला केन्द्र विकसित हुआ। इनके विकास में बौद्ध धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका थी। बौद्ध धर्म काल गति अनुसार तीन मतों /शाखाओं में विभक्त हुआ। इस क्षेत्र के अन्तर्गत ई.पू.शताब्दियों से ही बौद्ध धर्म में हीनयान सम्प्रदाय की प्रधानता अनुसार बुद्ध के जीवन संबंधित चिन्ह मोक्ष प्राप्त के साधक के रूप में अपनाये गये। जिनके प्रमाण भरहुत, सांची, कोशाम्बी, देउर कोठार आदि क्षेत्रों में विकासित बौद्ध स्थापत्य केन्द के अवलोकन से ज्ञात होता है। मौर्यकाल से सातवाहन तक की कला को आरम्भिक बौद्धमूर्ति कला के अंतर्गत रख सकते है। प्रथम शताब्दी ई. महायान शाखा के उदय के साथ ही कुषाण काल से बुद्ध बोधिसत्व की मानव रूप में प्रतिमाएं निर्मित हुई, भक्ति और उपासना की प्रवृति बढ़ी। 7 वी शती के आस-पास वज्रयान शाखा के उदय के साथ ही ध्यानी बुद्ध की कल्पना की गई साथ ही ध्यानी बुद्ध की शक्ति की अवधारण भी आई। कालान्तर में चंदेल एवं कलचुरी शासन कालीन बौद्ध मूर्तिकला के अंतर्गत बुंदेलखण्ड एवं उसके समीपस्त क्षेत्र में वज्रयान शाखा से संबंधित ध्यानी बुद्ध एवं उनकी शक्तियों के देविय रूपों का अंकन किया। जिनके प्रमाण हमे छतरपुर,त्रिपुरी, दतिया, रीवा, सतना,पन्न आदि स्थलों में देखने को मिलता है। बिलहरी(छतरपुर) से प्राप्त अवलोकितेश्वर (खसर्पण) के वक्ष पर श्रीवत्स का अंकन है जो सामान्य रूप से भारत से प्राप्त अन्य बौद्ध प्रतिमाओं में देखनें को नहीं मिलता है। साथ ही इस क्षेत्र में तारा देवी अपने सामान्य रूप में ही प्रदर्शित की गई। तारा के जो विभेद पूर्वी भारत में मिलता है वह यहां नही है। यहाँ से प्राप्त तारा की प्रतिमा सौम्य रूप में है। सामान्यतः तारा के अंतिरिक्त मात्र तारोद्भव कुरूकुल्ला की मूर्ति इस क्षेत्र से प्रतिवेदित हुई है।

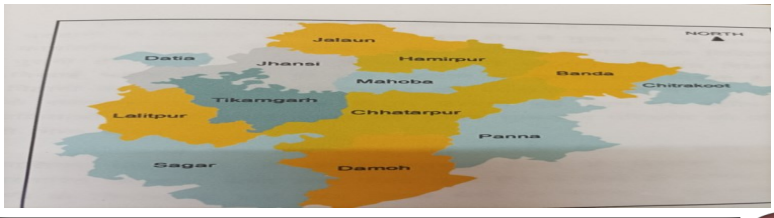

बुंदेलखण्ड़ का मानचित्र

उत्तर प्रदेश के सात (07) जिले - चित्रकूट, बांदा, हमीरपुर, महोबा, झांसी, ललितपुर, जालौन।

मध्य प्रदेश के छः (06) जिले - दतिया, टीकमगढ़, सागर,दमोह, छतरपुर एवं पन्ना सम्मिलित ह

चित्रफलक

1. भूमिस्पर्श मुद्रा बुद्ध, 10 शती बिलहरी (छतरपुर)

2.खसर्पण, पूर्वमध्य काल, बिलहरी(छतरपुर)

सन्दर्भ ग्रंथ

1.मौर्य, स्वामी राधा. 2018, बुन्देलखण्ड़ की कला में प्रतिबिम्ति समाजिक जीवन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,इलाहाबाद-211002 उ.प्र. भारत, पृ.03।
2.मौर्य, स्वामी,राधा. पूर्वोक्त पृ.37।
3-शास्त्री अजय. इंड़िय ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता ऑफ वराहमिहिर, पृ.114 बृहत्संहिता,14.9,।
4-शास्त्री, अजय. 2009, त्रिपुरी सम्पादक मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृ.6-7।
5-शास्त्री, अजय. पूर्वोक्त पृ.109।
6- पाण्डेय ओम प्रकाश, 2000,सारनाथ की कला, भारती प्रकाशन, दुर्गा कुण्ड़ रोड़ धर्म संघ, वाराणसी पृ. 83।
7-बनर्जी आर.डी. 1901, द हैह्यात आफ त्रिपुरा एडं देयर मोनूमेंटस, में भाग-23, कोलकत्ता,पृ. 93-94,फलक 36।
8- मिराशी, वा.वि. 'कलचुरी नरेश और उनका काल' चित्र संख्या 10।
9- सिहं, डी.के. 1983, बुद्धिस्ट स्कल्पचर्स फ्राम बिलहारी,श्री निधि, पर्सपेक्टिव्ज, इन इण्डियन आर्कियालाजी आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर संपादक के.वी. रामन व अन्य, मद्रास, पृ.181-186,।
10- सिहं, डी.के. 1983, बुद्धिस्ट स्कल्पचर्स फ्राम बिलहारी , पूर्वोक्त पृ.182-183।
11- विनयतोष, भटटाचार्य- 1990 द इंड़ियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, फर्म के.एल. मुखेपाध्याय, कलकत्ता पृ. 83।
12- देवकृष्ण, 1990, देम्पल्स ऑफ खजुराहों, भाग-1 नयी दिल्ली, पृ.390-391।

विस्थापन के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी साहित्य

डॉ.जयचंद्रन.आर
आचार्य , हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय तिरुवनंतपुरम, केरल

सारांश :-

विस्थापन (Displacement) को सामाजिक विज्ञान में एक महत्वपूर्ण शब्द माना जाता है। यह शब्द विभिन्न प्रकार के सामाजिक और आर्थिक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है, जहां मानवीय निर्णयों के कारण लोग अपने स्थायी या अस्थायी निवासस्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाने के लिए मजबूर होते हैं। विस्थापन का कारण विभिन्न हो सकते हैं, जैसे कि विकास परियोजनाएं, नैतिक बाधाएं, संघर्ष, आराजकता, युद्ध, प्राकृतिक आपदायें आदि। विस्थापन की परिभाषा और भेदों के साथ, यह महत्वपूर्ण है कि हम उसके सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को भी समझें। विस्थापन सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के मुद्दों को उठाता है, क्योंकि इसके दौरान लोगों के अधिकारों, स्वतंत्रता और गरिमा पर प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए, सरकारों, सामाजिक संगठनों और अन्य हितधारकों को उन लोगों की सहायता करने के लिए जिम्मेदारी और सावधानीपूर्वक योजनाएं बनानी चाहिए जो विस्थापित लोगों को आरामदायक स्थानों पर समायोजित करें और उन्हें उनके नए संदर्भों में समर्थन प्रदान करें।

विस्थापन का स्वरूप:-

जब एक व्यक्ति या समूह अपने देश से निर्वासित होकर उस देश की भाषा में साहित्य रचना करते हैं तो उस व्यक्ति की रचना को विस्थापन साहित्य के रूप में परिभाषित किया जाता है|हिंदी शब्द विस्थापन के समानार्थी रूप में अंग्रेजी में diaspora/ exile/displacement आदि शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है ।इसके लिए हिंदी में निर्वासन/निष्कासन/जलावतनी आदि शब्द भी प्रयोग में है।वैश्वीकरण विस्थापन के नए पैटर्न को जन्म दिया है और दुनिया भर में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं को जागृत करने का कार्य किया है।

विस्थापन के संदर्भ में कुछ सवाल विशेष बल के जाय उत्पन्न होता है।

1.अंतरराष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के बीच तनाव
2. स्थान और पहचान के बीच संबंध
3.संस्कृति और साहित्य के बीच के तरीके,

आदि गतिशीलता के नए पैटर्न,प्रवास और निर्वासन बहिष्करण के परिचित परिदृश्य पर तैयार किया जाता है।

परिभाषा:-

विस्थापन एक भूभाग का छूटना नहीं या एक भूगोल से निकल कर दूसरे भूगोल में चला जाना मात्र नहीं है, बल्कि अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपनी प्रकृति से भी बाहर होना है। जिसकी क्षतिपूर्ति भी संभव नहीं है। विस्थापन का विस्तार कहाँ से कहाँ तक हो सकता है, तो इस प्रश्न का उत्तर संभवतः यही होगा- गांव से जबरिया फेंके जानो एवं साँस्कृतिक चौपाल का ई-चौपाल में बदले जाने तक हो सकता है।

बाजारवाद के फलस्वरुप अपने भीतर आयी बेदखली तक लेकिन हम विस्तार का खतरा यह है कि विस्थापन का जो वर्तमान प्रसंग है, वह एकतरफा रह जाएगा।

सार्वभौमिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो, विस्थापन एक सामाजिक मुद्दा है जो हमें यह समझने के लिए प्रेरित करता है कि हमारी सामाजिक, आर्थिक और न्यायिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो स्थायी और अस्थायी विस्थापन को कम कर सके और अस्थायी विस्थापन के प्रभावों को समय–समय पर दूर कर सके। इसके लिए, नीतियों, कानूनों और कार्यक्रमों को विकसित करने की आवश्यकता होती है जो विस्थापन के प्रभावों का प्रबंधन करने, प्रतिसाद देने और पुनर्वास को सुनिश्चित करने में मदद करें।

अधिकांश मामलों में, विस्थापित लोगों को सामान्यतः समर्थन, संरक्षण, पुनर्वास और सुधार की आवश्यकता होती है। सरकारों को इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संबंधित विभागों, अधिकारियों और संगठनों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। यह आवश्यक है कि स्थायी और अस्थायी विस्थापन के बारे में सामरिक और व्यावसायिक नीतियों का विकास किया जाए, जो लोगों को सहायता, समर्थन और विकास के लिए संघर्ष करने में मदद कर सकें। विस्थापन एक मानवीय मुद्दा है जिसे हमें गंभीरता से देखना चाहिए। यह हमारे समाज के विकास और प्रगति को प्रभावित कर सकता है और साथ ही, यह हमारी मानवीयता, न्याय और समरसता के मानकों का परीक्षण कर सकता है।

हमें समझना चाहिए कि विस्थापित लोगों के साथ सहयोग और समर्थन करना आवश्यक है ताकि हम सामाजिक न्याय और मानवाधिकार के मूल्यों को प्रदर्शित कर सकें।

अच्छी नीतियों, कानूनों और कार्यक्रमों के साथ संयुक्त प्रयास द्वारा हम विस्थापित लोगों को आरामदायक और सुरक्षित नए स्थानों पर स्थापित कर सकते हैं। उच्चतम स्तर पर, हमें विस्थापन के कारणों को पहचानना, उन्हें नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त नीतियों को अमल में लाना और संगठित सामाजिक सहायता और पुनर्वास कार्यक्रमों का विकास करना आवश्यक है। विस्थापन को न्यायिक, सामाजिक और आर्थिक मुद्दों के संदर्भ में समझना आवश्यक है। यह हमारी समाज की

स्थायित्वता, समरसता और सामाजिक समावेश की मान्यताओं को परीक्षण कर सकता है।स्वतंत्रता, अधिकार, और समानता के मूल्यों की संरक्षण और प्रोत्साहन करने के लिए हमें विस्थापन से प्रभावित होने वाले लोगों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम विस्थापित लोगों को समर्थन, सुरक्षा, और समावेश महसूस कराएं ताकि उन्हें उनकी पुनर्वास की प्रक्रिया में सहायता मिल सके।समाज के सभी स्तरों पर, हमें विस्थापन के प्रभावों को मिटाने के लिए सामाजिक, आर्थिक, और मानव संसाधनों का संगठन करना चाहिए। विस्थापित लोगों को अवसरों का निर्माण करने, उन्हें पुनर्वास की प्रक्रिया में सक्षम बनाने, और उन्हें स्थायी और सुरक्षित निवासस्थान प्रदान करने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों को विकसित करना चाहिए।

विस्थापन के भेदों को समझना महत्वपूर्ण है ताकि हम उच्चतम स्तर पर उन्हें समझ सकें और इससे उत्पन्न होने वाली मानसिक, आर्थिक, और सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए उच्चतम स्तर पर नीतियों को विकसित कर सकें। विस्थापन के प्रभावों का प्रबंधन करने, विस्थापित लोगों को समर्थन प्रदान करने, और समाज को समानता और न्याय के मूल्यों पर आधारित बनाने के लिए हमें स्थायी और सुरक्षित स्थानों का निर्माण करना चाहिए।विस्थापन एक महत्वपूर्ण शब्द है जो आपके समाजशास्त्रीय और वातावरणीय अध्ययन के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।विस्थापन के विभिन्न प्रकार हैं, जो निम्नलिखित हैं जैसे कि नौकरी के लिए शहरों की ओर लोगों का प्रवास, ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में लोगों का प्रवास, और आदिवासी समुदायों को वनों से बाहर निकाल देना आदि |

विस्थापन के लक्षण :-

1.अव्यवस्था(Dislocation)
2.विषाद(Nostalgia)
3.भेदभाव(Discrimination)
4.अस्तित्व(survival)
5.सांस्कृतिक पहचान(cultural identity)
6.सांस्कृतिक परिवर्तन(cultural change)
7.बहु-सांस्कृतिकवाद(Multi culturalism)
8.दोहरे पहचान(Dual identity)

इन लक्षणों के साथ कोई भी रचना हमारे सामने आए तो उसे विस्थापित साहित्य की कोटि में रखा जाना समीचीन है।

विस्थापन के तीन प्रकार आज की परिस्थिति में संभव है:

1.देश निकाला जाना
2.रोज़ी रोटी के लिए घर बार छोड़कर दूसरे देश जाना
3.मानसिक विस्थापन

विस्थापन का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य : -

हिंदी में कविता के क्षेत्र में जो विस्थापन नज़र आता है खासकर उसमें कश्मीरी कवि अग्नि शेखर का जिक्र अधिक समीचीन प्रतीत होता है ।विस्थापन का दर्द क्या होता है? विस्थापितों की मानसिकता क्या होती है? इस पर उनकी कविताएँ हमें उदाहरण के रूप में कई चीजों का पोल खोलने वाली है।जवहर टनल ,मुझसे छीन ली गई मेरी नदी ,जीवन राग आदि कवितायें विशेष उल्लेखनीय हैं | काला दिवस उनकी एक और उल्लेखनीय कविता हैं ,पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है:-

'आज के दिन
मैं यहूदियों की तरह किसी वेलिंग वाल के सामने जाकर
रोता चाहता हूँ जोर-जोर
अपनी जिनोसाइड और जलावतनी
भूल जाना चाहता हूँ/और पलट कर
कल्पनातीत जो-जो हुआ हमारे साथ
मैं छूना चाहता हूँ/एक नया और ताजा आकाश'|

दूसरा विस्थापन :-दूसरा विस्थापन लोगों को रोजी-रोटी के लिए घर-बार/गाँव/कस्बा छोड़कर दूसरे प्रदेश में जाकर बसना पड़ता है। विश्वग्राम की भावना बहु-सांस्कृतिकवाद से चलकर सम-संस्कृति, सम-भाषा एवं सम-सभ्यता की ओर अग्रसर है। रोजी-रोटी के लिए अपनी मातृभूमि को छोड़कर यात्रा एवं हुनर जिसका उद्देश्य हो गया है। ऐसे विस्थापित लोगों की त्रासदी अलका सरावगी के उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में दर्शाया गया है।

तीसरा विस्थापन -मानसिक विस्थापन:-इस प्रकार का विस्थापन भारतीयों को ज्यादा अनुभव होता है। पहले दूसरे व तीसरे प्रकार का विस्थापन 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में झलकता है। समकालीन कथा साहित्य में किसान लगभग गायब है। लेकिन अलका जी ने किसानों को इस रूप में रेखांकित किया है। 'हमारा इंडिया विकास के पथ पर बढ़ रहा है, उसके रास्ते में जो भी पत्थर आएँगे, उन्हें हटाना हमारा कर्तव्य है। किसानों का निर्वासन किसी बड़ी लीग में शामिल होना, बड़ी-बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियों के लिये काम करना भला गुनाह कैसे हो गया? अगर वह काम भी नहीं है कि स्पेशल यानी कि सेज बनाने के लिए दो चप जौ किसानों को उजाड़ रही है तो क्या वे भी गुनेहगार हैं ? सरकार, कंपनी,किसान सब अपना अपना फायदा देख रहे हैं'(एक ब्रेक के बाद ,पृ.सं -146)मानसिक विस्थापन को समझाने के लिए ये पंक्तियाँ भी अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है :

'तुम्हें क्या मालूम कि वहाँ बिज़िनेसमैन के पास बड़े से बड़े हो जाने का ग्लोबल सपना है, दलाल का दूसरों की मेहनत में हिस्सा पाते रहने का सपना है, नेता का स्विज़र्बैंक में अकाउंट खोलने का सपना है, अफसर का घूस की रकम सपरिवार शॉपिंग मॉल में खर्च करने का सपना है। तुम अखबार पढ़ते हो या नहीं, गांवों के पास सपना है शहर बनने का, महानगरों के पास मेट्रोपोलिस बनने का, हिमालय के सपनों की कब्रगाह पर अब नए सपने आ गये है बंधु(एक ब्रेक के बाद ,पृ-सं 214) वैश्वीकरण के चलते इस प्रकार का विस्थापन बढ़ा और सम संस्कृति, भाषा एवं सभ्यता की बात चर्चित होने लगी।फिलहाल भारत की संस्कृति भारतीय नहीं,विदेशी भी नहीं,बल्कि संस्कृति

विभाजित होती जा रही है। विस्थापित होती जा रही है। इस प्रकार के सांस्कृतिक बदलाव की कई सारी कहानियाँ है- सुभाष चंद्र कुशवाहा की कहानी 'नून तेल मोबाइल', उदय प्रकाश का 'पॉल गोमरा का स्कूटर',जयनंदन का 'विश्व बाजार का ऊंट', अमरीक सिंह दीप का 'ड्राकुला', सुभाष पंत का 'बाज़ार', परितोष चक्रवर्ती की कहानी 'अंधेरा समुद्र' आदि।

ऋषिकेश सुलभ की कहानी **'डाइन'** पढ़ने पर यह विस्थापित मानसिक द्वंद्व हमें घेर लेता है।डायन का नायक कोशी नदी की बाढ़ में किसी लापता लाश पर कब्जा करके बाढ़ में मरने वालों की सूची में वह अपने बाप का नाम दर्ज करता है और पैसा लेता है। लापता लोगों में अपनी माँ का नाम भी लिखवाकर वह पैसा वसूल करता है।तीन महीने के बाद जब माँ लौट आती है तो वह उसे पहचानने से इंकार करता है, माँ को देख कर उसे लगता है कि मुआवज़े के रुपए कोशी नदी में बहे जा रहे हैं ,और वह माँ के सामने 'डायन डायन' चिल्लाता है ,क्यों कि नायक मानसिक रूप से अत्यंत विस्थापित हो गया है | उदय प्रकाश का **'पॉल गोमरा का स्कूटर'** का नायक राम गोपाल सक्सेना अपनी अस्मिता से पलायन चाहता है।वह अपाची इंडियन, रेमो फर्नांडिस,साम पित्रोदा आदि की बराबरी करने के लिए अपना असली नाम राम गोपाल सक्सेना को बदल देने का निर्णय कर लेता है। अपने परिवेश से विखंडन वादी संस्कृति को वह अपना लेता है। इसकी वजह से बदल देता है अपना नाम राम गोपाल से पॉलगोमरा। अपने विघटित मानसिक स्थिति के कारण प्रेमचंद, लल्लूलाल,हज़ारीप्रसाद, कबीरदास आदि नाम उसे पिछड़ा, दकियानूस और अधम दर्जे का लगने लगा। विस्थापन के दौर में पिता पुत्र के संबंध का एक अनोखा दास्तान है देवेंद्र की कहानी **'क्षमा करो हे वत्स'**।बहू के किसी और के साथ भाग जाने पर दांत पीसते हुए पिता बेटे से कहता है- हिजड़े जनखे! बूत नहीं था तो मुझसे कहा होता। उत्तर में बेटा चीख उठता है- मैंने आपको मना किया था क्या? हिंदी कहानी में ऐसे बाप बेटे का चित्रण भी मिलता है। तीसरे प्रकार का यह विस्थापन की मानसिकता यह विखंडित,विस्थापित,विभाजित मन का यह उपभोक्तावादी आकर्षण,विकर्षण उसे अपने समाज और संस्कृति से काटता है साथ ही साथ उसको समाज और संस्कृति से अलग भी कर देता है| जैसे गोमरा की कविता में व्यक्त की गयी है :-

'प्रजातियाँ लुप्त हो रही है
यथार्थ मिटा रहा है जिनका अस्तित्व
हो सके तो हम उनकी/हत्था में न हो शामिल
और संभव हो तो संभाल कर रख लें
उनके चित्र/ये चित्र अतीत के स्मृति चिह्न हैं' |

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.एक ब्रेक के बाद -अलका सरावगी
1. काला दिवस –अग्निशेखर
2. डाइन – ऋषिकेश सुलभ
3. पॉल गोमेरा का स्कूटर –उदय प्रकाश
4. क्षमा करो हे वत्स –देवेन्द्र

सूरीनाम की हिंदी कविता: सूरीनामी संस्कृति का धरोहर

ब्लेस्सनराजू
शोधार्थी हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम,केरल

डॉ.आर.जयचंद्रन
आचार्य
हिंदी विभाग, केरल
विश्वविद्यालय

सूरीनाम, हमारे देश से बहुत दर स्थित है, बावजूद इसके ,यह देश भारत से एक अटूट आस्था रखने वाला भारत का ही एक हिस्सा है | सरनामी भाषा हिंदी की एक बोली की तरह है। आज इस भाषा में साहित्यिक कृतियाँ हैं। सूरीनाम में हिंदी भाषा और साहित्य का उत्थान भारत के गिरमिटिया मजदूरों के परिश्रम से हुआ है। आज, सूरीनाम में हमारी तीसरी और चौथी पीढ़ी बसी हुई है।हर साहित्य की अपनी एक विशेष शैली होती है, और सूरीनामी हिंदी भी इस दृष्टि से अद्वितीय है। कविता पढ़ते समय हम अनुभव करते हैं कि सूरीनामी हिंदी , हिंदी एवं हिंदी की संरचना से बहुत सटा हुआ है। सरनामी हिंदी मूल रूप से हिंदी ही है, परंतु यह भारत की अवधी बोली से साम्य रखने वाला है। सूरीनाम के प्रमुख कवि सुरजन परोही जी के अनुसार " सरनामी हिंदी हमारी बोलचाल की भाषा है। हमारे पुरखे जो गाँव से आए थे भारत के अलग-अलग गाँवों से थे, उनकी भाषा में कुछ डच मिलाकर बोलचाल की सरनामी बन गई। विद्वान लोग तो शुद्ध हिंदी ही चाहते हैं।"[१]

सूरीनामी कविता की भाषिक संरचना में उनकी गिरमिटिया मजदूरी, दर्दनाक जीवन-संघर्ष, प्रतिरोध आदि परिलक्षित होते हैं | सूरीनाम के भारतीयों का तन, मन, जीवन और संस्कृति में जो बदलाव आया है वही इन कविताओं की मूल चेतना है | सूरीनाम के साहित्य के बारे में विमलेश क्रांति वर्मा जी ने इस प्रकार लिखा है:- "सूरीनाम के सभी साहित्यकारों ने बहुत अधिक मात्रा में साहित्य भले ही न रचा हो किन्तु जितना भी साहित्य रचा गया है उसमें विषयगत विविधता है। प्रवास का दर्द, देश छोड़ने का मलाल, अपनों की याद, नई जगह पर मिले कष्ट व यातनाएँ, और अपनी संस्कृति व भाषा के प्रति लगाव है। सूरीनाम के हिन्दी साहित्य में हिन्दुस्तानियों के जीवन-संघर्ष की कहानी है, उनकी प्रगति का विवेचन है, मन में उठने वाले भावों का चित्रण है।"[२]

सूरीनाम की कविताओं का विकास पूर्ण रूप से 1950 के बाद ही हुआ है। इन कविताओं की शिल्पगत एवं कथ्यगत विशेषतायें और विविधता हिंदी से अपेक्षाकृत बहुत पीछे हैं। हिंदी साहित्य आज नव विमर्शों और वादों के बूते पर आगे बढ़ रही है। हिंदी कविताओं की भाषा, लोकप्रियता, संवेदनशीलता, आधुनिकता, अद्वितीयता आदि उनके साहित्यिक परंपरा से जुड़े हैं। लेकिन सूरीनामी कविताओं के लिए एक ख़ास परंपरा विरासत में नहीं मिली है। अब भी सूरीनामी कविता विकास के पथ पर है। प्राप्त कविताओं को विश्लेषण करते वक्त यह महसूस

होता है कि सूरीनामी कवितायेँ उनके जीवन संबद्ध हैं। सूरीनाम में अप्रवासी भारतीयों ने जो देखा है और जो भुगता है इसका यथार्थ और सटीक बयान ही उनकी कविताओं की मूल संवेदना है। सरनामी कविताओं की मुख्य प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं :-

देशप्रेम की भावना: गिरीजाशरण अग्रवाल जी के मुताबिक "देश-प्रेम विश्व के सभी आकर्षणों से बढ़कर है। यह एक ऐसा पवित्र व सात्त्विक भाव है, जो मनुष्य को निरंतर त्याग की प्रेरणा देता है। देश-प्रेम का संबंध मनुष्य की आत्मा से है। मानव की हार्दिक इच्छा रहती है कि उसका जन्म जिस भूमि पर हुआ है, वहीं पर वह मृत्यु का वरण करे।"[३] सूरीनामी कविताओं में देशभक्ति की दो अवस्थाएं नज़र आती हैं। पहला सूरीनाम देश के प्रति प्रेम है। आज सूरीनाम,इस देश के प्रवासी भारतीयों के लिए उनका अपना देश जैसा बन गया है। पहले उनकी इच्छा भारत वापस जाने की थी, लेकिन आज उन्हें ऐसा एहसास होता है कि सूरीनाम उनकी मातृभूमि है। सूरीनाम के वरिष्ठ कवि अमर सिंह रमण जी ने इस प्रकार लिखा है-

"हम सूरीनामी, सूरीनाम हमारा
हम इसके प्यारा देश हमारा।
इस मिट्टी में बड़े हुए हैं
घुटनों के बल खड़े हुए हैं।"[४]

दूसरी श्रेणी में भारत के प्रति देशभक्ति से भरी कविताएँ हैं और इन कविताओं में वे खुद को भारतीय और भारत को अपनी माँ मानते हैं। वह आज भी अपने को प्रवासी मानते हैं। भारतीय भाषा, संस्कृति और साहित्य के प्रति प्रेम की भावना ही उनकी कविताओं की प्रमुख विशेषता है जिसके कारण वे आज भी भारत के अतीत में जी रहे हैं। आशा राजकुमार जी ने यों लिखा है :-

"हम कैसे भूल दी/हम हैं हिन्दुस्तानी
अपन हरी भरी देस/के छोड़ के काहे हम
जाए परदेस"[५]

भाषा के प्रति प्रेम : -अपनी संवेदनाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए मातृभाषा से बढ़कर दूसरा कोई सशक्त माध्यम नहीं है। देश प्रेम की तरह भाषा के प्रति भी उनकी कविताओं में अलग अलग दृष्टियाँ हैं। सरनामी को वे आज अपनी मातृभाषा मानते हैं उनकी कविता में 'सरनामी' के प्रति समर्पण एवं सेवा का भाव और सम्मान परिलक्षित हैं। मातृभाषा सरनामी के प्रति उनकी प्रेम एवं आस्था निर्विवाद है। यहाँ सरनामी के प्रति प्रेम अपने निम्न शब्दों में सुरजन परोही जी व्यक्त करता हैं -

"सरनामी हिंदी हमारी बोलचाल की भाषा है
भारत जैसे हमें इसे अपनाना है
हिंदी जिंदा तो धर्म-कर्म जिंदा है
नहीं तो धर्म ग्रन्थ कागज़ का
पुलिंदा है।"[६]

हिंदी भाषा को अपनी मातृभाषा माननेवाले कवियों की संख्या भी कम नहीं है। वे अपने भारत को मातृभूमि और हिंदी को मातृभाषा मानते हुए कवितायेँ लिखते हैं। धीरज कंधई जी ने अपनी कविता में हिंदी भाषा के प्रति प्रेम भावना व्यक्त किया है :

"हिंदी ज्ञान/मेरे लिए अमृत रस पान
जितनी बार उसे पीता हूँ
लगता है उतनी बार जीता हूँ।"[७]

अप्रवासी यादः-प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखी गयी उनकी रचनाओं में प्रवास की पीड़ा के प्रति उनकी यादें प्रस्तुत की गयी हैं। उनकी कवितायेँ अतीत में हैं। हर कवितायेँ उनकी पुरखों की पीड़ा एवं दर्द की याद दिलाती है और नई पीढ़ी उसे दोहराती है। उनकी कविताओं में प्रवास की पीड़ा है, विस्थापन का दर्द है, रिश्तों की दरकती ज़मीन है, जन्मभूमि के यूटोपियन चित्र और यथार्थ का अन्तर है, कर्मभूमि के लिए संघर्ष हैं, विडम्बनाएँ हैं, दोनों से न्याय करने की जिद्द है। अमर सिंह रमण जी इसका उल्लेख इसी प्रकार करता है:

"वही दिनवा जब याद आवेला अंखिया में भरेला पानी रे।
हिंदुस्तान से भागकर आइली यही है अपनी कहानी रे
भाई छूटा, बाप छूटा और छूटी महतारी रे।
अरकटिया खूब भरमवलीस कहै पैसा कमैबू भर-भर थाली रे।
वही चक्कड़ मा पड़ गइली, बचवा याद आय गइल नानी रे।"[८]

सांस्कृतिक अस्मिताबोध:-सूरीनाम में भारतीयों की संख्या 27% है। अन्य देशवालों की तुलना में भारतीयों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है और सूरीनामी समाज के साहित्य,संस्कृति और भाषा आज खतरे में हैं। शरणकुमार जी के मुताबिक़ "जो संस्कृतियाँ आज खतरे में हैं उनकी सूची लम्बी है, और वे पूरे विश्व में फैली हैं, अपने परम्परागत आधार से उखाड़े जाने का जो भय उनमें समाया है वह निराधार नहीं है। बहुसंख्यक समूह अपने आप को सर्वेसर्वा मानकर अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक अस्मिता के लिए संकट उत्पन्न करते हैं, और अल्पसंख्यकों में यह आशंका तीव्र होती जाती है कि उनकी संस्कृति का बलपूर्वक दमन किया जाएगा।"[९]

इन सांस्कृतिक संकटों से सूरीनामी संस्कृति की रक्षा करने का प्रयास सूरीनाम की कविताओं में देखा जा सकता है। अधिकांश कविताओं में, कवि नई पीढ़ी को याद दिलाते हैं कि वे कौन थे और उनकी संस्कृति क्या थी। उदाहरणस्वरुप:

"भाषा भेष-भूषा हमारी पहचान है।
वैसे सब देशों में अलग-अलग /वैसे हमारी भाषा के साथ
और उससे संबंधित/बहुत कुछ अलग है।"[१०]

खेती की संस्कृति :-कृषि भारतीयों की संस्कृति का मूल आधार है। इसी प्रकार, सूरीनाम में खेती को भारतीयों के सांस्कृतिक आधार के रूप में देखा जा सकता है। उन्हें वहाँ गन्ने के खेतों में काम करने के लिए बहला-फुसलाकर ले जाया गया था। उस समय उनके पास कुछ भी नहीं था। वहीं से वे आज के विकसित रूप में विकसित हुई और सूरीनाम के नागरिक बन गये। आज सूरीनाम के खेतों में उनके खून-पसीनेकी महक है। माटी और मानुष का रिश्ता सूरीनामी कविताओं की मूल भावना है। सूरीनामी हिन्दुस्तानियों की खेती जीवन यापन का माध्यम नहीं बल्कि उनकी संस्कृति का

संवाहक भी है | देवानंद शिवराज जी ने इस प्रकार लिखा है:

"धान की खेती अति सुक देती /किसानों का मन मोह लेती
कीचड पानी में नित मेहनत करते /नहीं सरदी गरमी से डरते"[११]

राजनीतिक व्यंग्य:-सूरीनाम की राजनीतिक परिस्थितियाँ सरनामी भारतीयों के अनुकूल नहीं थीं। वे उन्हें केवल 'कुली' मानते थे, इसलिए वे कई दशकों तक मौलिक अधिकारों से वंचित रहे। सूरीनाम की आजादी के बाद उन्हें अपनी भाषा को राजनीतिक मान्यता दिलाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ा। आजादी के बाद बढ़ती गरीबी, राजनीतिक अस्थिरता, भ्रष्टाचार, चरित्रहीन नेताओं का शासन, देश में हो रहे विभिन्न आंदोलन आदि सरनामी कविताओं में व्यक्त किया गया है। सुशीला सुक्खू जी इस प्रकार कहते हैं:

"कैसा नेता।/कैसी राजनीती
कैसी नेतागिरीलोग फिर भी हैं दुखी।
क्या फायदा बोत बटोरन/जब तुम्हें आता नहीं जोड़ना।"[१२]

शिक्षा का महत्त्व : -सूरीनाम के भारतीय ठीक से पढ़ना भी नहीं जानते थे। उन्हें रामायण, महाभारत, मानस आदि के अलावा किसी भी चीज़ का ज्ञान नहीं था। वे लोग ठीक से हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते थे। इसलिए उन्हें सूरीनाम में गुलामी का जीवन जीना पड़ा। चीन जैसे अन्य देशों के श्रमिकों को सूरीनाम में भारतीयों की तुलना में अधिक अधिकार मिले। यह पहली पीढ़ी की बात है। इसके बाद उन्होंने वहां एक स्कूल खोला, बच्चों को काम पर न भेजकर उन्हें शिक्षा दी। बच्चों को यह भी समझाने का प्रयास किया कि शिक्षा ही मोक्ष है और शिक्षा के बिना समाज में कोई जगह नहीं है। यहाँ संध्या भग्गू जी इसी बात को कविताओं के माध्यम से नई पीढ़ी तक ले जाने का प्रयास करती है और इसे अपना कर्तव्य भी समझती हैं।

"पढ़ो बच्चो/मिलकर पढ़ो/अपने अधिकार के लिए लड़ो
दीये की तरह जलते रहो/अपने लिए आगे आगे बढ़ो"[१३]

जीवन यथार्थ: -सूरीनामी कविता जीवन यथार्थ से अधिक निकट है। कवि की दृष्टि सदैव सामान्य जन और जनसाधारण तक ही सीमित रही है। सामाजिक चेतना और सामाजिक यथार्थ दोनों कविताओं का विषय बन गया है। आर्थिक विषमता, मजदूरों का संघर्ष, धार्मिक पाखंड, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की विषमताएँ आदि आम आदमी से जुड़े सामान्य विषयों को कवियों ने जीवंतता के साथ वास्तविकता के धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। उनके प्रवासी जीवन और सूरीनाम जीवन की यातनाएँ कारमेन जगलाल जी की कविता में इस प्रकार दर्शाया गया है:

रोज सवेरे कत्लीस चूमूँ/रास्ता पकड़ी खेत के
बगल में टाँगूँ सतव पानी और/झटक पटक के टाँग बढाऊँ।"[१४]

कबीर और तुलसी जैसे महान व्यक्तित्वों का प्रभाव:-सूरीनामी कविताओं से यह समझा जा सकता है कि सूरीनाम के भारतीयों पर केवल दो लोगों का प्रभाव रहा है। पहला व्यक्ति हैं श्रीराम, यह तो सभी जानते हैं। अरकाटी एजेंटों ने उनसे कहा कि उन्हें श्रीराम को देश ले जाना है। यही विश्वास के साथ वे यहां आये थे। इस लिए रामचरितमानस और तुलसी का प्रभाव उनके लोक गीतों में और सर्जनात्मक काव्यों में दृष्टव्य हैं | दूसरा व्यक्ति है – कबीर, कबीर के दोहों से प्रभावित होकर अनेक दोहे और चौपाईयों की रचना हुई है। साथ ही उपदेशपरक और नीतिसार दोहों को कबीर की दोहों की छाया हैं। ईश्वर के विषय में कबीर और सरनामी कवियों का मत एक ही है। जिस तरह से हिंदी साहित्य के निर्माण में कबीर का योगदान है वैसे ही सूरीनाम में हिंदी भाषा और भाव के निर्माण में कबीर की अमरवाणी का स्थान है। कारमेन जगलाल जी कबीर की तरह इस प्रकार लिखा है : -

"मैंने भगवान् से पूछा-तुम कहाँ /
भगवान् ने कहा में आप ही के पास /आप ही में हूँ"[१५]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सूरीनाम की हिंदी कवितायेँ विषय विविधता और भाषिक तत्वों के प्रयोग में हिंदी भाषा एवं साहित्य की तरह पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुई हैं।सरनामी कविताओं की खूबी यह है कि ये कविताएं मानव जीवन,उनके अस्तित्व की और उनकी यथार्थता को प्रतिबिंबित करने वाली हैं। संवेदनाओं का संप्रेषण ही इन कविताओं का मूल तेवर है। सरनामी कवितायेँ अलंकार, छंद, भाषा शैली, और शिल्प पक्ष से ज्यादा कथ्य पक्ष को अधिक महत्व देता है। सूरीनामी कवियों के लिए कविता एक साधन मात्र है जिसके जरिए उनके अतीत के यथार्थ, वर्तमान जीवन और भविष्य के स्वप्नों को अंकित करने की कोशिश जारी है। सूरीनामी कवि जब भी लिखना चाहते हैं ,वे लिखते हैं,क्योंकि भाषाई सीमा में सूरीनाम की कविता को बांधी नहीं जा सकती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक, विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली २०२१, पृ. सं १०२
2. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं ३१
3. निबंध एवं पत्र लेखन, डॉ.गिरीजाशरण अग्रवाल, डॉ मीना अग्रवाल,डायमंड बुक्स,नई दिल्ली 2015, पृ सं 51
4. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 38
5. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 44
6. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 156
7. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 88
8. प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य,सं. विमलेश क्रांति वर्मा,भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2016, पृ. सं 69
9. परंपरा और परिवर्तन, शरणकुमार दुबे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2001, पृ. सं 35
10. .प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य,सं. विमलेश क्रांति वर्मा,भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2016, पृ. सं 108
11. .सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 85
12. .सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 164
13. .सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 149
14. .सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं 149
15. .सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, सं. विमलेश क्रांति वर्मा, भावना सक्सेना, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2015, पृ. सं .51

आंचलिकता के विविध आयाम

राहुल झा
18 इमाम बक्श लेन,
कोलकाता – 06 मो.– 9681005168
ईमेल– rahuljha34@gmail.com

हमारे यहाँ संस्कृत तथा अन्य भाषा रूपों में अंचल शब्द का प्रयोग बहुत पहले से होता रहा है। वहाँ इसके अनेक अर्थ पाए जाते हैं। संस्कृत की अच् धातु में 'अलंच' प्रत्यय लगने पर अंचल' शब्द निष्पन्न होता है। यह व्याकरणिक दृष्टि से एकवचन पुल्लिंग एवम् समूहवाची संज्ञा शब्द रूप है। अंचल शब्द का सीधा और स्पष्ट अर्थ है जनपद या क्षेत्र विशेष जो अपने में एक पूर्ण भौगोलिक इकाई होता है। पदमचन्द्र कोश में कोशकार ने अंचल शब्द का अर्थ वस्त्र का छोर कोने का भाग, कपड़े का कोना पल्ला ही लिया है। संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी में भी अंचल का अर्थ वस्त्र के छोर से ही लिया गया है। भाषा शब्दकोष में अंचल का अर्थ है साड़ी का छोर जो सामने रहता है पल्ला आंचल या अँचरा, किनारा एवम् सीमा का समीपवर्ती भाग।[1] अंचल या अंग्रेजी की रोजन का प्रयोग सामान्यतः किसी क्षेत्र या ग्राम के सीमांत प्रदेश के लिए किया जाता है। जब किसी परिसर क्षेत्र विशेष या अंचल को लेकर लिखी जानेवाली पद्धति आरम्भ हुई है। तब आंचलिकता शब्द विशेष अर्थ ग्रहण करने लगा। शनैः शनैः आंचलिकता कथा साहित्य की एक विधा के रूप में प्रचलित हुई। हिन्दी में आंचलिकता उपन्यास के सन्दर्भ में उसके कथा, भाषा शैली व शिल्पगत विशेषताओं को प्रकाशित करता है।

आंचलिकता एक भाववाचक संज्ञा है। स्पष्टता इसका सम्बन्ध अंचल सम्बन्धी भावों, गुण, दोषों, कार्यों आदि से है। आंचिलकता हिन्दी के समीक्षा क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नवीन पारिभाषिक शब्द है। आंचलिकता की परिभाषा अंचल के आंचलिक विशेषण में सामाविष्ट है। आंचलिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति ही आंचलिकता है। आंचलिकता की परिभाषा में दो बातों का विशेष महत्त्व है। १) आंचल का अन्तराल और २) आंचल का बाहय रूप। डॉ. ओमानन्द सारस्वत के अनुसार आंचलिकता एक प्रकार की अन्तर्मुखता है। जहाँ व्यापक यथार्थ को छोड़कर मर्यादित यथार्थ को महत्त्व दिया जाता है। जिससे व्यापक यथार्थ व्यंजित होता रहे। यह आंतरिक तत्व मूलतः अंचल की सांस्कृतिक आत्मा से सम्बन्ध है। कुछ लोग आंचलिकता को प्रवृत्ति विशेष मानते हैं। जैनेन्द्रकुमार ने इसे प्रवृत्ति मानकर इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया प्रायः आंचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केंद्र में अमुक पात्र या चरित्र उतना नहीं जितना वह स्वयम् भू-भाग अंचल है। पात्र स्वयम् में इष्ट नहीं मानो अमुक समष्टि के जीवन की यथार्थता को उभार देने में ही उसकी चरितार्थता है।[2] इससे यह स्पष्ट होता है कि आंचलिकता किसी अंचल विशेष का आंचलिक निरूपण है। किसी जनपद विशेष की माटी को महक और मनःस्थिती का सजीव चित्रण ही आंचलिकता कहलाता है।

प्रत्येक भूमि-भाग की मिट्टी की एक खास महक होती है और उस मिट्टी में पनपी हुई वनस्पतियों के पत्ते-पत्ते और फूल-फूल में एक विशेष गन्ध होती है। उसी के अनुरूप वहाँ के समस्त जीवधारियों, मानव प्राणियों में भी अपनी अपनी एक अलग मनःस्थिति या गन्ध होती है जो किसी अन्य भूमि-भाग में उगे हुए फूल पत्ते और प्राणियों की गन्ध से भिन्न होने के कारण अपनी एक अलग विशिष्टता रखती है। यह गन्ध उस देश के निवासियों की भाषा, आचार-विचार तथा मानसिकता में प्रतिबिम्बित होती है।[3] इस प्रकार किसी विशिष्ट भू-भाग उसके वातावरण तथा निवासियों या प्राणियों के व्यक्तित्व सम्बन्ध की आंचलिक अभिव्यक्ति ही आंचलिकता है। आंचलिकता के स्वरूप निर्धारण, उद्घाटन, प्रस्तुतिकरण आदि में अनेक तत्वों का सामूहिक योगदान होता है। डॉ नगीना जैन ने अपने शोध आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास आंचलिकता के अर्थ को गहराई विचार किया उनके अनुसार आंचलिकता विशिष्ट दृष्टिकोण है अंचल या विशेष सम्पूर्ण जीवन प्रणाली ऐतिहासिक वैज्ञानिक धारणा प्रस्तुत करता किसी अंचल की अन्तरात्मा को प्रकट करने के आन्तरिक उपरकणों के साथ उसके उपकरणों का समर्थन आवश्यक होता आंचलिकता संजीव रूप देने वे सभी सम्मिलित किए जा सकते हैं क्षेत्रविशेष जनजीवन सांगोपांग तथा सम्पूर्ण चित्र विशेषताओं के उभारने सहायता देते वस्तुतः वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन आदि सजीव सबल अभिव्यक्ति योग देनेवाले उपकरण ऑचिलकता के तत्व कहे सकते आंचलिकता का सर्वप्रथम सर्वप्रमुख तत्व अंचल विशेष स्थिति अंचल कल्पना निर्जन नहीं की जा सकती इस दृष्टि जनपद अंचल सभिप्राय पर्याय कहा जा सकता है। निर्जन जंगल या प्रकृति एकांत वर्णन आंचलिकता अन्तर्गत गृहीत नहीं किया सकता किसी अंचल विशेष सभ्यता तथा संस्कृति चित्रण अनेकानेक वस्तुओं समावेश होता है। उस क्षेत्र जनपद स्थानों, वृक्षों, तरकारियों, पशुओं, पक्षियों, सवारियों, विचरण, स्थानों, भोज्य पदार्थों, वस्त्राभूषणों केशविन्यासों, गन्ध तथा अन्य श्रृंगार और लिखने व्यवस्थाओं, आश्रमों, मनोविनोद के साधनों, कूदों, क्रिडाओं, लोकविधानों, ललितकलाओं, त्योहारों, पर्वों, उत्सवों, लोकाचारों, विश्वासों, मान्यताओं पौराणिक आस्थाओं व्यवसायिक वर्गों, भिखारियों, अछूतों, राजनीतिक मान्यताओं, साम्प्रदायिक विचारों, दार्शनिक विचारों तथा जीवन दृष्टिकोणों आदि तथ्यों

विश्लेषण प्रत्यक्ष या चित्रण किया जाता है।[4] स्वाभाविकता की रक्षा लिए होना आंचलिकता का एक अंग है। आंचलिकता की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से बड़ी सहज स्वाभाविक होती विशेष रूप स्थानीय बोली के प्रयोग से आंचलिकता लाई जाती है। विशेष यथार्थ भाषा आपने ग्रामीण शब्दों मुहावरों लोकोक्तियों, उक्तियों आदि के आंचलिकता साकार करने सहायक सिद्ध होती है। उस धारणा प्रकाश में कहा सकता है 'आंचलिकता' किसी अंचल विशेष सांगोपांग जीवन पैठकर उसकी आत्मा की झलक पाने का एक सबसे सार्थक प्रयत्न या साधन है। उपन्यास आंचलिक विशेषण लगने उसको आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। आंचलिक उपन्यास सरलतम परिभाषा यही हो सकती है कि जो उपन्यास आंचलिक विशेषताओं युक्त वह आंचलिक उपन्यास है। रचना तो उपन्यास होती ही पर जनपदीय जीवन का चित्र प्रस्तुत करेगी। यह चित्रण जितना सूक्ष्म तलस्पर्शी होगा आंचलिक उपन्यास उतना ही श्रेष्ठ होगा। वस्तुतः आंचलिक उपन्यास परिभाषा का केंद्र आंचलिक ही है।

सामान्य सामाजिक उपन्यासों अपेक्षा इसमें अंचल एक विशिष्ट दृष्टिकोण से परखने, देखने और प्रस्तुत करने कार्य प्रधान होता है। आंचलिक उपन्यास की सर्वमान्य परिभाषा का स्वरूप अभी निर्मित नहीं हो सका इसलिए कुछ परिभाषाओं का पर्यालोचन करना उचित रहेगा।यथार्थदवादी दृष्टि एक सीमित अंचल के असाधारण विवरणों को प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास आंचलिक उपन्यास है। इसके साथ ही उसमें विस्मयकारिता, असामान्य अपरिचित सजीव समग्र चित्रण तथा वातावरण की प्रधानता रहती है। दूसरे शब्दों इसे इस प्रकार कहा जा सकता कि एक सीमित अंचल या क्षेत्र के सर्वांगीण जीवन को वस्तुन्मुखी दृष्टि प्रस्तुत करने का उपक्रम आंचलिक उपन्यास की उपयुक्त परिभाषा सकती है।[5]जिन उपन्यासों में किसी विशिष्ट प्रदेश के जनजीवन का समग्र विन्यात्मक चित्रण हो उन्हें आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है।[6] कुछ उपन्यासों में किसी प्रदेश विशेष का यथातथ्य और बिम्बात्मक चित्रण प्रधानता प्राप्त कर लेता है उन्हें प्रादेशिक या आंचलिक उपन्यास कहा जाता है।[7] आंचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहते हैं जिनमें क्षेत्र विशेष के जनजीवन का सांग और समूचा चित्र प्रस्तुत किया जाता है।किसी अंचल विशेष की भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का अंकन करना आंचलिक उपन्यास का प्रमुख उद्देश माना जाता है।[8] आंचिलक उपन्यासों में किसी विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जीवन रहन-सहन, रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, लोकगीत, उत्सव आदि स्थानिय विशिष्टताओं के विकास और उन परिस्थितियों का जो युग चेतना का प्रतिनिधित्व करती है का चित्रण किया जाता है।[9] आंचलिक उपन्यासों को हम किसी अंचल विशेष की संस्कृति का सरस और सुखद चित्रण मान सकते हैं।[10] उपन्यास जब क्षेत्र विशेष अंचल की लोक संस्कृति से बंधकर स्थानिक रंगत से युक्त जीवन प्रस्तुत करता है उसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा प्राप्त होती है। [11]आंचलिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता निश्चय ही अंचल विशेष की लोक संस्कृति का चित्रण करना है किन्तु यह चित्रण शिल्पगत न होकर भावगत है।[12] अंचल विशेष की भूमि तथा वहाँ की सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति गम्भीर अनुभूति के फलस्वरूप इस प्रकार के उपन्यास लिखे जाते हैं।[13]

अंचल से सम्बन्ध रखनेवाली कोई भी वस्तु आंचलिक कही जा सकती है। आज अंचल शब्द का प्रयोग क्षेत्र' या अंग्रेजी के रीजनल' के अर्थ में होने लगा है। अंतः व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ इतना ही कहा जा सकता है कि जिस उपन्यास में किसी क्षेत्र विशेष के समाज और जीवन का उसी क्षेत्र की भाषा में ज्यों का त्यों चित्रण उसे क्षेत्रीय उपन्यास' 'आंचलिक उपन्यास' या रिजनल नावेल' कहते। [14] आंचलिक उपन्यास प्रजातांत्रिक है। उनमें आस्था अभिव्यक्ति कि साधारण पुरुष और स्त्री भी इतने आकर्षक हो सकते है कि उपन्यास में चित्रण किया जा सके। इसमें समर्थ चित्रण होता है क्यों कि किसी भी चरित्र निर्माण वंश परम्परा और वातावरण दोनों महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।[15] आंचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केंद्र में अमुक पात्र या चरित्र नहीं जितना स्वयम् वह भू भाग अंचल पात्र स्वयम् से इष्ट नहीं मानो समाष्टिजीवन की यथार्थता को उभार देने ही चरितार्थता है। [16]आंचलिक उपन्यास लिखना मानो हृदय में किसी प्रदेश कसमसाती जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास आंचलिक उपन्यास अंचल समग्र जीवन का है।[17] आंचलिक उपन्यास उपन्यास जिसमें उपन्यासकार किसी अंचल, जनपद, जाति या वर्ग के दिग्दर्शन करात जिसमें कदम कदम आंचलिकता का आग्रह रहता हो।[18]आंचलिक उपन्यासों में अंचल विशेष की माटी की सोंधी महक प्रकृति निर्बन्ध लोकसंस्कृति के छंद तथा लोकभाषा की ताजगी की मोहक छबियों कथा बिम्बों इस तरह से उभारा जाता कि पूरा अंचल अपनी समग्रता चित्रित हो उठता है। अमूर्त अंचल का सभिप्राय समूर्तन उसकी विशेषता है।[19] आंचलिक उपन्यास तो आंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है। उसका सम्बन्ध जनपद होता है ऐसा नहीं वह जनपद की ही कथा है।[20]उपन्यासकार अंचल विशेष के अनुसार गांव कस्बे मुहल्ले को बनाकर वहाँ के लोगों आधार-व्यवहार जीवन पद्धती लोकभाषा दृष्टिकोण सूक्ष्म वर्णन करता तो वह आंचलिक उपन्यास होता है। [21]आंचलिक अर्थ का प्रयोग एक सिमित और किसी हद तक परिभाषिक अर्थ में किया गया है। आंचलिक उपन्यास हम उसे कहते हैं जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के जन जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्रण हो। आंचलिक उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता अपरिचित और किसी हद तक आदिम जातियों के जीवन में पाई जाती है।[22]

'आंचलिक उपन्यास' शब्द की चर्चा सर्वप्रथम जिस उपन्यास में प्राप्त होती है, उसके रचनाकार ने भी किसी विशिष्ट भू-भाग और उसके लोगों के चित्रण का संकेत किया है। मैला आंचल की भूमिका इस दृष्टि से आंचलिक उपन्यास की परिभाषा निर्माण में महत्त्वपूर्ण रही है। यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास

कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है.. मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गांव को... पिछड़े गांव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाया है।"

इसमें फूल भी है शूल भी धूल भी है गुलाल भी, कीचड़ भी है चन्दन भी, सुन्दरता भी है कुरूपता भी मैं किसी से भी दामन बचाकर निकाल नहीं पाया।[23] इस कथन से आंचलिक उपन्यास की कतिपय विशेषताएँ स्वयम् स्पष्ट है। इस आंचलिकता लेखक की सहज आत्मीयतापूर्ण दृष्टि है जिसमें शहरी आकर्षण और चमक दमक से दूर धरती का स्वच्छंद प्रांगणबसता है जहाँ वन्य कुसुम स्वयम् खिलते और अपनी आभा बिखरते है।

आंचलिक कथाकार किसी विशिष्ट क्षेत्र की धरती को अपने कथानक का आधार बनाता है और क्षेत्र की स्थिति का तटस्थ अंकन करता है। वर्णित अंचल से गहरी आत्मीयता प्राप्त रचनाकार ही श्रेष्ठ सर्जना कर सकता है। भौगोलिक वैशिष्ट्य के साथ साथ वर्णित अंचल की सामाजिक राजनीतिक एवम् सांस्कृतिक विशेषताओं का चित्रण आंचलिक कृति की अनिवार्यता है। आंचलिक कृतिकार अपना रचना के लिए क्षेत्रविशेष के चयन के साथ विशिष्ट कालखण्ड का भी चयन करता है। तब उस क्षेत्र में घटित राजनैतिक उथल पुथल सामाजिक क्रांति तथा धार्मिक स्थिति का चित्रांकन करता है। अंचलवासियों के परिवेश उनके जीवन स्तर और जीवन के प्रति उनकी अवधारणाओं आदि का तटस्थभाव से यथार्थवादी चित्रण आंचलिक कृति की अनिवार्यता है।आंचलिक भाषा ही आंचलिक एवम् अनांचलिक कृतियों के मध्य भेद स्पष्ट करती है। आंचलिक कथाकारों को स्थानीय पात्रों के संवाद और लोकसंस्कृति आदि के चित्रण में स्थानीय भाषा का व्यवहार करना पड़ता है। स्थानीय मुहावरों लोकोक्तियों आदि के प्रयोग से लेखक चित्रण को अधिक प्रामाणिक ओर सजीव बनाता है। लोकसंस्कृति आंचलिक रचना का प्राण है। लोक संस्कृति से तात्पर्य स्थानीय रीतिरिवाज, वस्त्रविन्यास पर्व त्यौहार, परम्परागत मान्यताएँ, धार्मिक रूढ़िया और विश्वास, लोकगीत और नृत्य तथा उनकी कला आदि से है। युग सत्यों और युगीन क्रिया कलापों तथा उसकी करवटों से उत्पन्न परिवर्तन का प्रभाव अंचल के जीवन में भी परिलक्षित होता है। उस परिवर्तन के प्रति जन मानस की प्रतिक्रिया तथा नवीन चेतना का पुरातनता से संघर्ष एवम् दोनों का सम्मीलन, प्रभाव आदि के वर्णन से रचनाकार अपनी कृति में सजीवता भरता है। पात्रों का स्थानीय होना भी आंचलिक रचना का मूलतत्व है। आंचलिक भाषा का प्रयोग, व्यवहार तथा सांस्कृतिक एवम् लोकमान्यताओं का उद्घाटन पात्रों द्वारा होने के कारण पात्रों की आंचलिकता सहज और अनिवार्य है।

इस तरह हम देखते हैं कि आंचलिक कथा रचना के लिए आंचलिक भाषा आंचलिक पात्र, लोक संस्कृति, युगीन चेतना का प्रभाव क्षेत्र की स्थिति और उसके जीवन का यथार्थवादी चित्रण आदि तत्वों की अनिवार्यता है। इन तत्वों की संयोजना ही किसी कृति को आंचलिक कृति सिद्ध करती है।

****

संदर्भ सूची:-

1. मेनियर विलियम, भाषा शब्दकोष, पृ.११
2. हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और विवेचन स. महेन्द्र, पृ. १७८
3. पूर्णिया (अप्रैल १६६०) पं. राजनाथ पाण्डेय का लेख, पृ.६
4. डॉ. मक्खनलाल शर्मा, हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा, पृ.११८-११६
5. प्रकाश वाजपेयी, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ.६
6. राधेश्याम कौशिक, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ.१३
7. डॉ. धीरेंद्र वर्मा (संपा.). हिन्दी साहित्य कोश, भाग-१, पृ.१४१
8. डॉ. सुषमा धवन, हिन्दी उपन्यास, पृ.८०
9. कांति वर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ. १८४
10. डॉ. माखनलाल शर्मा, हिन्दी उपन्यास सिद्धांत और समीक्षा, पृ.३६०
11. डॉ. शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ.८
12. डॉ. जगदीशचंद्र जोशी, हिन्दी गद्य साहित्य एक सर्वेक्षण, पृ. १६२
13. परिषद पत्रिका (अप्रैल १६६२). श्री. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का लेख, पृ.७५
14. आचार्य मोहन वल्लभ पंत, हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' शीर्षक टंकित लेख, पृ. ३
15. दि इंग्लिश नावेल (वाल्टर एलन) के पृ.८ से दि इंग्लिश रीजनल नावेल नामक फाईलिस वैन्टले की पुस्तक से उद्धृत
16. जैनेन्द्र कुमार, साहित्य संदेश (उपन्यास), अंक १६५६, पृ.५०
17. डॉ. रामदरश मिश्र, सप्तसिन्धु, फरवरी १६६४
18. डॉ. राजकुमार पाण्डेय, साहित्यिक निबन्ध, पृ. २७५
19. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.३६३
20. डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ. २२५
21. नागार्जुन, बलचनमा, पृ.५
22. नन्ददुलारे वाजपेयी, सारिका, अक्तूबर १६६१
23. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, प्रथम संस्करण की भूमिका

महिला लेखकों की कहानियों में अभिव्यक्त आर्थिक परिप्रेक्ष्य : दो हज़ार दस के बाद के संदर्भ में

अंजना .एम
शोधार्थी
हिंदी विभाग,केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम,केरल

डॉ.आर.जयचंद्रन
आचार्य
हिंदी विभाग केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम,केरल

सारांश :आज़ादी के बाद आर्थिक दृष्टि से हमारे देश में परिवर्तन तो हुए हैं लेकिन अब भी बहुत सारी ऐसी लोग हैं जो आर्थिक समस्याओं से जूझती है। किसान हो या मज़दूर आर्थिक तंगी जीवन की कड़ी को रोकती है। जिसका प्रतिरोध कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।अर्थ, समाज की केन्द्रीय शक्ति है। संसार के सभी कार्य-कलाप अर्थ पर ही आधारित है। सामान्यतः आर्थिक दृष्टि से उन्नत समाज को ही विकसित समाज कहा जाता है।

वर्तमान में सामाजिक सम्बन्धों का आधार प्रमुखतः अर्थ बन गया है। "अर्थ ही समाज की शिराओं में बहने वाला वह रक्त है जो सम्पूर्ण समाज का जीवन संचालित करता है। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन अर्थ-प्रक्रिया से प्रभावित रहा है। विकास का मूल आधार अर्थ ही है।"[1]

प्रज्ञा, गीताश्री, उर्मिला शिरीष, वंदना राग, सुधा अरोड़ा आदि समकालीन महिला कहानी लेखकों ने आर्थिक जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला है। इन कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाजवादी और पूँजीवादी व्यवस्था का आर्थिक परिवेश को व्यक्त किया है। मनुष्य जीवन में अर्थ की महत्ता बहुत अधिक है। क्योंकि बिना अर्थ के जीवन आगे नहीं बढ़ सकता। किसी भी क्षेत्र में अर्थ की जरूरत पड़ती है। आर्थिक स्थिति बिगड़ने से उत्पन्न समस्याओं के विविध पहलुओं को कहानीकारों ने अभिव्यक्त किया है।

आज के समाज धन के पीछे भाग रहे हैं। जैसे कि समाज में जो घटित होता है वहीं साहित्य में झलकता है। समाज के नब्ज़ को पकड़कर कहानीकारों ने कहानी विधा को सम्पन्न किया है। "किसी भी समाज का सम्पूर्ण विकास उसके आर्थिक ढाँचे पर ही निर्भर करता है। अर्थ की व्यवस्था का प्रभाव सामान्य-जनों पर पड़ता ही है। परिवार, समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य, कला का विकास अर्थ पर ही आधारित है। अर्थ ही वह शक्ति है जो सारे समाज की बागडोर को थामे है। अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आते ही सारे सामाजिक स्तर में परिवर्तन दिखाई देते हैं।"[2] प्रज्ञा की सन् 2021 में प्रकाशित 'रज्जो मिस्त्री' कहानी संग्रह की कहानी 'उलझी यादों की रेशम' में आत्मीय संवेदनाओं की कहानियाँ हैं। जिसमें पिता आर्थिक तंगी से जूझते हुए भी परिवार को संभालने की कोशिश कर रहा है। पिता कभी भी हालात से समझौता नहीं करते, बल्कि हालात से लड़ते हैं और परिवार को एक धागे में बांधकर रखने की कोशिश करता है। सामान्य वर्ग के लोग आर्थिक तंगी से इस कदर परेशान होती है कि उन्हें एक समय का खाना मिलना भी मुश्किल हो रहे हैं। बेरोजगारी की समस्या ही आर्थिक समस्या का मुख्य कारण है।

नारी को आर्थिक व्यवस्था में अपने आप पर निर्भर रहना पड़ेगा। नारी की स्थिति को ध्यान में रख कर कह सकते हैं कि आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र लड़की भी पारिवारिक मान्यताओं के सामने विवश पड़ती है। 'मालूशाही मेरा छलिया बुरांश' प्रज्ञा की सन् 2022 में प्रकाशित हुआ कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानियों में श्रमशील वर्ग से लेकर मध्य वर्ग शहर से गांव तक के लोगों को आर्थिक जीवन का परिवर्तनों को पकड़ने का प्रयास प्रज्ञा जी ने किया है। आर्थिक रूप से सक्षम होने की भागदौड़ में लोग अपने रिश्ते नाते भूल जाते हैं। अपने बच्चों व परिवार के लिए उनके पास समय नहीं है। जीवन को सुगमय एवं सफलतापूर्वक चलाने के लिए धन तो जरूरी है लेकिन धन का मोह रिश्तों पर भारी नहीं पड़नी चाहिए।

प्रज्ञा का सन् 2019 में प्रकाशित 'मन्नत टेलर्स' कहानी संग्रह की कहानी 'लो बजट' में प्रखर नामक पात्र के ज़रिये एक घर या मकान ढूंढने का प्रयास और उसकी बजट के अंदर मिलने के लिये इधर उधर भागते रहते लोग की कहानी है। पूरी कहानी में घर दिखानेवाला एक एक मकान दिखाते वक्त 'आपके बजट' में शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रखर के पास काम होने के बावजूद भी परिवार को संचालित कराने में मुश्किल हो रहा है। आजकल महंगाई भी इतना बढ़ गई है कि आम जनता की जिंदगी गुजारना कठिन हो रहा है। आम जनता में निरंतर आर्थिक अभाव पाया जाता है।

गीताश्री का सन् 2015 में प्रकाशित 'स्वप्न साजिश और स्त्री' कहानी संग्रह में आर्थिक रूप में आत्मसमर्पण होना चाहती स्त्रियों की कहानियाँ हैं। स्वावलंबन से ही सम्मान प्राप्त होता है। जहाँ जहाँ औरतें कमाती थी वहाँ उनकी स्थिति बेहतर थी। दो हज़ार दस के बाद की महिला लेखकों की कहानियों में लेखकों ने अपने पात्रों द्वारा महिलाओं को आर्थिक रूप से सफल बनने की प्रेरणा भी दे रही हैं।गीताश्री का सन् 2021 में प्रकाशित कहानी संग्रह 'बेलम कलकत्ता' में 'बेलम कलकत्ता पहुँच गए न' कहानी में शांति और नीलू जो माँ बेटी है। माँ तीन कोठियों में काम करके महीने के अंत में तनख्वाह के इंतजार में रहती थी। खर्च के बाद जो बचती थी उसे बेटी के भविष्य के लिए संभालकर रखती थीं। लेकिन पति नशे की लत में आकर मारपीट कर सब कुछ हड़पता था। "तीन कोठियों में काम करती है, तीनों से अलग अलग बहाने बना कर पैसा ले चुकी है। उसके बाद पगार का ही इंतजार बाकी था। वो भी कट कर मिलेगा, तीनों जगह से। यानी पैसे की भयंकर किल्लत होने वाली थी, महीने के अंत और शुरुआत में। इस बार की सर्दी ने उसकी अधेड़ हड्डियों में सुराख कर दिया था। घिसा हुआ

शॉल ओढ़ कर बर्फीली सर्द हवाओं से जूझने का दर्द उसकी हड्डियाँ अच्छे से जानती थीं, जिनकी सिंकाई वो घर आकर कोयले के चूल्हे पर किया करती थी। एक ही सिलिंडर होने के कारण गैस का चूल्हा कम जलाती थी।"[3] गीता श्री के रचनात्मक प्रयोग से आर्थिक विषमता का भयानक दृश्य समझ सकते हैं। आर्थिक दबाव के कारण किसी में आर्थिक रूप से समर्थ होने की इच्छा होती तो किसी में जो मिलता है उसे संभालकर रखने की कोशिशों होती है। खासकर निम्न मध्यवर्ग के लोग। गरीब आदमी के सामने पैसे का संकट हमेशा से रहता है। इसी संग्रह की दूसरी कहानी 'उनकी महफिल से हम उड़ तो आए' में कम उम्र में चेरखी नामक लड़की की शादी करा देती है। "आर्थिक संकट के फलस्वरूप ही कहीं निम्न-मध्यवर्गीय माँ-बाप अपनी बेटी का विवाह करने में असमर्थ हैं और कहीं कर्ज के बोझ से दबकर विवाह करते हैं तो कहीं अनमेल विवाह करके लड़की को उसके भाग्य पर छोड़ने का विश्वास कर अपने कर्त्तव्य से छुट्टी पाते हैं।"[4]

सुधा अरोड़ा ने पारिवारिक सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की समस्याओं एवं चुनौतियों को केंद्र में देखकर नारी जीवन पर दृष्टि डाली है। जीवन की आर्थिक स्वायत्तता पर बल दिया है। सुधा अरोड़ा की नारी पात्र शिक्षित भी है आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी है लेकिन कभी-कभी असमंजस्य की स्थिति में पड़ती है। आर्थिक विभिन्नता के फलस्वरूप व्यक्ति समय से पहले बूढ़ा हो जाता है।

समकालीन कहानियों में जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। उर्मिला शिरीष की कहानी संग्रह 'कुर्की और अन्य कहानियाँ' की कहानी 'चेहरे' में माँ अपने बच्चे गौतम और टीना को कड़ी मेहनत करके पढ़ाती है। आठवीं कक्षा तक पढ़ी लिखी होने के बावजूद उसे बच्चों की भविष्य की एक एक सीढ़ी के बारे में अवगत थी। घर की आर्थिक स्थिति बुरी होने के कारण बच्चों को बारहवीं कक्षा तक कॉन्वेंट में रखकर पढ़ाती है। अपनी हालत बच्चों को भी न हो इसके लिए भरसक प्रयास करती है। "उसकी निगाहों में कुछ ऐसी चुभन थी कि उन्हें बच्चों की तैयारी भारी लगने लगी। जानती है हर मां बच्चों के लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम करना चाहती है, श्रेष्ठ और सुंदर चीजें खरीदना चाहती है, उनके लिए श्रेष्ठ शिक्षा देना चाहती है, लेकिन यह सब करने की गुंजाइश हो, तब ना।"[5] अपनी अकेलापन, उदासी बच्चों के करियर में बाधा न हो इस बात का ध्यान रखती थी। आर्थिक समस्या मानसिक बल पर हावी होने नही देती थी।इसी प्रकार आज की नव कहानीकारों ने सकारात्मक सोच प्रदान की है।

इसी कहानी संग्रह के एक और कहानी है –'निगाहें' ।इस कहानी में भी आर्थिक तंगी की पराकाष्ठा को दिखाया गया है। एक छोटी सी बच्ची को घर की हालत बिगड़ने से पढ़ाई छूटनी है और कम उम्र में काम के लिए भेजते हैं। वहाँ काम करने के बावजूद भी तनख्वाह नहीं मिलती। मज़दरी कराकर उस बच्ची को पगार भी नहीं देता है। उस छोटी सी बच्ची जिसकी हँसी मज़ाक का समय, जिसको शिक्षा की जरूरी है उस बच्चे की बचपन का नींव ही खत्म होती है। आर्थिक विषमताएं कितनी भयानक होती है। आज श्रमिक से ज्यादा श्रम को स्थान मिला है। श्रमिक तो शोषण का शिकार होते हैं। श्रमिकवर्ग आर्थिक कठिनाइयों के बीच गुज़ारा करता है। इस कहानी में उस बेटी के साथ यही हुआ है। आज की आर्थिक विभीषिका खासकर निम्न मध्यवर्गीय लोगों को असहनीय प्रतीत हुआ है ।

उर्मिला शिरीष की हाल ही में प्रकाशित कहानी संग्रह 'ये देश बता तुझे क्या हुआ है' कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियाँ कोरोना महामारी से पीड़ित लोगों की आर्थिक छवि दिखाती है। लोगों को उनकी आर्थिक विपन्नता परिवार की जड़ता को उजाड़ती है। प्रस्तुति कहानी संग्रह की एक कहानी में जगदीश नामक पात्र को ऑपरेशन के लिए आठ-नौ लाख की जरूरत है। लेकिन उस पैसा जगदीश के लिए भारी रकम था। इसी तरह महामारी से उत्पन्न आर्थिक समस्याओं का विभिन्न पहलुओं को महिला लेखकों ने दर्शाया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रज्ञा, गीताश्री, उर्मिला शिरीष, सुधा अरोड़ा आदि कहानीकारों की कहानियों में आर्थिक विपन्नता की विविध पक्षों को अभिव्यक्ति देने की सफल प्रयास हुआ है। समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। आर्थिक आत्मनिर्भरता हर एक व्यक्ति के लिए ज़रूरी है। मनुष्य की जीवनशैली में भी अर्थ का ही वर्चस्व है। आज की दुनिया में वर्तमान आर्थिक असमानतायें व स्थितियों को महिला लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण- डॉ. हेमेन्द्र कुमार पानेरी - पृ.सं-204,संधी प्रकाशन,जयपुर-1974
2. राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज- डॉ. राधा गिरधारी, पृ.सं-86, चंद्रलोक प्रकाशन ,कानपुर-1995
3. बलम कलकत्ता – गीताश्री – पृ.सं-13,प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड-महाराष्ट्र,मुम्बई
4. हिंदी उपन्यासों में मध्य वर्ग- हेमराज निर्मम- पृ.सं-173, चंद्रलोक प्रकाशन,कानपुर-1995
5. कुर्की और अन्य कहानियां- उर्मिला शिरीष- पृ.सं- 109,सामयिक प्रकाशन,जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली

अमिताभ घोष के चुनिंदे उपन्यासों में पारिस्थितिक चिंतन: एक अध्ययन

अरुंधती मोहन
शोधार्थी
हिंदी विभाग,केरल विश्वविद्यालय-तिरुवनंतपुरम,केरल

डॉ.आर.जयचंद्रन
आचार्य
हिंदी विभाग.विश्वविद्यालय
तिरुवनंतपुरम,केरल

सारांश:-धरती मानव,प्रकृति,जीव जंतु, वनस्पति सभी का वास स्थान है। प्रधानमंत्री मोदी ने नयी दिल्ली में घटित G 20 में दोहराया कि हमारी अध्यक्षता का संदेश है **'एक पृथ्वी,एक कुटुम्ब एवं एक साझा भविष्य'।** अतः G20 घोषणा-पत्र सतत,सर्वसमावेशी,प्रकृति-केन्द्रित विकास के मॉडल पर आधारित है। इसमें विकास हेतु सतत हरित मार्ग की परिकल्पना की गई है। इसी के अंतर्गत भारत की पहल पर विश्व जैव ईंधन गठबंधन की शुरुआत भी हुई।शीर्ष नेताओं ने जलवायु मोर्चे सहित विश्व के समक्ष उपस्थित विभिन्न चुनौतियों से निपटने हेतु तत्काल पहल करने का आह्वान किया। निकट भविष्य में ग्लोबल वार्मिंग के विरुद्ध वैश्विक मुहिम के लिए व्यापक रणनीति जैसे इस हेतु वैश्विक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता को तीन गुना करने आदि पर सहमति बनी है। कहने का तात्पर्य यह है कि environment sustainable development से हमारी आगामी भविष्य सुरक्षित है। इस अवसर पर अमिताभ घोष के उपन्यासों की चर्चा करना उचित होगा।

बीज शब्द:
परिस्थिति,उपनिवेश,वनस्पति,सततविकास,सागर,दावानल,द्वीप

भारतीय अंग्रेज़ी उपन्यासकार अमिताभ घोष ने अपने उपन्यासों के ज़रिये मानव और प्रकृति के बीच का संबंध और मानव आप्रवास और परिस्थिति का संबंध इन बातों पर अपना मंतव्य प्रकट करते हैं।आइबिस त्रयी के अंतर्गत आनेवाले उपन्यास अफ़ीम सागर, नशे का दरिया, अग्नि वर्षा आदि में पारिस्थितिक सजगता निहित है।अफ़ीम सागर में ब्रिटीश उपनिवेश में अफीम खेती की ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं कथा के प्रारम्भ में ही भारत की पुण्य नदी गंगा के निकटवर्ती प्रदेशों में ओपियम की खेती करना और इस तरह की खेती से खाद्य पदार्थों की कमी पर लेखक लिखते हैं। कुछ सालों पहले जिन खेतों में अनाज,फल,फूल थे ,अब इनमें केवल अफीम का उत्पादन हैं। इसकी वजह से वहां के लोग बेहोश पड़ जाते हैं और शारीरिक मानसिक बीमारियों से जी रहे हैं। अफीम की खेती से पर्यावरण दूषित होने लगे और अफीम फैक्ट्री से निकलनेवाली विषैली पदार्थों और कूड़े कचरे से गंगा दूषित हो जाती हैं ।केवल मानव जीवन पर भी नहीं वहां की प्राणियों और जीव जंतुओं में भी अफ़ीम का कुप्रभाव है। उपन्यास के चर्मकार जाति के एक पात्र कलुआ अपने बैलों को अफ़ीम देते हैं।उपन्यास के एक सन्दर्भ में लेखक कहते हैं –"जब कलुआ ने अफ़ीम को अपने प्रयोग केलिये रखने के बजाय उसके दो टुकड़े करके अपने बैलों को खिला दिया,तो उसे अजीब सी खुशी हुई"[1]।

अमिताभ घोष के उपन्यास 'नशे का दरिया' में यदि एकतरफा भारत,अंग्रेज,चीन के ओपियम कारोबार से हुई पारिस्थितिक विषमताओं का वर्णन है तो दूसरी तरफ भारत और चीन के बीच के अभूतपूर्व वनस्पतियों का आयात निर्यात का वर्णन है।उपन्यास में अनाहिता नामक कश्ती से अफ़ीम को चीन लेकर जाते हैं,रेडरूथ नामक कश्ती चीन से वनस्पतियों को खोज निकलने केलिए जाते हैं तो आइबिस में कुलियों और लस्करों को साथ लेते हैं।लेखक उपन्यास के माध्यम से ओपियम से पर्यावरण की क्षति और समाज मे व्याप्त ऊबता को व्यक्त करते हैं।नशे का दरिया में पौलेट नामक नारी वनस्पति विज्ञान पर रुचि रखती है। वह पेंरोज़ नामक वैज्ञानिक के साथ गोल्डन कैमेलिया जो एक विशेष चाय पत्ती है जिसको ढूंढ निकालने की कोशिश करती है।उपन्यास में eco critism के साथ साथ eco marx-ism का ज़िक्र भी है।एक उपनिवेश में प्रकृति से मिले हुए चीज़ों को किस हद तक प्रभाव डाल सकते हैं?इस सवाल का उत्तर नशे का दरिया में उपलब्ध है।पूंजी और परिस्थिति का संबंध और उनमें मानव का हस्तक्षेप आदि उपन्यास का विषय है।उनके चर्चित उपन्यास 'बंदक द्वीप' gun island में ग्लोबल वार्मिंग का खुलंत चित्रण है ।कथाकार की राय में "अल्प हिम युग में प्रकृति में विनाश की शुरुआत थी। पृथ्वी का तापमान बढ़ गया।सत्रहवीं शताब्दी में सम्पूर्ण दुनिया में इसका असर हुआ। लोग भुखमरी,अकाल और महामारी से पीड़ित थे। कई जगहों पर भूकंप का तांडव था। इंग्लण्ड में गृह युद्ध में सर्वनाश हो गया।मध्य यूरोप तीस वर्षीय युद्धों से बर्बाद हो गया।तुर्की में सूखे से आग लगी और भारत में मुग़ल साम्राज्य में गरीबी और विद्रोह फ़ैल गए।"[2] लेखक का मतलब यह है कि अल्प,हिम युग आनेवाली पीढ़ियों केलिए एक चेतावनी है। उपन्यास के एक सन्दर्भ में लेखक कहते हैं "ऐसा लगता है मानो अल्प हिम युग अपनी कब्र से उठकर हमारी तरफ बढ़ रहा है।"[3] बन्दक द्वीप उपन्यास का वातावरण सुंदरबन द्वीप समूह है।वहां की मनसा देवी मंदिर से जुड़ी हुई दन्त कथा की वास्तविकता खोजने केलिए नायक दीनदत्ता वेनिस पहुंचता है और उन्हें उस कथा के पीछे मानव तस्करी और पारिस्थितिक क्षति आदि ज्वलंत समस्याओं के तथ्य मिल जाते हैं।बन्दक द्वीप उपन्यास में सुंदरबन द्वीप समूह में बसने वाले लोगों की ज़िन्दगी का आँखों देखा वर्णन है।सुंदरबन चक्रवात की भीषणता का मुख्य स्थान है।वहां १२ नवम्बर १९७० को एक चक्रवात बंगाल डेल्टा को चीरता हुआ आया था ।उस चक्रवात का नाम है 'भोला'।वह बीसवीं सदी की सबसे बड़ी आपदा थी।लगभग ५ लाख लोग मर

चुके।उस समय वहां राजनीतिक उथल पुथल चल रही थी।पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच अस्तित्व की लडाई थी।पूर्वी पाकिस्तान अब बांग्लादेश नाम से जाने जाते हैं।बांग्लादेश राज्य में जब भीषण तूफ़ान का प्रकोप था।तब वहां की जनता भारत में घुस रहे थे।बांग्लादेश में खाने की कमी थी।बन्दूक द्वीप उपन्यास में अमिताभ जी भोला चक्रवात की भीषण स्थिति को तूलिका के सहारे व्यक्त करते हैं।कथा में होरेन नास्कार नामक एक मछुआरे ने चक्रवात का आँखों देखा वर्णन किया है।"काफी मुश्किल से होरेन ने नाव को भारत की सीमा के करीब ही रखा और जल्द ही वह बालू के एक टीले पर पहुंचे।जहाँ पहले गाव हुआ करता था,कुछ खंभों को छोड़कर वहां गाव का कुछ भी नहीं बचा था।तूफ़ान के बाद उतने.वाली समुद्री लहरों में एक एक घर बह गया था।"[4]बन्दूक द्वीप उपन्यास में एक अवसर पर आईला नामक एक चक्रवात, जो २००९ में सुंदरबन से टकराया,उनका वर्णन भी है।आईला के प्रभाव को रोकने केलिए सरकार की तरफ से प्रतिक्रियाएँ ज़ारी रही थी।कई लोगों को सुरक्षित स्थान पर ले गए।इसीलिए मृत्यु की संख्या में कमी थी।लेकिन चक्रवात से एक मुकाबला यह थी कि ज़मीन जोतने योग्य नहीं है।उपजाऊ भूमि बंजर बन गयी।सुंदरबन चक्रवात से भीषण स्थिति में थी।समय समय होनेवाली प्राकृतिक आपदा से लोगों की ज़िन्दगी मुश्किल हो गयी।अपने गाँवों से निर्वासित होने पर वे लोग निश्चय किया कि कभी भी वापस न लौटेंगे।दरिद्रता के कारण लोग भीख मांगने लगे।आदमियों ने काम की तलाश में विदेश भागे।जवान लड़के और लड़कियाँ चोरी करते हैं।सुन्दरबन में कई लोग मछली पकड़कर जीवन यापन करते थे।लेकिन चक्रवात के असर से खाने केलिए भी मछली नहीं।लेखक कहते हैं "सुंदरबन में ज़िन्दगी इतनी मुश्किल हो गयी थी कि युवकों का पलायन साल दर साल बढ़ता जा रहा था"[5]।

बन्दूक द्वीप उपन्यास में प्रकृति के वनस्पतियों और जीवजंतुओं का ससूक्ष्म चित्रण है।अमिताभ घोष के उपन्यासों की यही विशषता है कि वे विज्ञान की अनेक शाखाओं के घटक तत्वों का विस्तृत व्याख्या करते हैं।साथ ही नरवंश शास्त्री होने के कारण अमिताभ जी को इन पर विशेष रुची होती है।बन्दूक द्वीप उपन्यास में सुंदरबन के मैन्ग्रोव ,साँप, डोल्फिन और अन्य कीड़ा जड़ियों की आतंरिक एवं बाह्य प्रकृति और उनकी जैविक संचरना आदि का विशद टीका है।उपन्यास के एक सन्दर्भ में दीनदत्ता जब मनसा मंदिर जाते हैं।तब उनके सहयोगी टीपू को एक कोबरा दंश लेता है।लेखक कहते हैं किंग कोबरा का शास्त्रीय नाम है ओफ़िओफ़गस हन्नाह।यह इंसानों को कम डंसता है।लेकिन डसने पर छोड़ता भी नहीं।इस उपन्यास में एक विशेष प्रजाति की डोल्फिन, जैसे कि, इरावदी डोल्फिन का चित्रण है। जिसका वैज्ञानिक नाम है ऑरकेला ब्रेवीरोस्ट्रिस।प्रकृति और मानव के बीच की अटूट रिश्ता उपन्यास की नब्ज़ पकडनेवाली है।लेखक की राय में "उसका रिश्ता इतना गहरा और पक्का था की इंसानों की भाषा में उसे दोस्ती कहना होगा।"[6]।इरावदी डोल्फिन के स्थानान्तरण को वैज्ञानिकों द्वारा रिकॉर्ड कर सकते हैं।बांग्लादेश में सुंदरबन द्वीप समूह में इरावदी डोल्फिन मिले जाते हैं।लेकिन उनकी संख्या में चढ़ाव है।एक कारण है कुछ मछुआरों की जाल में फँस जाते हैं और कुछ मोटरबोट और स्टीमर की चपेट में गई।अन्य कारण था समुद्र के पानी में बदलाव।पानी में रासायनिक पदार्थों की वृद्धि हो रही है।इसीलिए समुद्र में प्राणवायु की मात्रा बहुत कम है।इससे डोल्फिनों की मौत हो जाती हैं।लेखक का मतलब यह है कि "अगर आपको भी अपनी जानी पहचानी जगह छोडनी पडे और नए सिरे से शुरू करना पड़े तो तनाव तो होगा ना ? जिन जगहों को आप बहेतर जानते हैं अब आपके लिए भोजन नहीं दे सकती,आपको सुरक्षा नहीं दे सकतीं और आपको जिंदा रहने केलिए खाने केलिए नयी जगहें ढूँढनी होंगी।"[7]।उपन्यासकार यहाँ परिस्थिति की सुरक्षा की आवश्यकता पर जोर देते हैं। मानव जल,वायु,भोजन के बिना जिंदा नहीं रहता, उसी प्रकार प्रकृति की संतान हैं जीव जंतु। उनको भी भूख मिटाना है। प्रकृति ये सब देती हैं। लेकिन मानव की करतूतों से प्रकृति का विनाश हो रहा है।उपन्यास में सुंदरबन की प्रजातियों में विशेष डोल्फिनों की बीचिंग पर सब चिन्तित हैं।बीचिंग ऐसी एक प्रक्रिया है,डोल्फिन समुद्र तट पर झुण्ड होकर लेटते हैं।आजकल बीचिंग बढती जा रही हैं।इसका एक कारण यह है सोनार जैसे उपकरणों से निकलनेवाली ध्वनि।समुद्री स्तन जीवी अपने सुगम चाल चलन केलिए प्रतिध्वनि का निर्धारण इस्तेमाल करते हैं।जब कोई अन्य आवाज़ उनकी गति में आ जाते हैं,तब उनका रास्ता भटक जाता है और समुद्र तट पर आकर फंस जाते हैं।यदि भूमि के सतत विकास पर हम नहीं सोचे तो आगामी पीढ़ियों को जिंदा रहने केलिए यहाँ कुछ न होगा।धरती पर जीवन तो जल से उत्पन्न हुआ।लेकिन उसी जल अब विनाशकारी प्रलय बन जाता है।दुनिया के अंत कैसा होगा?इस प्रश्न का उत्तर कई पौराणिक, ऐतिहासिक,वैज्ञानिक ग्रंथों में उपलब्ध है।हिन्दू पुराणों के अनुसार प्रलय आ जायेगा और दुनिया ख़तम हो जाएगी।पारसी लोगों की धारणा है पृथ्वी के ऊपर पिघले धातुओं की नदियाँ बहेगी।ईसाइयों का मानना है कि मृत्यु सूखा और युद्ध से दुनिया का अंत होगा।प्राचीन इन्का सभ्यता का विचार है अंत भूकंप से होगा।उपन्यास के एक सन्दर्भ लेखक अमेरिका के लोस एंजेलिस के सूखे का वर्णन करते हैं।वहां मछली और केकड़ा मरे जाते हैं।बार्क बीटल्स [वल्क भृंग] नामक एक कीड़े पेड़ों को अंतर से खा लेते हैं।इसकी वजह से पेड़ शुष्क हो जाते हैं और जब अकाल के समय पेड़ों में आग लग जाते हैं।इसप्रकार जंगल का नाश हो जाता है।लोस एंजेलिस में दावानल हुआ था।बड़े पैमाने पर आग फैले गए और वहां के लोगों को सुरक्षित स्थानों की ओर ले चले।इसप्रकार दुनिया भर में हुए पारिस्थितिक समस्याओं का चित्रण उपन्यास का केंद्र विषय है।

अंतत: कह सकते है कि अमिताभ घोष के उपन्यासों में पारिस्थितिक सजगता केंद्र बिंदु हैं।उन्होंने मानव जाति को चेतावनी देकर प्रकृति के सतत विकास पर ज़ोर डालते हैं।जलवायु परिवर्तन से हुई तमाम पारिस्थितिक संकटों का चित्रण करके यह स्थापित करते हैं कि मानव की करतूतों से दुनिया के सम्पूर्ण प्रजातियों का नाश हो रहा है।आइबिस त्रयी में जल प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण,वायु प्रदूषण,दावानल,तूफान,चक्रवात आदि का सूक्ष्मगत विश्लेषण है।बंदूक द्वीप उपन्यास में लोक कथा के अंतर्गत छिपे हुए पारिस्थितिक विचारों को लेखक ढूंढ निकलते हैं।उपन्यासकार नारी और प्रकृति के संबंध को स्थापित करके इको फेमिनिज्म को भी उपन्यासों का विषय बनाया है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.अमिताभ घोष,अफ़ीम सागर, पृ सं 51
2.अमिताभ घोष, बन्दूक द्वीप, पृ सं ११९
3.वही, पृ सं १२२
4.वही, पृ सं १३
5.वही, पृ.सं ४७
6.वही, पृ सं ८८
7.वही, पृ सं ९३

Use of Multilingual Setting with Group Activities as a Teaching-learning Strategy in Teaching and learning of English (esl) in Rural School

Paramjeet Kaur
E-mail: pkaur260@gmail.com
Mob: 8800288035

Abstract:-*Students of rural schools face many problems in getting of education. One of the big problems is to learn English in their school days, mainly when they appear in matric board exams and show poor performance in English, in comparison to other subjects. To help in this problem Vidya Bhawan Society, Udaipur with collaboration of Hindustan Zinc organizes a summer camp in the month of May at the school campus for the students of class IX and X of Rajasthan.*

English language team organized the class of thirty students in four to five groups randomly and one person of the team introduced the topic of the day. Then English worksheets were distributed among the students. In each group one facilitator helped the students in doing the worksheets. In descriptive questions option of writing in their mother tongue or Hindi was also given so that they could at least attempt the worksheets. After completion, discussion was followed. Students were provided with grammatically right answers based on the content described by the students in English, Hindi or mother tongue (Marwari, Bagri) in the oral or written form. Researcher who was one of the members of English team observed that this strategy of teaching English works effectively. Students attempt to perform and learn in friendly environment.

Keywords:-Multilingual Setting, group activities, teaching-learning strategy, English learning in rural schools.

Introduction:-Language plays vital role in our life not only for communication but also for thought expression as well as acquiring the knowledge from different fields. Rama Kant Agnihotri speaks about the language, "it (language) has often been thought of only as a means of communication. It is actually much more than that. It is a marker of our identity and a tool for the acquisition of most of knowledges" (Agnihotri, 2001).

In school setup language as a subject is different from the language of instruction in other subjects. In Govt. schools of India, English is taught as second or third language but medium of instruction is either Hindi or the other regional/state language. It means each subject teacher is not only her subject expert but she is also a language teacher as she uses many terms and registers for teaching her subjects. This way every teacher teaches students language related to the subject. Therefore, language is not just a means of communication. All sources of knowledge are opened through language. According to Agnihotri, "language is central to all domains of knowledge" (Agnihotri, 2015:1). He speaks about the language that it should be across the curriculum in the teaching learning process, as our school system does provide space for three language formulae, but language across the curriculum has not yet get focus in school curriculum.

"Indian society is characterized by multilingualism" (Pattnayak, 1984). There are many languages available in the classroom setting; different style of a language is used by students for oral expression at different places and in written expression; teachers also use different style of language according to their subjects as well as their own tongue (accent of a specific language) which can be different from school language. Agnihotri points out the importance of multilingual character of classroom settings in these words, "unmarked classroom in India is essentially multilingual and multicultural and these features can be used as resources rather than seen as obstacles" (Agnihotri, 1996).

Students of rural area schools face many problems in getting of education. Most of the students are first generation learners, have the knowledge of their home tongue and own

community culture. Medium of instruction is Hindi in most of the Govt. schools of North India. Hindi is other than the home languages of the students of these schools. They speak different style of Hindi or the dialects of Hindi. These dialects are also complete languages and have their own identity which is different from Hindi. For example, Bagri, Marwari, Braj-bhasha, and Avadhi are known as the dialects of Hindi, but they are complete in their own. We can see the wordily meaning of Braj-bhasha: language of Braj state (Braj Pradesh ki Bhasha), which means it is a complete language, not a dialect. In the medieval period, Braj-bhasha was the language of literature as well as administration. English is a foreign language for the students of rural area Govt. schools. As we talk about ESL (English as a second language), but for many of these students, it is a third language. One of the big problems for these students is to learn English in their school days, mainly when they appear in matric board exams and show poor performance in English, in comparison to other subjects.

Vidya Bhawan Society, Udaipur with collaboration of Hindustan Zinc organizes a summer camp in the month of May at its school campus for the students of class IX and X of Rajasthan, every year. Purpose of the camp is to provide help these students in improving the English language for their board exams. Participating students have come from the six districts of Rajasthan to Udaipur for this residential camp. This camp is also organized to other places (sites of Hindustan Zinc) of Rajasthan for those students who could not attend this residential camp of Udaipur. Vidya Bhawan Society, Udaipur invites volunteers from all over India to facilitate these students.

As NCF 2005 recommends children's mother tongue as the medium of instruction. In this camp, English language facilitators use Hindi and home languages of the students to teach English. Therefore, students feel comfort and proud for their tongue, as recognition to their tongue is given in the class. Many documents and educationist recommend bilingualism/multilingualism as a means of school learning because it is proved that bilingual or multilingual children are more creative than the monolingual children. They have control over many languages which helps them in metalinguistic awareness, critical thinking and comprehension (NCERT, 2006:21).

For teaching learning of English language, Agnihotri recommends a pedagogy rooted in multilinguality that would ensure the emergence of society that is marked not for its justice, equality, liberty and care for others. It should also be a society that encourages rationality and respect for diversity. Main purpose of the language teaching is to sustain multilinguality and motivate critical thinking. It should encourage the ability of speaking without effort, listening and understanding with patience and learning to respect other languages (Agnihotri, 2010)

Objective of the study:-To observe the effectiveness of use of Multilingual Setting with group activities as a teaching-learning strategy in teaching and learning of English (ESL) in rural school.

Research Methodology :-Researcher was one of the members of English language team and worked as a participant observer in the English language class. Qualitative research methodology was adopted for data collection and data analysis. Researcher's self-experience is documented in this research paper. Researcher stayed at the residential camp and observed daily routine activities.English class was organized in four to five groups. Four to five facilitators were present in the class means at least one facilitator per group. In English class other languages were also welcomed. Students-students, students-facilitators interaction activities in English with the support of Hindi or mother tongue of the students were happened.

Tools used

1. Worksheets used by language facilitators
2. Participant observation

a. Interaction with students
b. Interaction with teachers

3.Feedbacks

a. Students feedbacks
b. Teachers feedbacks

Teaching learning strategy:-There was multilingual setting in the English language class. Students belonged to six different districts of Rajasthan and speak different styles of their local language and Hindi for communication. Facilitators belonged to different parts of India speak Hindi or English in different styles. Though all facilitators did not know the local language of Rajasthan but in explaining a concept or content, they encouraged students to participate in their tongue. When any word was not clear than facilitator asked students to explain that word in their own words. Afterward facilitator explained that in simple English.

As Anandalakshmy in ABL project (ability based learning) mentioned teaching learning in groups. Several children have the learning material for working in their groups, when the teacher is engaged with one group. In this approach the child learns in self-directed way at her own pace, from given systematic materials (Anandalakshmy, 2010). Like ABL in the English classes of summer camp, language facilitators divided the class of 25-30 students in 4-5 groups for teaching and learning activities. Students in a group were free to discuss and help each other in relation to the topic introduced in the class. One of the facilitators introduced the topic and discuss it with the class in general. Then worksheets related to that topics were distributed among students. Worksheets had different types of question like: fill in the blanks, matching, one-word answer, one-line answer, and descriptive answer. In the descriptive type questions, option of Hindi or Marwari/ Bagri was given for writing the answers. Students were helped in groups by the facilitators. After completion of worksheets, discussion was followed with the groups by facilitator. Students participated in discussion in their comfort language Hindi or Marwari/ Bagri.

Results and discussion:-Students participated confidently without fear in the teaching learning process, as they had provided opportunities to talk or to write in their comfort language. They can discuss, answer, respond, and write in Hindi or their own tongue like Marwari, Bagri etc. When they gave their answer, facilitator had provided them simple English version of that answer. Students and teachers both tried to participate in groups to discuss the language learning problems of ESL. In these classes, not only students learned but the facilitators also learned many things from the students.

No single method is completely good or bad for teaching-learning a language. Therefore, a combination of different methods of teaching learning language was used instead of a single method for learning English language in these classes. This combination included translation method, cognitive method, behavioristic method etc. These classes were fully multilingual as students were from the different district of Rajasthan (having different language according to their district) and facilitators were from different states of India having different language ability. These English classes were basically related to grammar. Medium of instruction was Hindi but in flexible tone so that it could include the variety of students. With the help of students' language and cultural knowledge, English was taught.

Researcher who was from Delhi felt no problem in interaction with students. Even facilitators who belonged to south India and had little knowledge of Hindi also enjoyed these multilingual classes of English language learning. We all were facilitators as well as learners in these settings.

Conclusion and suggestions:-Researcher can conclude that in the classroom teaching of not only English but in all subjects, teachers can use group activities as teaching learning strategy by making 4-5 groups of the students. As the teacher knows the performance of the students of her class, she can make mix group of sharp and low students so that good discussion can be done. After introducing the topic, she can go individually to the groups one by one and observe their problems. At the end, whole class can get their solution from the teacher. Minor mistakes of spelling or grammar may be ignored. In the last of the class, grammatically right answer can be provided by the teacher after making discussion in

Regard to content and context of the answer with students. It can reduce the over burden of the teacher. Students feel happy with these activities as it provides them opportunities to participate without fear and to use their own comfort language in class. Teacher also works as a learner among the students which provides them proud about their language. For this teaching strategy events can be taken from the textbooks or some worksheets can be developed by the teacher herself. After discussing the print material, teacher can use the language and cultural knowledge of students as a study material to encourage them for participation.

****

References:-

1. Agnihotri, R. K. (1996). Sociolinguistic aspects of a multilingual classroom. International seminar on 'Languale in Education', Cape Town, South Africa (Jan 15-20, 1996).
2. Agnihotri, R. K. (2001). English in Indian education. In C.J. Daswani (eds.), Language education in multilingual India (pp.186-209). UNESCO: New Delhi.
3. Agnihotri, R. K. (2010). Multilinguality and the teaching of English in India. EFL Journal 1:1 (Jan. 2010).
4. Agnihotri, R. K. (2015). Multilingualism vital for across the curriculum. DHNS (May 8, 2015).
5. Anandalakshmy S. (2010). A Report on an Innovative Method in Tamil Nadu (ACTIVITY BASED LEARNING).
6. Kaur, Paramjeet (2019). Language learning in multilingual settings at primary level. Ph.D thesis submitted in JMI: New Delhi.
7. Koul, Omkar N. (2001). Language preferences in education in India. In C.J. Daswani (eds.), Language education in multilingual India (pp.337-383). UNESCO: New Delhi.
8. NCERT (2005). National Curriculum Framework. NCERT: New Delhi.
9. NCERT (2006). Position paper of National Focus Group on Indian Languages. http://ncert.nic.in/html/pdf/schoolcurriculum/Position_Papers/Indian_Languages.pdf
10. Pandit, P.B. (1972). India as a sociolinguistic area. Poona: University of Puna.
11. Pattanayak, D. P. (1981). Language and Politics. In Language and Social issues. Princess Leelavati Memorial Lectures. University of Mysore: Mysore.
12. Pattanayak, D. P. (1984). Multilingualism and language politics in India. India International Centre Quarterly, Vol.11, No.2, Language, pp. 125-131.http://www.jstor.org/stable/23001652

प्राचीन बौद्ध स्मारकों का सांस्कृतिक महत्व

दिव्या सिंह
शोधार्थी इतिहास
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

प्रस्तावना - संस्कृति शब्द का तात्पर्य संस्कारित या परिष्कारित कार्य है। यह संशोधन की सतत प्रक्रिया है। संस्कृति, मानव समाज के भाव विचारों और उनके जीवन में व्यवहार से संबंधित है, जबकि सभ्यता उसके बाह्य जीवन से संबंधित है। विशाल देश भारत में वृहत्तर परिपेक्ष्य में भारतीय संस्कृति एक होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से बौद्ध, जैन, हिन्दि आदि संस्कृतियों में बंटी हुई है। प्राचीन भारत की संस्कृति के अध्ययन के लिये पुरातात्विक सामग्री एक अपरिहार्य स्रोत है। भारतीय पुरातत्व में बौद्ध केन्द्रों और स्मारकों का अद्वितीय स्थान है, क्योंकि ''हमारे देश (भारत) में जो पुरातत्व अवशेष हैं वे हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर है। उनकी संख्या प्रायः 1800 है जिनमें 1400 अवशेषों के स्थल नितान्त बौद्ध परम्परा के है।''

बौद्ध संस्कृति का महत्व -प्राचीन बौद्ध केन्द्र धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक रहे हैं। यही कारण है कि जहाँ बौद्ध केन्द्र हैं, वहीं जैन और ब्राह्मण धर्मों के भी केन्द्र स्थापित और विकसित होते रहे हैं। वे पारस्परिक सौहार्द्र के केन्द्र थे। वर्तमान की भाँति उनमें धार्मिक कट्टता और विद्वेष की भावना नहीं थी। यदि कहीं एकाध उल्लेख मिलते भी होंगे तो वे किसी कारण घटना के फलस्वरूप ही होंगे।

इस धार्मिक और सांस्कृतिक सहिष्णुता का कारण यह था कि उनका अन्तर-भेद, धर्म में नहीं था, वह अन्तर था धर्म-पालन विधि और प्रक्रिया में। उनके दार्शनिक विचारों में अन्तर था। उस समय के लोग किसी बात का खण्डन-मण्डन, शास्त्र ग्रन्थ लिखकर करते थे। कभी-कभी तो बौद्धिक प्रतिद्वन्दात्मक प्रतियोगिता कई पीढ़ी तक गुरू-शिष्य परम्परा के माध्यम द्वारा चलती रहती थी।

प्राचीन भारत की एक सांस्कृतिक स्वस्थ परम्परा यह भी थी कि दार्शनिक प्रतियोगिता में पराजित होने वाला विद्वान, विजयी विद्वान को अपना गुरू मानकर उसका शिष्यत्व स्वीकार कर लेता था और अपने पूर्व के सिद्धान्त या सिद्धान्तों का पूर्णरूपेण परित्याग कर देता था। पूर्व बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने, काश्यप बन्धुवों ने और सारिपुत्र मौद्गल्यायन आदि ने इसी प्रकार बुद्ध का शिष्यतव स्वीकार किया था। वेद-बेदांग पारंगत अश्वघोष और बुद्धघोष ने भी इसी प्रकार बुद्ध धर्म स्वीकारा था। ज्ञातव्य है कि अश्वघोष ने बुद्धचरित और सौन्दरनन्द (महाकाव्यों) सारिपुत्र प्रकरण (नाटक) वज्रसूची (चम्पू काव्य) की संस्कृत में रचना करके कालिदास का पथ प्रशस्थ किया। बुद्धघोष ने बौद्ध दर्शन का दुरूह ग्रन्थ 'विसुद्धि मग्ग' तथा पालि त्रिपिटक ग्रन्थों पर भाष्य (अट्ठ कथायें) लिखीं।

भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख आधार कला और स्थापत्य है। सिन्धु घाटी के हड़प्पा और मोहनजोदड़ी आदि केन्द्रों के पुरातात्विक उत्खननों से ही यह ज्ञात हो सका कि भारत में सुनियोजित ढंग से भवनों का निर्माण तथा तांबे और पत्थर की मूर्तियाँ का बनाना पूर्व सिन्धु सभ्यता (ई0पू0 3500-3000) के युग में प्रारम्भ हुआ था। उसके पश्चात् एक लम्बे अन्तराल तक भारतीय इतिहास अन्धकारपूर्ण रहा। नगरों के निर्माण के कोई पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त नहीं होते।

पुनः बड़े-बड़े नगरों का निर्माण बुद्ध और महावीर युग (छठवीं और पाँचवी शताब्दी ई0पू0) से प्रारम्भ होते पाते हैं। जब श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली, साकेत, पाटलिपुत्र, जैसे विशाल नगरों का सुनियोजित निर्माण हुआ। कुछ का गौतम बुद्ध द्वारा उद्घाटन भी करवाया गया। उनमें पाटलिपुत्र प्रमुख था। इसीलिये इसे द्वितीय नगरीय सभ्यता का युग कहते हैं। इन नगरों के ध्वंसावशेष पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त होते हैं जिन्हें देखकर नगरों के नियोजन और भवनों के निर्माण का पता चलता है।

सिन्धु सभ्यता के पराभव के साथ ही मूर्ति निर्माण कला का भी अवसान हो गया। पूनः उनकी प्राप्ति मौर्य युग के उद्भव (लगभग 322 ई0पू0) के साथ होने लगती है जो कला की दृष्टि से बहुत सुडौल नहीं मानी जाती। लेकिन अशोक के युग में (274-232 ई0पू0) उत्कृष्ट मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिनमें हस्ति, अश्व, बृष, सिंह, मोर, हंस आदि की मूर्तियाँ, बोधिवृक्ष, धम्म चक्र, त्रिरत्न आदि की प्रतीक मूर्तियाँ मुख्य हैं।

ज्ञातव्य है कि सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की अस्थि धातुओं को रामग्राम स्तूप के अलावा सात स्तूपों से कुछ अंश सुरक्षित छोड़कर, उन्हें निकाल कर चौरासी हजार भागों में विभाजित करके उन पर पूरे जम्बू द्वीप में उतने ही, अर्थात् 84,000 स्तूपों का निर्माण करवाया था। उन्हें भली-भाँती दीप मालिकाओं से सुसज्जित कर कार्तिक मास की अमावस्या (द्वितीय उपोसथ दिवस) को सबका एक साथ उद्घाटन करवाया था। यही दीपमालिका पर्व कहलाया जो आज भी भारत में (विशेषकर उत्तरी भारत में दीपावली के नाम से मनाया जाता है)। सम्राट अशोक के तीसरे शिलालेख से पता चलता है कि उसने स्तूपों की स्थापना के अलावा मिश्र, मेसिडोनिया तथा मिश्र के पश्चिम में स्थित सीरीस, एपिरस और यूनान जैसे दूरस्थ देशों को सद्भावना सन्देश भेज कर मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। भारत के विभिन्न भू-भागों (काश्मीर, गान्धार, मैसूर उत्तरी कनारा, अपरान्त, महाराष्ट्र और हिमवन्त प्रदेश) के अलावा धर्मराज अशोक द्वारा श्रीलंका, यवन देश, पेगू, वर्मा तथा अन्य समुद्रतटीय देश (सुवर्ण भूमि) को बुद्ध के मानव कल्याणकारी उपदेशों के साथ भिक्षु मण्डल भेजे गये थे। जिसकी पुष्टि साँची से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्य से भी होती है।

सम्राट अशोक का इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य पाषाण स्तंभों की स्थापना और उन पर मानवीय शील समाचरण के सद्धर्म वचन अंकित करवाना, उन्हें विभिन्न पशुओं की मूर्तियों, प्रतीकों से अलंकृत कराना और अभूतपूर्व चमकदार पालिश का प्रयोग करना, कठोर से कठोर शिला-खण्डों को चौरस और समतल करवाकर उन पर सद् धम्म उपदेशों को खुदवाना था। ये स्तम्भ और अभिलेख हजारों वर्षो की वर्षा, धूप, आँधी-तूफान आदि विषय पर्यावरणीय परिस्थितियों को झेलते हुए आज भी भारत ने ही नहीं, नेपाल, पाकिस्तान और अफगानिस्तान तक विद्यमान है।

अशोक पहला सम्राट था जिसने निर्माणकला में सबसे पहले उन्हें चिरस्थायित्व प्रदान करने के लिये पत्थर का प्रयोग किया, जिसे वह अपने सातवें स्तंभ अभिलेख में स्पष्ट करता है। वस्तुतः यह भारतीय निर्माणकला के लिये उसकी अद्वितीय देन थी। जिसके अभाव में उसके समस्त शिलाभिलेखों, स्तम्भ अभिलेखों तथा गुहाभिलेखों से तो हम सब लोग वंचित हो ही जाते, उन पर निर्मित विश्व श्रेष्ठ कला (सारनाथ के स्तम्भ पर चार सिंहों युक्त शीर्ष भाग) के ज्ञान से भी वंचित रह जाते।

श्रावस्ती में महा उपासक अनाथपिण्डिक द्वारा स्थापित जेतवन विहार के उत्खनन से यह स्पष्ट हो गया कि 12वीं शताब्दी ई0 तक इन विहारों का जीर्णोद्वार और पुनर्निमाण होता रहा। जैसा कि यहाँ से प्राप्त कन्नौज के गहड़वाल शासक गोविन्द चन्द्र के एक ताम्र पत्राभिलेख से ज्ञात होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी ने सारनाथ में 'धर्म चक्र जिन विहार' की स्थापना करवाई थी, जिसके खण्डहर पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। इन खण्डहरों को देखकर विहारों का नियोजन, तल विन्यास उसके भागों का सुस्पष्ट चित्र आँखों के सामने प्रस्तुत होता है। इन स्मारकों के अभाव में विनय पिटक में वर्णित विहारों और उनके अंगों के आकार-प्रकार और निर्माणस्वरूप की जानकारी शायद संभव न हो सकती। विनय पिटक के महावग्ग और चुल्लवग्ग से पता चलता है कि विहार निर्माण के स्थल का चयन नगर-ग्राम से नाति दूर और नाति समीप ही होना चाहिये। (गामतो नेव अति दूरे न उच्चासने) बुद्धों ने बौद्ध भिक्षुओं के लिये जिन आवासों की आज्ञा दी थी, वे थे- विहार, अद्दयोग, प्रासाद, हर्म्य और गुहा। इनमें सबसे पहले 60 विहारों का निर्माण राजगृह के एक दायक उपासक ने करवाया था। (सठि विहारा कारापिता) चार प्रकार की गुफाओं का उल्लेख मिलता है। ये ईटों द्वारा निर्मित (इट्ठा गुहा) पत्थर द्वारा निर्मित (सिला गुहा), काठ (लकड़ी) द्वारा निर्मित (दारू गुहा) और मिट्टी की बनी हुई गुफाएँ (पांसु गुहा) होती थी।

विनय पिटक में कुटी भी भिक्षु आवास के लिये अनुमन्य बतलाई गई है। पाराजिक (विनय पिटक के अन्तर्गत) से पता चलता है कि आलवी (नेवल, जि0 उन्नाव) के भिक्षु, एक कुटी का निर्माण करवा रहे थे जिसमें उन्होंने उसकी अनुमन्य लम्बाई-चौड़ाई और ऊँचाई का ध्यान नहीं रखा था, जिसके कारण उन्हें भगवान बुद्ध की ताड़ना सहनी पड़ी थी। निर्धारित माप के अनुसार कुटी की लम्बाई बुद्ध के 12 वित्ता, चौड़ाई 7 बित्ता होनी चाहिये। इसे राहुल सांकृत्यायन जी क्रमशः 10 फिट 6 इंच और 6 फिट मानते हैं। विहार के अंगों का उल्लेख चुल्लवग्ग में इस प्रकार प्राप्त होता है-

परिवेण, उपट्ठानसाला, कोट्ठक, अग्गिसाला, कप्पिय कुटी, वच्च कुटी, चंकं, चंकमनसाला, उदपान, उदपानसाला, जन्ताघर, जन्ताघर साला, पोक्खरणी और मण्डप।

इनमें से परिवेण विहार के मध्य का आँगन ही होता था, जहाँ बैठकर शिष्य पढ़ते थे। कोट्ठक (कोठा) विहार के मुख्य द्वार की कोठरी होती थी। उपट्ठानसाला, भोजन करने का अथवा भोजन रखने का कमरा था। अग्गिसाला, आग रखने का छोटा कमरा होता था, क्योंकि आग को निरंतर सुरक्षित रखना आवश्यक था। कप्पिय कुटी, भण्डारगृह था। वच्च कुटी, शौचालय भाग था। चंकं टहलने का खुला चबूतरा और चंकमसाला आच्छादित टहलने का स्थान होता था।

उदपान, कुआँ था और उदपानसाला ढका हुआ कुआँ, जिसके पास एक कमरा होता था अथवा कमरे के अन्दर का कुआँ। जन्ताघर, स्नानगृह ही था। महोदय रीज डेविड्स और सी.ए. उपासक इसे 'ऊष्मा स्थान गृह' मानते है जो गर्म रहता था। पोक्खरणी, पुष्करणी या जलाशय होता था और मण्डप, विहार का मूर्तिगृह होता था। विहार के इन सभी अंगों को जेतवन के उत्खनन में प्राप्त बौद्ध विहारों में स्पष्ट देखा और समझा जा सकता है जिनका वर्णन राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'जेतवन श्रावस्ती' में किया है।

पस्साबगुटी, पेशाबघर ही था जिसमें पेशाब करने के लिये पेशाबदान (पस्साब कुंभि या पस्साब दोणी) होता था। दुर्गन्ध न फैले, इस लिये पेशाबघर को ढक्कन (अपिधान) से ढक दिया जाता था।

विहार में एक उपोसथागार भी होता था जहाँ महीने के चार उपोसथ दिवसों (दो अष्टमी, अमावस्य और पूर्णिमा) को भिक्षु और उपासक अलग-अलग समय पर विहारों में उपोसथागार में एकत्रित होते थे। यह बड़ा हाल ही होता था। विहार में भिक्षुओं के काषाय वस्त्र रंगने के लिये 'रंगसाला' का भी निर्माण किया जाता था। विहार की वाउन्डरी दीवाल को प्राकार कहा गया है।

यदि जनरल एलेग्जन्डर कनिंघम, कार्लाइल, डी.आर. साहनी, डॉ. फ्यूहरर, सर जॉन मार्शल आदि पुरातत्ववेत्ताओं प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों के टीलों, डीहों और खेड़ों का उत्खनन न करवाया होता तो भरहुत, बोधगया, सारनाथ, तक्षशिला आदि के बौद्ध स्मारकों और कलाकृतियों तथा उनमें सन्निहित भारतीय सांस्कृतिक निधि से सभी पाठक अनभिज्ञ ही रह जाते। वास्तव में बौद्ध स्थापत्य कला का सुस्पष्ट ज्ञान लोगों को बौद्ध केन्द्रों के उत्खनित स्तुपों और विहारों के खण्डहरों को देखकर ही हो पाता है। नालन्दा के खण्डहरों को देखे बिना, नालन्दा विश्वविद्यालय का पूरा चित्र ही सामने नहीं आ सकता था।

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग मूर्तिकला भी हैं डॉ. सी.एस. उपासक के शब्दों में- ''मूर्तिकला में संसार की सुन्दरतम् प्रतिमाओं में से तीन प्रतिमाएँ सर्वोपरि हैं। इनमें एक सारनाथ के संग्रहालय में है। दूसरी मथुरा संग्रहालय में और तीसरी प्रतिमा राष्ट्रपति भवन को सुशोभित कर रही है। ये तीनों प्रतिमाएँ भगवान बुद्ध की हैं। पुरातत्विक सर्वेक्षण और उत्खनन के अभाव में ये मूर्तियाँ प्रकाश में न आ पातीं और पाठक ही नहीं, सम्पूर्ण भारत, विश्व में मूर्तिकला के गौरव सम्मान से वंचित रह जाता। यह है भारतीय संस्कृति के लिये बौद्ध केन्द्रों और स्मारकों का महत्व।

उपसंहार -

भारतीय संस्कृति के मूलाधारों में सत्य, अहिंसा, करुणा, बंधुता जैसे शाश्वत मूल्य हैं। इन मूल्यों के प्राचार-प्रसार में सैकड़ों वर्षो की अवधि में अन्य धर्मों व संस्कृतियों के साथ-साथ बौद्ध धर्म ने जितना योगदान दिया, वह असाधारण है। मनुष्य को मानवीय गुणों से परिपूर्ण बना कर उसे निरंतर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करने का बौद्ध धर्म का यह महान कार्य भारत की सीमाओं के बाहर तक पहुंचा और आज इसकी उपलब्धियॉ सम्पूर्ण मानव समाज की धरोहर है।

अतः सारांश रूप में यह कहना समीचीन होगा कि प्राचीन बौद्ध केन्द्रों का अध्ययन भारतीय कला और संस्कृति के अध्ययन के लिये अपरिहार्य साधन है। उनसे धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक बन्धुता, करूणा, दया तथा मानवीय गरिमा और स्वावलम्बन बोध की शिक्षा मिलती है। ये केन्द्र वस्तुतः मौन शिक्षक के समान ही हैं। ये स्थापत्य कला, चित्रकला और मूर्ति शिल्प की उत्कृष्टता के प्रमाण पत्र तो हैं ही, सतत् और सार्थक प्रेरणास्रोत भी हैं।

****

सन्दर्भ -

1. डॉ. अँगनेलाल, 'बौद्ध संस्कृति', प्राक्कथन, पृ. दो
2. महावग्ग, पृ. 10-13
3. डॉ. श्रीमती यमुनालाल, भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म प्रसारक, पृ. 11
4. महावग्ग, पृ. 38-41,
5. डॉ. अँगने लाल, बुद्ध शासन के रत्न, पृ. 31-32
6. दीर्घ निकाय, हिन्दी, पृ. 124-126
7. बुद्धचरित 28/659.
8. महावंस, परिच्छेद-12, पृ. 60-63
9.. वी.एस. अग्रवाल, सारनाथ, पृ. 19,
10. चुल्लवग्ग, पृ. 252/24
11. विनय पिटक, हिन्दी, पृ. 451,
12. पाराजिक, पृ. 215/12
13. चुल्ल. 231/1
14. डॉ. अंगने लाल, बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम, पृ.2-3

नासिरा शर्मा की कहानियों में सांप्रदायिकता

डॉ.शेख़ बेनज़ीर
सहायक आचार्य
एस.वी.सि.आर.शासकीय महाविद्यालय पलामनेरू, चित्तूर, आंध्रप्रदेश

सारांश : भारतीय इतिहास में विभाजन की बड़ी त्रासदी है जिसके परिणाम आज भी भयानक रूप से दिखाई देते हैं। इस विभाजन से उपजे सांप्रदायिकता में मानवी मूल्य ही बदल दिए गए। आजादी के बाद सोचा था कि हमारा देश विभाजन की त्रासदी से बाहर निकाल कर धीरे-धीरे सामाजिक सद्भाव की ओर बढ़ेगा, लेकिन संकीर्ण मानसिकता के कारण मूल्य विघटित हुए हैं। देश विभाजन ने लगभग पूरे भारत को सांप्रदायिकता की ज्वाला में धकेल दिया। सांप्रदायिकता के कारण उपजे सामजिक रूप ने साहित्यकारों को हिला कर रख दिया। उन्होंने न केवल विभाजन के दिनों में बल्कि लगातार इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करते रहे। हिंदी में यशपाल, कमलेश्वर, राही मासूम रज़ा, अब्दुल बिस्मिल्लाह, दूधनाथ सिंह आदि साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने लेखन में इस समस्या के विविध पहलुओं पर विचार किया है।

देश विभाजन ने जन मानस की चेतना को तहस – नहस कर दिया | ''देश विभाजन और सांप्रदायिक दंगे की अंधी – तूफान में व्यक्ति के समस्त मानवीय मूल्य, आस्था और विशवास पूर्णरूपेण धराशयी हो गये | मानवीय संबंधों और मानवीय मूल्यों का विघटन पहले परिस्थिति और भूगोल गत था, फिर मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक स्तरों पर चलने लगा |''[१]

बीज शब्द : देश विभाजन, धर्म, सांप्रदायिक, अखण्डता

इस देश में सांप्रदायिकता का बीज भारतीय मानस के अन्दर अंग्रेजों ने उसी समय बोया, जिस समय उन्होंने भारत का बंटवारा किया था | आज पूरा भारत वर्ष सांप्रदायिकता के कारण ग्रस्त दिखाई देता है | इसका मुख्य कारण यह है कि ''विभिन्न धर्मों के ठेकेदारों, पंडितों, मुल्लाओं और ज्ञानी संतो ने धर्म के बाह्य स्वरूपों, उसके कर्मकाण्ड और उसकी औपचारिकता को प्रधानता दे डाली | उनके आधारभूत तत्वों की एकता पर जोर नहीं दिया |''[२] नासिरा शर्मा एक संवेदनशील लेखिका होने के नाते उनके साहित्य में सांप्रदायिक सौहार्दता का चित्रण देख सकते हैं| सांप्रदायिकता का अर्थ ''सांप्रदायिक होने का भाव केवल अपने संप्रदाय की श्रेष्ठता तथा हितों का विशेष ध्यान रखनेवाला |''[३] सांप्रदायिकता मनुष्य के उस संकीर्ण और स्वार्थपरक विचारधारा का प्रतीक है, जिससे धार्मिक समुदायों में परस्पर द्वेष और घृणा की भावना पनपती है एवं हिंसा की आग भड़कती है |राजनीति में संप्रदाय को विशेष महत्त्व प्राप्त है, क्यों कि नेता किसी संप्रदाय विशेष से संबंधित होता है, वह अपने संप्रदाय के विकास के लिए तत्पर रहता है | कभी – कभी वह संप्रदाय का उपयोग सत्ता प्राप्त करने तथा कुर्सी बचाने के लिए करता है |भारत में सांप्रदायिकता राजनेताओं के हाथ की कठपुतली बन गयी है | सांप्रदायिकता की परिणति दंगे में होती है | अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु डॉ समुदायों को आपस में लड़ाते हैं | ''सांप्रदायिकता भारतीय राजनीति के दाव – पेंचों की उपज है | 'राजनीतिज्ञ अपने लाभ के लिए सांप्रदायिकता की भावना फैलाते हैं और जरूरत पड़ने पर दंगे भी कराते हैं | राजनीति का अपराधी कारन हो रहा है | समाज विरोधी तत्वों को संरक्षण देकर सांप्रदायिकता का जुआ खेला जाता है |'[४] स्वार्थसिद्धि हेतु असामाजिक तत्वों द्वारा सांप्रदायिकता की आग भड़कती जाती है, फसाद करवाया जाता है | 'सबीना के चालीसा चोर' कहानी में बढ़ती सांप्रदायिकता का बेबाक चित्रण हुआ है | ''फसाद जंगल की आग की तरह एक शहर से दूसरे शहर में फैल रहा था | .... खुशी के मौके पर अब सियासत और फसाद की बातें होती थीं |''[५] दंगे - फसाद करने और करानेवालों का कोई धर्म, ईमान नहीं होता, क्योंकि किसी भी धर्म में निरपराधी को मारना पाप समझा गया है, अत: फसाद फैलानेवाले ''जाने किस नस्ल और नुल्फे के होते हैं | इन्हें तो हिन्द-मुसलमान कहना गुनाह है, जल्लाद इनका काम, बारूद बिखेरना और फलीता लगाना है, तभी तो देखो हरे – भरे मुल्क को कैसे खून से भिगो दिया |''[६] सन् १९८४ में श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद देशभर में सिख समुदाय के विरोध में सांप्रदायिकता की आग भड़क उठी थी | सिखों को जान से मारा गया, उनकी संपत्ति जलाई गई | 'ओमोख्ता' कहानी के वीर जी इस हिंसा के साक्षी है | यह हिंसा को देखकर वीर जी के मन में प्रश्न उपस्थित होता है कि ''आज का शासक तो हमारा अपना चुना हुआ है – फिर ? क्या हमने आज आंखे फोड़ दी है और जबान सिल ली है, जो कोई नहीं कहता कि सियासत के चलते आज दूसरी कौम अपने ही देश में बेआबरू क्यों हो रही है |''[७] "आया वसंत सखी'' कहानी में दस्तकारों का स्वतंत्र व्यवसाय बड़े व्यापारियों को उखरता है, अत: दस्तकारों की आर्थिक दशा को दुर्दशा में परिवर्तन करने हेतु शहर में शिया – सुन्नी समुदाय में दंगा करवाया जाता है | ''सुन्नी – शिया फसाद हुए अभी दो दिन ही गुजरे थे | मगर मरनेवालों और तबाह होनेवाली चीजों की संख्या अनगिनत थी | दो गरीब वर्ग एक – दूसरे के खून प्यासे हो गये थे |''[८] 'असलीबात' कहानी में शहर में हिन्दू – मुस्लिम दंगे – फसाद हो जाते हैं, अंतत: पुलिस को कर्फ्यू लगाना पड़ता है | कर्फ्यू के कारण दोनों मोहल्लों के गरीबों ने पछताना शुरू कर दिया था .... मजदर ने मजदरी से हाथ धोया, दकानदारों ने ग्राहकों से | चूल्हे तो घर-घर दसरे दिन से ही ठंडे पड़ने लगे थे | कर्फ्यू खुलता भी घंटे को तो खरीदारी की सकत किस में थी |''[९] नौ-तपा कहानी में बढ़ती संप्रदायिकता का

मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है | इस कहानी का नायक समीह सांप्रदायिकता शिकार है | उसके माता-पिता की हत्या हो जाती है, घर अवैद्य कब्जा किया जाता है | समीह अपना नाम लछमन प्रसाद बताता है | अब उसे लच्छू के नाम से बुलाते हैं | जब यह भेद खुलता है कि लच्छू इस घर के मालिक का बेटा है समीह है, उसकी बुरी तरह पिटाई होती है | 'मेरा घर कहाँ' कहानी की लाली, धोबिन, सोना, ननकू ऐसे पात्रों के नाम हैं, जो मुस्लिम हैं किन्तु उनके नाम मुस्लिम जैसे नहीं है | सोना अपने दूर के चाचा रहमान का पता पूछती है, उसे कोई जानता नहीं था | आखिर थक कर वह पेड़ के नीचे बैठ गयी, जिसके पास किसी घनश्याम धोबी का अड्डा था |''[१०] नासिरा शर्मा जी सांप्रदायिक समस्या को 'सरहद के इस पार' कहानी में चित्रित किया | सांप्रदायिक दंगों में कहानी का नायक रेहान पागल होकर हिन्दुओं को गालियाँ देने लगता है | ''मारो सारे हिन्दुओं को, गलै दबादो इनके| साले कहते हैं कि तुम पाकिस्तानी हो जाकर पूछो इनसे, तुम्हारे बाप-दादा इसी धरती के अगोरा में गड़े है | सबूत चाहिए तो जाकर देखो हमारे कब्रिस्तान सबके सब मौजूद है वहाँ | खुद गद्दार है और हम पर इल्जाम लगाते हैं | नौकरी न देने का अच्छा बहाना ढूँढा है | आखिर कहे भी क्या ? मारो सब कातिलों को मारो | खून की नदियाँ बहा दो मार – मारकर |''[११] 'सबीना के चालीस चोर' कहानी में भी सांप्रदायिकता एवं बंटवारा दिखाई पड़ता है | रंगास्वामी तेजी से बोलते हैं कि ''मैं तो कहता हूँ ... बंट जाने दो इस हिन्दुस्तान को..... यह अखण्डता ही हमारी मुसीबत बन गई है | जब हम साथ रहना नहीं चाहते और सरकार भी दंगों – फसादों की बैसाखी पर खडी है तो फिर यह दिखावा क्यों ? इतिहास को तोड़ते-मरोड़ने की जरूरत क्यों ? इतिहास को ही टुकडों में काटके रख दो ?''[१२] नासिर्रा जी ने न केवल सांप्रदायिकता को उजागर किया, बल्कि उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है | वह लिखती है ''यह जिम्मेदारी देश के जवान माँ – बाप पर है कि वे अपने नये जन्मे बच्चे को ऐसा संस्कार दें, जो वह पहले हिन्दुस्तानी बने बाद में हिन्दू-मुसलमान | इससे दंगे – फसाद खत्म होंगे |''[१३] यदि हम एक दूसरे के धर्म को समझ कर आपस में लड़ना बंद कर दें तो निश्चित रूप से देश प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा |

****

संदर्भ :

1. एक दुनिया समानांतर – राजेन्द्र यादव – पृ – २७
2. डॉ.शशि तिवारी – भारतीय धर्म और संस्कृति – पृ – ४७
3. एक दुनिया समानांतर – राजेन्द्र यादव – पृ – २०
4. गांधी और सांप्रदायिक एकता – सुनील कुमार अग्रवाल – पृ – क्र – viii
5. रुबीना के चालीस चोर – नासिरा शर्मा – पृ -१६०
6. रुबीना के चालीस चोर – नासिरा शर्मा – पृ -१६३
7. इब्ने मरियम – नासिरा शर्मा – पृ – १७
8. रुबीना के चालीस चोर – नासिरा शर्मा – पृ -१८४
9. इंसानी नस्ल – नासिरा शर्मा – पृ – 16
10. खुदा की वापसी – नासिरा शर्मा – पृ – १५२
11. कहानी संग्रह -१ – नासिरा शर्मा – १९७
12. कहानी संग्रह -२ – नासिरा शर्मा – ३५९
13. राष्ट्र और मुसलमान – नासिरा शर्मा – पृ – १७

पैरोल एक सुविधा

(सतना केंद्रीय जेल के संदर्भ में)

डॉ. पूनम शर्मा
अतिथि विद्वान (समाजशास्त्र)
शा.महाविद्यालय जैतपुर,जिला -शहडोल (मध्य -प्रदेश)

पैरोल एक कानूनी सुविधा है जिसका उपयोग दंड और सजा की अवधि के बाद किसी कारागार के दोषी को समाज में पुनः शामिल करने के लिए किया जाता है ।पैरोल का उद्देश्य यह होता है कि यह किसी व्यक्ति को समाज एवं परिवार में जुड़ने का अवसर प्रदान करता है। पैरोल के तहत दोषी को 2 वर्ष के बाद अच्छे आचरण होने पर अस्थाई रूप से रिहा किया जाता है लेकिन वह अपने वास्तविक कार्य और सामाजिक जीवन के कुछ शर्तों का पालन करने के लिए अपनी आदतों में सुधार करते हैं यह शर्तें जैसे -कि वे नियमों और कानून का पालन करें, समाज में अच्छे तरीके से व्यवहार करें और जेल अधिकारियों के साथ साक्षात्कार और प्रगति की रिपोर्ट प्रस्तुत करें जैसे प्रक्रिया में है। पैरोल का उद्देश्य होता है कि परिवार एवं समाज से मिलने की प्रक्रिया को सहयोग और निगरानी के साथ संचालित करना ताकि दोषी बंदी फिर से समाज में सफलता प्राप्त कर सके और समाज की सुरक्षा बनी रहे।। पैरोल की आवश्यकता एक बंदी को क्यों होती है कुछ लोगों का अध्ययन मैंने केंद्रीय जेल सतना से लेने का प्रयास किया जिसमें प्रमुख रूप से कल्याण अधिकारी श्री अनिरुद्ध कुमार तिवारी केंद्रीय जेल सतना ने संक्षेप में जानकारी प्रदान की जो बहुत कारगर सिद्ध हुई इस शोध पत्र को लिखने में इनसे बात करने पर यह ज्ञात होता है कि बंदियों को पैरोल की आवश्यकता क्यों होती है जिसमें यह ज्ञात हुआ कि हम बंदियों को सामाजिक धारा से जोड़ना चाहते हैं। मैंने अन्य अधिकारियों से भी संपर्क किया जो सतना जेल में पदस्थ हैं। जिसको मैं इस शोध पत्र के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हूं। मध्य प्रदेश की जेलें जिनमें दंडित- विचाराधीन बंदी अपने अपराधों की सजा भुगतते हैं। मध्य प्रदेश की जेल सुधारात्मक संस्था भी है। जिनमें बंदियों को विभिन्न प्रशिक्षण ,स्कूल एवं उच्च शिक्षा साथ ही नैतिक शिक्षा प्रदान कर चरित्र सुधार व आत्म निर्भर बनाने का प्रयास किया जाता है इसी क्रम में बंदियों को मध्य प्रदेश शासन द्वारा पेरोल (अवकाश)का लाभ भी दिया जाता है।बंदी वर्षों तक जेल में रहकर अपनी सजा भुगतते हैं जिससे वह अपने परिवार, समाज ,क्षेत्र के रहन-सहन में प्रगतिशील परिवर्तन से अनजान हो जाते हैं ।परिवारजनों से फोन पर बात व सीमित मुलाकात उन्हें कुछ -राहत अवश्य देती है लेकिन समाज व परिवार की बदलती परिस्थितियों से पूर्णतः परिचित नहीं हो पाते हैं ।इसके लिए मध्य प्रदेश शासन ने बंदियों को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए पैरोल (अवकाश)की व्यवस्था की है। बंदी अधिनियम 1985 व मध्य प्रदेश बंदी छुट्टी नियम- 1989 के अनुसार छुट्टी (अवकाश)की व्यवस्था की गई है पैरोल (अवकाश)के लिए मध्य प्रदेश राजपत्र में नियम उल्लेखित किए गए हैं। पैरोल (अवकाश)जिसे अस्थाई मुक्ति अवकाश भी कहा जाता है। यह व्यवस्था सिर्फ दंडित बंदियों के लिए की गई है ।ऐसे दंडित बंदी जिन्हें कम से कम 3 वर्ष की सजा पड़ी हो साथ ही उसने परिहार मिलाकर कम से कम 02 वर्ष की सजा भुगत ली हो तो वह अवकाश के लिए पात्र होंगे । बंदी का जेल में आचरण अच्छा होने पर ही अवकाश संबंधी प्रक्रिया में बंदी का आवेदन लिया जाता है दंडित बंदी को सामान्य /आपात अवस्था अवकाश की पात्रता होती है। सर्वप्रथम

बंदियों का अवकाश आवेदन बंदी के समीप डीएम कार्यालय /जिला मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किया जाता है। जिला मजिस्ट्रेट यदि बंदी का अवकाश प्रकरण अस्वीकृत कर देते हैं तो बंदी पैरोल अपील महानिदेशक जेल द्वारा अवकाश स्वीकृत किया जाता है अन्यथा अस्वीकृत कर दिया जाता है। महानिदेशक जेल मुख्यालय भोपाल से बंदी का अवकाश प्रकरण अस्वीकृत होने पर यदि बंदी चाहे तो अपनी अपील मध्य प्रदेश शासन जेल विभाग को भी प्रेषित कर सकता है। मध्य प्रदेश के अन्य जेलों के साथ ही केंद्रीय जेल सतना में परिरुद्ध बंदी भी पैरोल (अवकाश)का लाभ ले रहे हैं।केंद्रीय जेल सतना में वर्तमान या आज की स्थिति में 1322 पुरुष दण्डित बंदी और 47 महिला दण्डित बंदी परिरूद्ध है इनमें 512 दण्डित पुरुष बंदी और 20 दण्डित महिला बंदी अवकाश का लाभ ले रहे हैं। कुल 532 पैरोल का लाभ ले रहे हैं दण्डित पुरुष या महिला बंदियो में से कुछ ऐसे भी हैं जिनका अन्य प्रकरण लंबित है जिसके कारण ऐसे बंदी अवकाश के लिए पात्र नहीं है ।बंदी वर्ष भर में तीन बार(14+02) अवकाश पर अपने गृह निवास / स्थल जाते हैं अवकाश का उपभोग कर लेने के बाद ये निर्धारित समय पर जेल में वापिस आमद करा देते हैं बंदी पैरोल (अवकाश)का लाभ जमानतदारों की सुपुर्दगी में ही छोड़े जाते हैं विधिवत तहसील कार्यालय से जमानतदारों के 50,000 /-पचास हजार रुपए का बंध पत्र निष्पादित किया जाता है ।बंदी पैरोल के लिए नियुक्त जमानतदार पूर्णत:जिम्मेदार होता है। बंदियों के पैरोल (अवकाश) पर जाने से जेल के वातावरण में बड़ा सुधार देखने को आया है।बंदी अनुशासन में रहकर जेल में अपनी शेष सजा भुगत रहे है । बंदियों के मध्य आपसी मन-मुटाव या अन्य व्यक्ति या क्षेत्रीय कारणों से लड़ाई झगड़ा हो जाता था कभी-कभी गैंगवार जैसी स्थिति भी निर्मित हो जाती थी। पैरोल (अवकाश) जाने से पैरोल पर जाने वाला बंदी ऐसे किसी भी गतिविधि में शामिल नहीं होता है क्योंकि यदि बंदी लड़ाई झगड़े या किसी संदिग्ध स्थिति में पाया जाता है तो उसका पैरोल अवकाश 01 वर्ष के लिए रोक दिया जाता है यदि बहुत ही बड़ा जेल अपराध या (अवकाश) पैरोल में कोई भी अपराध दर्ज हो जाता है तो उस बंदी का पैरोल हमेशा के लिए रोक दिया जाता है। इसलिए जो बंदी(अवकाश)पैरोल का लाभ ले रहे हैं व जेल में रहते हुए किसी भी अपराध में संलग्न नहीं होते हैं लड़ाई -झगड़ा तो दूर वे किसी भी प्रकार की अव्यवस्था में शामिल नहीं होते हैं वरन् जेल की संचालन व्यवस्था में अपना अधिक से अधिक योगदान देते हैं उनके अंदर धैर्य, सहनशीलता और जिम्मेदारी निर्वहन का गुण विकसित होने लगता है। पैरोल का लाभ लेने वाले बंदी अपने परिवार जनों, परिचितों से मिलकर काफी राहत महसूस करते हैं समाज के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से परिचित होते हैं। अवकाश में अवधि में बंदीगण परिवार जनों द्वारा दिए जा रहे रोजगार में हाथ बटाते हैं और परिवार को आर्थिक सहारा देने का पूर्ण प्रयास करते हैं ।अवकाश पर जाने वाले बंधियों की मानसिक कुंठा दूर हो जाती है साथ ही इस वजह से उनके इस वजह शारीरिक विकार भी दूर होने लगते हैं ।उनके जीवन में पश्चाताप का भाव तो आता ही है साथ ही शेष बचे जीवन के लिए मन में उत्साह और उमंग का संचार भी होने लगता है बंदी (अवकाश) पैरोल का लाभ लेने के कारण उनके जीवन व जीवन -स्तर में अकल्पनीय परिवर्तन दिखाई देते हैं। अवकाश या पैरोल का जब अन्य बंदी लाभ लेते हैं तो शेष बचे बंदियों के अंदर भी पैरोल अवकाश पर जाने की लालसा जागृत होती है यह भी वह भी अनुशासन में रहकर जेल की व्यवस्था में सहयोग करते हैं। सारांश यह है कि मध्य प्रदेश शासन द्वारा बंदियों के हितार्थ पैरोल की व्यवस्था की गई है प्रत्येक प्रकार से बंदी हितकारी है। केंद्रीय सतना के पैरोल(अवकाश) जाने वाले बंदियों का नैतिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक चरित्र, विकास हो रहा है ऐसे बंदी आत्मनिर्भरता में भी अग्रसर हो रहे हैं। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है की पैरोल एक सुविधा है जो किसी कारागार से जारी कारागार सजा काट रहे बंदी को उनकी सजा की अवधि के बाद अगर विशेष शर्तों पर विभाग द्वारा दी जाती है जिसका उद्देश्य यह होता है कि कारागार के दोषी व्यक्ति समाज में पुनः समाहित हो सके तथा समाज व परिवार के साथ रह सके पैरोल के अंतर्गत व्यक्ति को को विशेष शर्तों का पालन करना होता है सामाजिक सुधार के कार्यों भागीदारी करना जिससे व्यक्ति फिर से समाज में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सके तथा जीवन में सुधार कर सके।।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची -

मध्य प्रदेश राजपत्र में उल्लेखित नियम
केंद्रीय जेल सतना से मिली जानकारी

कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलांवर होणारा परिणाम : विशेष संदर्भ वाशिम व यवतमाळ जिल्हा

कोमल दिलीपराव पतंगराव
श्री सरस्वती समाजकार्य संशोधन
केंद्र वाशिम, यवतमाळ

डॉ. एस. एन. शिंदे
श्री सरस्वती समाजकार्य संशोधन
केंद्र वाशिम, यवतमाळ

शोध सार -
कौटुंबिक हिंसाचार हि समाजाला लागलेली सर्वात मोठी किड आहे. वर्तमानकाळात सर्वात मोठी समस्या म्हणजे कोणती ? तर कौटुंबिक हिंसा. कौटुंबिक हिंसेत सर्वात जास्त महिलांना बळी पडावे लागते. मग ती महिला सुशिक्षित असो वा असुशिक्षित, ग्रामीण भागातील असो वा शहरी भागातील सर्वच क्षेत्रात आपल्याला मोठ्या प्रमाणात महिलांवर कौटुंबिक अन्याय होतांना दिसून येतात. अपंग महिलांवर मोठ्या प्रमाणात कौटुंबिक हिंसाचार होत आहे. त्या महिला विकलांग असल्यामुळे सासरकडची मंडळी हीन समजतात, तिला वारंवार मारहाण करतात. स्त्रीच्या विकलांगतेमुळे तिचा स्वाभिमान दुखावतात, वारंवार तिचा आत्मविश्वास दुखावतात. तिला कमी लेखतात, महिलांचे संपूर्ण स्वातंत्र्य हिरावून घेतात. अश्यामुळे विकलांग महिला नैराश्याकडे वळतात. किंबहुना आत्महत्या करण्याचा प्रयत्न करतात.
महिला ही सुदृढ असो वा विकलांग असो तिच्या वाट्याला हिंसाचार, अत्याचार, हुंडाबळी या समस्या तोंड आ करून पाहत आहेत. आणि यात निष्पाप महिलांचा बळी जातो. महिलांना विकलांग बनविल्या जाते. ज्या महिला शारीरिक विकलांग असतात. या महिलांना कुटुंबात, समाजात अतिशय खालच्या पातळीचे स्थान दिल्या जाते. ज्यामुळे महिला ह्या कौटुंबिक अत्याचाराच्या शिकार होतांना दिसून येतात. वरील सर्व स्थितीस अनुसरून प्रस्तुत संशोधन कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलांवर होणारा परिणाम यावर आधारीत आहे. (विशेष संदर्भ :- वाशिम व यवतमाळ जिल्हा)

प्रस्तावना :-
विकलांगता ही अशी घटना आहे कि जि जाणीवपूर्वक किंवा हेतुपुरस्पर निर्माण केल्या जात नाही. निसर्गाने सर्वाना समान हक्क, अधिकार दिले आहे. मग एखादी स्त्री किंवा महिला हि जन्मतःच विकलांग असेल तर त्यात त्या महिलेचा काय दोष ?
संपूर्ण जगात महिलांवर अत्याचार होतांना आपल्याला पाहायला, ऐकायला मिळते . परंतु भारतात तर याचे अगदी खराब चित्र पाहायला मिळते. विकलांग महिलेचा आत्मविश्वास खालावलेला असतो. परंतु महिलेच्या शारीरिक विकलांगतेमुळे तिच्यावर मोठ्या प्रमणात शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक अत्याचार होतात. समाजात दिव्यांग महिलांना तुच्छ समजल्या जाते तिला समाजात हिन वागणूक दिल्या जाते. दिव्यांग महिला ही जन्मतःच दुसऱ्यावर अवलंबून असते. पण ति परावलंबी असल्या कारणाने तिच्यावर सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक अत्याचार केल्या जातात. वर्तमान काळात दिव्यांग महिला ह्या उच्च पदावर काम करतांना दिसून येतात. परंतु त्यांच्या वाट्याला घरगुती हिंसा हि दिसूनच येते.
अपंगांचे चे हक्क आणि प्रतिष्ठा जपण्यासाठी आंतरराष्ट्रीय पातळीवर कायदे व त्यांची अंमबलबजावणी केल्या जाते. भारतीय संविधानाने सर्व नागरिकांना न्याय, समानता, स्वातंत्र्य आणि प्रतिष्ठा याचे आश्वासन दिले आहे. घटनेनुसार अपंगांच्या सक्षमीकरनाची जबाबदारी राज्य सरकारवर सोपविण्यात आली आहे.
घटनेच्या २५३ व्या कलमात संघराज्य सूचीतील १३ क्रमांकाच्या मुद्यामध्ये अधिनियमीत केले आहे. की "अपंग व्यक्ती (समान संधी, हक्काची सुरक्षा आणि संपूर्ण सहभाग) कायदा १९९५ नुसार अपंगांना समान संधी मिळेल तसेच राष्ट्र उभारणीच्या कार्यात त्यांचा संपूर्ण सहभाग राहील (भारतीय राज्यघटना) दिव्यांग लोकांना त्रास देणाऱ्या अथवा अपमानास्पद वागणूक देणाऱ्यावर यापुढे ॲट्रॉसिटीचा गुन्हा नोंद होवून त्याकरता दंड ६ महिने ते ५ वर्षापर्यंतची सक्त कारावासाची शिक्षा ठोठावणारा कायदा (द राईटस ऑफ पर्सनल विथ डिसॲबिलिटी ॲक्ट २०१६

व्याख्या :-
दिव्यांग महिला :-
१)ज्या महिलेमध्ये चालण्या बोलण्याची शारीरिक अक्षमता दिसून येते त्या महिलेस दिव्यांग महिला म्हणत्तात.
२)अपंग, विकलांग असे पाहिल्यानंतर आपल्या डोळ्यां समोर हाताने, पायाने, डोळ्याने अपंग, लुळे पांगळे असणाऱ्या महिला म्हणजे दिव्यांग महिला होय.
विकलांग महिलांसोबत दुहेरी भेदभाव होतो. एक तर त्या महिला विकलांग असल्या कारणाने आणि दुसरे महिला असल्यामुळे. त्यावर हिंसाचार, दुर्व्यवहार केल्या जाते. कोणत्याही व्यक्तीला प्राकृतिक रुपानुसार दुर्बल किंवा अक्षम असल्यास समाजाचा व्यवहार त्या व्यक्तीसोबत प्रतिकूल असतो. (रेणू अधलखा २०१०)
महिलांना कुटुंब, समाजाच्या रुढी, प्रथा, जबाबदाऱ्या विकलांग बनवतात. पण त्यातच ती महिला विकलांग असल्यास तिच्यावर मोठ्या प्रमाणात कौटुंबिक अत्याचार होतात. (निरिक मल्होत्रा २००४)
(अनिता घई २००६) भारतामध्ये विकलांग महिलांच्या मुददयावर आवाज उठवून त्यांना सशक्त केल्या जाते.
मिनू भम्बानी (२००३) यांनी **Social Respose to Woman with disability in india** या लेखात त्यांनी बॉलीवूडमधील काही विकलांग महिलांचे अध्ययन केले.
संशोधन पद्धती आणि उद्देश :- प्रस्तुत संशोधन हे वाशिम व यवतमाळ जिल्ह्यातील कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलावरील परिणामावर केंद्रित आहे. प्रस्तुत संशोधन समुपदेशन केंद्रावर नोंदणीकृत अत्याचारग्रस्त विवाहित महिलांपैकी नमुना पद्धती अंतर्गत कोटा नमुना निवड पद्धत वापरून समान प्रतिनिधित्व या तत्वाचा वापर करून २० टक्के म्हणजे ६१९ पिडीत महिलांची निवड करण्यात आली. संशोधन वर्णनात्मक संशोधन आराखड्याचा वापर करण्या आला आहे. सर्वेक्षण पद्धती अध्ययन पूर्ण करण्यासाठी तथ्य संकलन हे ससंरचित मुलाखत अनुसूची द्वारे करण्यात आलेले आहे.

उद्देश :-
१)दिव्यांग महिलांची वैयक्तिक व कौटुंबिक स्थिती अभ्यासणे.
२)कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलांवरील आर्थिक परिणाम अभ्यासणे.
३)कौटुंबिक अत्याचाराचा दिव्यांग महिलांवरील सामाजिक परिणाम अभ्यासणे.
आर्थिक आणि सामाजिक परिणाम :-कौटुंबिक अत्याचारग्रस्त महिलांवरील सामाजिक अत्याचार पाहता त्यांना विविध

आर्थिक आणि सामाजिक समस्यांना सामोरे जावे लागते. त्यांना आर्थिक बाबतीत कुठलेही स्वातंत्र्य नाही. सासरचे लोक पैसे देत नाहीत, त्यांच्या अन्न, वस्त्र,निवारा या गरजा अपूर्ण राहतात.त्याचबरोबर त्यांना समाजिक स्वातंत्र्य नाही. घरातील मंडळी हिनतेची वागणूक देतात. सण-समारंभात सहभागी होवू देत नाहीत. शेजारच्या लोकांना बोलू देत नाहीत. प्रस्तुत संशोधनात सहभागी स्त्रियांना आर्थिक व सामाजिक समस्यांना समोरे जावे लागते का ? याची संपूर्ण माहिती जाणून घेण्यासाठी व परिणाम तपासणच्या प्रक्रियेत १० घटकांचे मिळून एक अनुमापन तंत्र विकसित केले गेले त्यातील प्रत्येकास तीन पर्याय मुळीच नाही, मध्यम, जास्त असे गुण दिले. (आर्थिक सारणी) वारंवार, कधीतरी, कधीच नाही असे गुण दिले. (सामाजिक सारणी)

सारणी १.१ आर्थिक परिणाम

अ. क्र.	वक्तव्ये	मुळीच नाही	मध्यम प्रमाणात	जास्त प्रमाणत	एकूण
१)	आर्थिकखर्च वाढला	१६.१	३२.१	५१.८	१००
२)	पैसे देतात	७३.२	२३.२	३.६	१००
३)	आर्थिक स्वातंत्र्य आहे	६६.०	30.४	३.६	१००
४)	पैशाची चणचण जाणवते	३.६	१७.९	७८.५	१००
५)	गरजा अपूर्ण राहतात	३.६	२१.४	७५.०	१००
६)	आर्थिक स्थिती खालावलेली	३.६	१७.९	७८.५	१००

सारणी क्र . १.१

सारणी क्र.१.१ वरील विविध आर्थिक परीणाम या बद्दलच्या वरील विधानांनवरून आर्थिक खर्च वाढला या विधानाशी १६.१ टक्के उत्तरदाते मुळीच नाही या मताशी सहमत आहेत. ३२.१ टक्के उत्तरदात्ते मध्यम प्रमाणात सहमत आहेत. ५१.८ टक्के उत्तरदाते या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक हिंसाचारामुळे सासरकडची लोक पैसे देतात. या विधानाशी सर्वात जास्त ७३.२ टक्के उत्तरदाते मुळीच नाहीत या मताशी सहमत आहेत २३.२ टक्के उत्तरदाते मध्यम प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत ३.६ टक्के उत्तरदाते जास्त प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक अत्याचारामुळे आर्थिक स्वातंत्र्य आहे या विधानाशी ६६.० टक्के उत्तरदाते मुळीच नाही या मताशी सहमत आहे. **30.**४ टक्के उत्तरदाते मध्यम प्रमाणत या मताशी सहमत आहे. ३.६ टक्के उत्तरदाते जास्त प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत.

सासरकडची मंडळी पैसे देत नसल्यामुळे पैशाची चणचण जाणवते या विधानाशी ३.६ टक्के उत्तरदाते मुळीच नाही या मताशी सहमत आहेत. १७.९ टक्के उत्तरदाते मध्यम प्रमाणत या मताशी सहमत आहेत. ७८.५ टक्के उत्तरदाते जास्त प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत.

कुठल्याही प्रकारचे आर्थिक स्वातंत्र्य नसल्यामुळे गरजा अपूर्ण राहतात. ३.६ टक्के उत्तरदाते मुळीच नाही या मताशी सहमत आहेत. २१.१ टक्के उत्तरदाते मध्यम प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत. ७५.० टक्के म्हणजे सर्वात जास्त उत्तरदाते जास्त प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत.

सासरकडची मंडळी पैसे देत नसल्याकारणाने आर्थिक स्थिती खालावलेली आहे. ३.६ टक्के उत्तरदाते मुळीच नाही या मताशी सहमत आहेत. १७.९ उत्तरदाते टक्के मध्यम प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत. सर्वात जास्त ७८.५ टक्के उत्तरदाते जास्त प्रमाणात या मताशी सहमत आहेत.

सारणी १.2 विविध समाजिक परिणाम

अ. क्र.	वक्तव्ये	वारंवार	कधीतरी	कधीच नाही	एकूण
१)	समाजात दुय्यम वागणूक मिळते	७०.५	२०.५	९	१००
२)	समाजिक सण-समारंभात सहभागी होऊ देतात	९.८	१४.६	७५.६	१००
३)	शेजारी नातेवाईक यांच्याशी बोलू देतात	३.६	१७.९	७८.५	१००
४)	माहेरी जावू देतात	४.२	२१.४	७४.४	१००
५)	हिनतेची वागणूक देतात	७६.४	२०.२	३.४	१००
६)	वारंवार अपमान करतात	७८.५	१७.९	३.६	१००

सारणी क्र.१.२ वरील विविध सामाजिक परिणाम या बद्दलच्या विधानावरून समाजात दुय्यम वागणूक मिळते या विधानाशी ७०.५ टक्के उत्तरदाते वारंवार या मताशी सहमत आहेत २०.५ टक्के उत्तरदाते कधीतरी या मताशी सहमत आहेत ९.० टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक अत्याचारामुळे महिलांना सामाजिक सण-समारंभात सहभागी होवू देतात. या विधानाशी ९.८ टक्के उत्तरददाते वारंवार या मताशी सहमत आहेत. १४.६ टक्के कधीतरी या मताशी सहमत आहेत. सर्वात जास्त ७५.६ टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक अत्याचारामुळे सामाजिक स्वातंत्र्य हिरावून घेतले. शेजारी, नातेवाईक यांच्याशी बोलू देतात. या विधानाशी ३.६ टक्के उत्तरदाते

वारंवार या मताशी सहमत आहेत. १७.९ टक्के उत्तरदाते कधीतरी या मताशी सहमत आहेत. ७८.५ टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत. माहेरी जाऊ दिल्या जाते या मताशी ४.२ टक्के उत्तरदाते वारंवार या मताशी सहमत आहेत.२१.४ टक्के उत्तरदाते कधीतरी या मताशी सहमत आहेत. ७४.४ टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक अत्याचारामुळे सासरकडची मंडळी हिनतेची वागणूक देतात. या विधानाशी ७६.४ टक्के उत्तरदाते वारंवार या मताशी सहमत आहेत. २०.२ टक्के उत्तरदाते कधीतरी या मताशी सहमत आहेत. ३.४ टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत.

कौटुंबिक अत्याचारामुळे उत्तरदात्यांचा वारंवार अपमान करतात. वारंवार अपमान करतात. या विधानाशी ७८.५ टक्के उत्तरदाते वारंवार या मताशी सहमत आहेत. १७.९ टक्के उत्तरदाते कधीतरी या विधानाशी सहमत आहेत. ३.६ टक्के उत्तरदाते कधीच नाही या मताशी सहमत आहेत.

निष्कर्ष :-

सारणी १.१ मधील विश्लेषनावरून असा निष्कर्ष निघतो कि जास्त महिलांना कौटुंबिक अत्याचारामुळे आर्थिक स्वातंत्र्या नाही, पैशाची चणचण जाणवते, आर्थिक गरजा पूर्ण होत नाहीत, दिवसेंदिवस आर्थिक परिस्थिती खालावत आहे. सारणी १.२ मधील विश्लेषना वरून असा निष्कर्ष निघतो की सासरकडची मंडळी समाजात दुय्यम, हीन वागणूक देतात, माहेरी जावू दिल्या जात नाही, वारंवार अपमान करतात. कौटुंबिक अत्याचारामुळे उत्तरदत्याच्या आर्थिक, सामाजिक स्वातंत्र्यावर गदा आली आहे. असे अभ्यासात दिसून येते. दिवसेंदिवस सामाजिक, आर्थिक जीवन खालावत आहे. सारांशत: असे लक्षात येते की कौटुंबिक अत्याचारामुळे दिव्यांग महिलांना आर्थिक आणि सामाजिक समस्यांना मध्यम ते उच्च प्रमाणात समोरे जावे लागत आहे.

****

Bibliography

1. n, K. (1998). Money can't buy me love? Re-evaluating gender, credit and empowerment in rural Bangladesh. Institute of Development Studies.
2. Action, Aid (2003). Just people-nothing special, nothing unusual. Bangalore: Books for Change.
3. Addlakha, R. (December, 2006). Body politics and disabled femininity: perspectives of adolescent girls from Delhi (India). Paper presented at The International Conference on a World in Transition: New challenges to gender justice, Gender and Development Network and Centre for Women's Development Studies, New Delhi, India.
4. Addlakha, R. (2008). Disability, gender and society. Indian journal of gender studies, 15:191-207
5. Albrecht, G.L., Seelman, K. and Bury, M. (Editors). (2001). Handbook of disability studies. London: Sage Publications, Inc.

6.https://www.ijfcm.org/journal-article-file/13600
7.Patil, V. (2020, October). Impact of 'protection of women against domestic violence act', 2006, on domestic violence among ever-married women in India. In APHA's 2020 VIRTUAL Annual Meeting and Expo (Oct. 24-28). APHA.https://apha.confex.com/apha/2020/meetingapi.cgi/Paper/474988?filename=2020 Abstract474988.pdf&template=Word
8.Sihag, R. (2018). Issue of domestic violence in India. Indian Journal of Health & Wellbeing, 9.shorturl.at/LTX56
9.Kumar, A. (2017). Causes of Domestic Violence in a Particular Area. Asian Journal of Research in Social Sciences and Humanities, 7(8), 105-112.
10.https://www.indianjournals.com/ijor.aspx?
11.target=ijor:ajrssh&volume=7&issue=8&article=010
12.Khan ME, Townsend JW, Sinha R, Seema LS. Sexual violence within marriage a case study of rural Uttar Pradesh. IntQ Community Health Educ 2002;21:133- 46.
13. https://mr.vikaspedia.in > social-wel...
14. www.irjmsh.com
15. Patanagrao, K(2023) A study of financial statuse of married women victims of Domestic Violence, Chronicle Of Humanities And Cultural Studies, International Journal.

आधुनिकता के सम्बंध में डॉ. रामविलास की मान्यताएँ

अश्विनी कुमार लाल
शोधार्थी कलकत्ता विश्वविद्यालय
हिंदी विभाग
मो. नं.-8013172069

डॉ.रामविलास शर्मा हिन्दी के उन महत्त्वपूर्ण साहित्येतिहास लेखकों में हैं, जिन्होंने रामचंद्र शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह हिन्दी साहित्येतिहास पर स्वतंत्र रूप से पुस्तकें नहीं लिखी,परंतु उनके विपुल लेखन में साहित्येतिहास के तत्त्व यत्र-तत्र भरे पड़े हैं I उनके चिंतन और लेखन में केवल साहित्येतिहास के तत्त्व ही नहीं मिलते, बल्कि इतिहास-दृष्टि की मौलिक उद्भावनाएँ भी समाहित हैं I

रामविलास शर्मा मूलतः मार्क्सवादी साहित्येतिहासकार हैं, इसीलिए उनके लेखन में मार्क्सवादी चिंतन गंभीरता से उभरकर आता है I यद्यपि उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा का कहीं पर भी अंधानुकरण नहीं किया,बल्कि उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा को भारतीय संदर्भ में व्यख्यायित किया है I इस संदर्भ डॉ. में रवि भूषण लिखते हैं " रामविलास जी ने अनेक स्थलों पर मार्क्स आलोचना की है ..मार्क्स के शब्दों के मंत्र – जाप करने वाले मार्क्सवादियों ने रामविलास जी को संशोधनवादी इसलिए भी कहा है कि उन्होंने मार्क्सवाद के अनेक सैद्धांतिक स्थापनाओं और मान्यताओं का खंडन किया था I रामविलास जी ने स्थापनाओं से अधिक महत्त्व विश्लेषण पद्धति को दिया I "1 डॉ शर्मा के सम्पूर्ण चिंतन के केंद्र में सामन्त विरोधी जनवादी विचारधारा है। उन्होंने इतिहास व साहित्य को परखने एवं मूल्यांकन के लिए प्राच्यवाद एवं उत्तर-औपनिवेशिक दृष्टि का सहारा लिया। यही कारण है कि जहां वे एक ओर उत्तर औपनिवेशिक दृष्टि को केन्द्र में रखकर यूरोप केन्द्रित इतिहास-दृष्टि का खण्डन करते हैं, तो दूसरी ओर प्राच्यवादी दृष्टि को केंद्र में रखकर इतिहास एवं साहित्य को देखने की विशुद्ध भारतीय दृष्टि देते हैं। इन सब के बावजूद हिन्दी साहित्य के सामाजिक आधार, राजनैतिक परिवर्तन, इतिहास के क्रमिक विकास तथा राष्ट्रीय चेतना पर पड़ने वाले साहित्य के प्रभाव को विश्लेषित करते हैं I डॉ. शर्मा का लेखन व्यापक 'कैनवास' को समेटे हुए हैI उनके लेखन में साहित्य, इतिहास,आलोचना से लेकर भाषा - विज्ञान, दर्शन, समाज और राजनीतिके प्रश्नों को गंभीरता से उठाया गया हैI डॉ. शर्मा ने मार्क्सवाद से साहित्य व इतिहास को देखने तथा परखने का दृष्टिकोण तो प्राप्त किया, परंतु उसकी व्याख्या वे भारतीय परिवेश एवं प्रतिमानों के आधार पर करते हैंI यही कारण है कि वे अपने समय के कई मार्क्सवादी लेखकों से भिन्न दिखलाई पड़ते हैं I

1857 की क्रान्ति भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भारत में जिस तरह से अंग्रेजों ने अधिकार किया था, उसे किसी भी तरह से तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता है। अंग्रेज इस समय आधुनिक भाषाओं में जातीय साहित्य की रचना आरम्भ होती है। समाज और साहित्य का आधुनिक काल १२वीं सदी से आरम्भ होता है। सामाजिक स्तर पर इसका लक्षण है। सामन्ती व्यवस्था का विघटन, व्यापारिक पूंजीवाद का विकास, नये सामाजिक -सम्बन्धों का प्रसार; साहित्यिक स्तर पर इसका लक्षण है सामन्त-विरोधी प्रवृत्तियों का उद्भव और प्रसार, नये मानवतावाद की प्रतिष्ठा। १२वीं सदी में शुरू होने वाली यह सामन्त-विरोधी क्रान्ति कई मंज़िलें पार कर चुकी है, पर वह अभी पूर्णत: सम्पन्न नहीं हुई। अंग्रेज़ी राज कायम होने के बाद सामन्त-विरोधी विकास निरंतर अवरुद्ध होता रहा है। भारत में जातियों के पूर्ण गठन और देश को आधुनिक राष्ट्र बनाने की समस्या अब भी बनी हुई है। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत में अभी तक आधुनिक युग की शुरुआत नहीं हुई।"[2]भारत में केवल व्यापार करने के लिए आये थे, लेकिन यहाँ के राज्यों की दलगत राजनीति उन्हें कब्जा करने का मौका देती रही। अंग्रेज अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य में सफल होते गये। उन्होंने जो सन्धियाँ, वादे, इकरारनामें यहाँ किए, उन्हें बराबर तोड़ा और गैरकानूनी, नाजायज तथा अन्यायपूर्ण तरीकों से अपना राज कायम किया। ये अंग्रेज यूरोप में चाहे जितने आधुनिक रहे हों, भारत में अपने औपनिवेशिक स्वार्थ के लिए उन्होंने रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को बढ़ावा दिया। यहाँ के सामंत रूढ़ियों और प्रतिक्रियावाद के गढ़ थे। इन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों की सहायता की। रामविलास शर्मा का आधुनिकता संबंधी विश्लेषण साम्राज्यवाद विरोधी होने के साथ सामंत विरोधी भी है। उन्होंने लिखा हैं " मोटे रूप से १२वीं सदी को नई जातियों के निर्माण का प्रारम्भिक काल मान सकते हैं।

1857 की क्रान्ति निश्चित रूप से एक ओर शोषक अंग्रेजी राज के विरुद्ध जनता का संघर्ष था, तो दूसरी ओर प्रतिक्रियावादी तत्त्वों के विरुद्ध आधुनिकता की लड़ाई थी। भारत के अधिकतर साहित्यकार एवं इतिहासकार भारत में आधुनिक काल का आरम्भ अंग्रेजों के आगमन तथा इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति से जोड़कर देखते हैं। लेकिन खुद अंग्रेजों के यहाँ आधुनिकता का इस मशीनी उत्पाद या औद्योगिक क्रान्ति से कोई संबंध नहीं है। उन्होंने आधुनिकता का सम्बंध जातीय निर्माण और जातीय भाषा के विकास से जोड़ा है I डॉ. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि- "उनकी नई मान्यता यह है कि भारत में पूंजीवाद की आरम्भिक अवस्था

का आरंभ 12 वीं शताब्दी से होता है, यहीं से जातीय निर्माण और जातीय भाषाओँ का विकास भी शुरू होता है,यहीं से भारतीय समाज और भारतीय साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल भी शुरू होता है I"[3] अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिकता का संबंध अंग्रेजी राज और मशीनी उत्पाद से नहीं है तो किस चीज से है? और भारत में इसकी शुरुआत कब से हुई? इस संदर्भ में रामाविलास शर्मा अपना निष्कर्ष यूरोपीय पुनर्जागरण के आधार पर देते हैं, जिसमें आधुनिकता जातीय भाषाओं के अभ्युदय और विकास से संबद्ध है। वे लिखते हैं- "आधुनिकता का आरम्भ जातीय निर्माण प्रक्रिया से मानना चाहिए। उसका एक लक्षण है किसी एक जनपद की भाषा का दूसरे जनपदों में व्यवहार। जिस भाषा और साहित्य के माध्यम से विभिन्न जनपदों के किसान एकताबद्ध होते हैं, उस भाषा और साहित्य को जातीय निर्माण की प्रक्रिया से सम्बद्ध करके देखना चाहिए। हिन्दी प्रदेश में सूरदास और तुलसीदास जैसे कवियों की भूमिका इसी परिप्रेक्ष्य में समझी जा सकती है।"[4]

डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी के उन महत्त्वपूर्ण आलोचकों में हैं, जिन्होंने साहित्येतिहास को नवीन एवं मौलिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया I यही कारण है कि उन्होंने परंपरा से चली आ रही साहित्येतिहास की अवधारणा को चुनौती दिया तथा साहित्येतिहस के नवीन मानदंडों को सबके सामने रखा I बहुत से भारतीय विद्वान,आलोचक आधुनिक काल की शुरुआत 19वीं शताब्दी या उसके बाद से मानते हैं I कुछ आलोचक ऐसे भी हैं जो आधुनिकता की अवधारणा को नवजागरण,पुनर्जागरण एवं स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ कर देखते हैं I यहाँ तक कि आलोचकों का ऐसा भी समुदाय है, जो आधुनिकता का संबंध अंग्रेजी राज से जोड़ कर देखता है I इस तरह के आलोचक यहाँ तक कह देते हैं कि यदि अंग्रेज़ न आए होते तो भारत में आधुनिकता का प्रवेश हुआ ही नहीं होता I ऐसे बुद्धिजीवियों की भारत में एक जमात है,जो अंग्रेजी राज के बिना समाज में परिवर्तन की कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसे बुद्धिजीवी इतिहासकारों की डॉ. शर्मा तीखी आलोचना करते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व आधुनिक काल की शुरुआत हो चुकी थी। वे आधुनिक काल का संबंध व्यापारिक पूंजीवाद से जोड़ कर देखते है, जिसकी शुरुआत 12वीं सदी से हो जाती है I डॉ. शर्मा इस बात से परिचित थे कि अंग्रेजों ने भारत का जितना हित नहीं किया, उससे कहीं ज्यादा अहित किया है। वे लिखते हैं - "भारत में अंग्रेजों ने यहां के व्यापार का नाश करके उद्योगीकरण की जड़ ही काट दी। पहले यहां का माल खरीदकर अपने यहाँ बेचते थे, फिर खुली होड़ के बदले कानून के सहारे यहाँ के व्यापार का गला घोंटने लगे। हिंदस्तान में विलायती माल बिकने लगा तो इसलिए नहीं कि मशीनों से चलने वाले कारखानों के माल से यहाँ के दस्तकारों का बनाया हुआ माल महँगा पड़ता था या होड़ में ठहर न सकता था | ..... इस तरह उन्होंने यहाँ के व्यापार का नाश किया, उद्योगीकरण के लिए व्यापार द्वारा पूँजी जी एकत्र की जाती थी,वह सिलसिला बंद कर दिया, भारतीय बाजार के विकास में बहुत बड़ी रुकावट डाली।"[5] हिन्दी साहित्येतिहास के लेखकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास को मूलतः तीन भागों में बाँट कर देखा (आदि,मध्य और आधुनिक) I परंतु इन तीनों कालों के सामाजिक आधार एवं उसके गठन का विवेचन नहीं किया I इस संदर्भ डॉ. शर्मा लिखते हैं " साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्राचीनकाल,मध्यकाल और आधुनिक काल, इन तीन कालों की चर्चा करता है I इन तीनों कालों में सामाजिक गठन का रूप क्या था, इसका विवेचन नहीं करते।"[6] डॉ. शर्मा की मान्यता है कि भारतीय समाज के इतिहास में वैदिक काल से पहले का काल गण समाजों का काल है, वैदिक काल से 11वीं सदी तक सामंती समाज का काल है और 12 वीं सदी से सामंतवाद के विघटन तथा व्यापारिक पूंजीवाद के उदय के साथ आधुनिक काल आरम्भ होता है। डॉ शर्मा ने आधुनिक जातियों के निर्माण का संबंध आधुनिकता से जोड़कर देखा है। उन्होंने लिखा है कि" व्यापारिक पूंजीवाद का युग आधुनिक जातियों के निर्माण का युग है, व्यापारिक पूंजीवाद की शुरूआत इन जातियों के इतिहास की शुरूआत है। व्यापारिक पूंजीवाद के युग में जो भी साहित्य रचा जाता है, वह आधुनिक काल में रचा हुआ साहित्य है, उसमें प्रवृत्तियां धाराएं जो भी हों।"[7]

डॉ. शर्मा का मानना है कि हिन्दी साहित्येतिहास का नामकरण एवं काल – विभाजन का मूल आधार यूरोप से ग्रहण किया गया है I यही कारण है कि हिन्दी साहित्येतिहास का काल-विभाजन करते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल को मध्यकाल से अलग रखा I इस संदर्भ में डॉ. शर्मा लिखते हैं " यूरोप के इतिहासकार मध्यकाल का व्यवहार सामंती युग के लिए करते हैं I शुक्ल जी का मध्यकाल भी सामंती युग है और उनका आदिकाल भी इसी सामंती युग के अंतर्गत है I तब आदिकाल को मध्यकाल से क्यों अलग रखा जाय ? "[8] इस समस्या का हल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने तरीके से करते है I उन्होंने शुक्ल जी के 'मध्यकाल' को नहीं अपनाया है I यद्यपि जब वे 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (1940) में लिख रहें थे, तब उन्होंने 'मध्यकाल' शब्द का प्रयोग बेकायदे किया था I परंतु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि 'मध्ययुग' शब्द हताश मनोवृत्ति का परिचायक है, तो उन्होंने इस शब्द को बाद में छोड़ दिया I यही कारण है कि उन्होंने जब 'हिन्दी साहित्य : उदद्भव और विकास' लिखा तो 'मध्यकाल' की जगह 'भक्तिकाल' शब्द का प्रयोग किया I 'मध्यकाल' शब्द की व्याख्या करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं " 'मध्ययुग' शब्द का प्रयोग काल के अर्थ में उतना नहीं होता, जितना एक खास प्रकार की 'पतनोन्मुखी और जबदी हुई मनोवृत्ति' के अर्थ में होता है।"[9] यह सच है कि भारत के प्राचीन साहित्य में भी 'मध्यकाल' या 'मध्ययुग' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है I उन्होंने लिखा हैं " 'मध्ययुग' या 'मध्यकाल' शब्द भारतीय भाषाओं में नया ही है। ...इस देश के प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के किसी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। आजकल इस शब्द का प्रयोग एक ऐसे काल के अर्थ

वर्में होने लगा है, जिसमें सामूहिक रूप से मनुष्य एक जबदी हुई स्तब्ध मनोवृति का शिकार हो जाता है I"[10] à आगे योरोपीय मध्यकाल और भारतीय मध्यकाल के बीच बुनियादी पार्थक्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं " वस्तुतः यूरोप के इतिहास में जिस समय मध्ययुग का प्रारभ हुआ उस समय भारतीय इतिहास में नवीन उत्साह और नवीन जोश का उदय हुआ था I संस्कृत भाषा ने नयी शक्ति प्राप्त की और समूचे देश में एक नए ढंग की राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गयी I आज के भारतीय धर्म, समाज, आचार – विचार, क्रिया-कांड सभी विषयों पर इस युग पर अमिट छाप है I इस काल को और चाहे जो कहा जाय, पतनोन्मुखी और जबदी हुई मनोवृत्ति का काल नहीं कहा जा सकता I "[11]

डॉ. शर्मा आधुनिकता की शुरूआत में अंग्रेजी राज की भूमिका को एक सिरे से नकार देते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि यदि अंग्रेज न भी आए होते तब भी आधुनिकता का सूत्रपात अवश्य हुआ होता। यही कारण है कि जहां अधिकतर इतिहासकार आधुनिकता की शुरूआत 19 वीं सदी से मानते हैं ,वही डॉ. शर्मा 12 वीं सदी से आधुनिक - काल की शुरूआत मान लेते हैं। हमारे यहाँ हिन्दी साहित्येतिहास के अंतर्गत जो काल विभाजन हुआ है, वह यूरोप के सैद्धान्तिक ढांचे के आधार पर किया गया है | यद्यपि यूरोप में नवजागरण सर्वप्रथम 14 वीं सदी में, इटली में आया, जहां नये वैज्ञानिक अनुसंधान, नये तकनीक आदि का विकास हुआ।पहली बार यूरोप चर्च के चंगुल से मुक्त हुआ। भारत में यह प्रक्रिया 12 वीं सदी से शुरू हो गई थी। ऐसे में यूरोप के समाज को आधुनिक कहना और भारतीय समाज को मध्यकालीन कहना कहाँ तक उचित है? इस संदर्भ में पुरुषोत्तम अग्रवाल का कथन है - "आरंभिक आधुनिक काल के यूरोप में, 1480 से 1700 के बीच कोई एक लाख औरतें चुड़ैल कह कर सताई गईं और जिंदा जलाई गईं। इस तरह जलाई जाने वाली 'अंतिम चुड़ैलें' होने का 'गौरव' लूथर के जर्मनी की ही हेलेना कर्टिस और एगनेस ओलमंस को प्राप्त हुआ, जिन्हें 1738 में जिन्दा जलाया गया था ।.....मध्यकालीन और आधुनिक केवल समय सूचक शब्द नहीं, मूल्याबोधक 'टर्म्स' भी हैं । आधुनिकता के बाद ही समाज प्रबोधन की दिशा में बढ़ता है । 'आधुनिक' की मूल्यपरक व्यंजना के ही कारण, ऐतिहासिक समकालीनता के बावजूद कबीर मध्यकालीन और लूथर आरंभिक आधुनिक कहलाते हैं | व्यापार के विस्तार, मानवकेंद्रित चिंता और चर्च के प्रति असंतोष के उदय के आधार पर यूरोप में मध्य और आधुनिक काल की संधि - वेला चौदहवीं - पन्द्रहवीं सदी में मानी जाती है। मान्यता यह है कि यूरोप तो मध्यकाल की 'जकड़' से चौदहवीं सदी में ही निकल चला था, जबकि भारत समेत बाकी सारी दुनिया इतिहास की चौदहवीं सदी में तो थीं, लेकिन यूरोप की तरह आरंभिक आधुनिक काल में प्रविष्ट हो जाने के बजाय मध्यकाल में ही ठहरी हुई ।"[12] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जिस यूरोपीय समाज को आधुनिक कहा जाता है, वहां सैकड़ों की संख्या में औरतों को जिंदा जला दिया जाता है, उसी के सामानांतर कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा जैसे कवि मध्यकालीन सामन्तीय रुढियों पर कठाराघात करते हैं | इस संदर्भ में डॉ रामविलास शर्मा का कथन महत्त्वपूर्ण है -"1550 से 1650 ईसवी तक लगभग 100 वर्षों का समय भारत और यूरोप के इतिहास में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है | यही यूरोप का पुनर्जागरण काल है। इटली में माइकेल एंजेलो जैसे शिल्पी और चित्रकार, इंग्लैंड में शेक्सपियर जैसे कवि और नाटककार इसी युग में हुए। सूरदास और तुलसीदास जैसे कवि भी इस युग में हुए और स्थापत्य तथा संगीत में हिंदी प्रदेश की महान उपलब्धियाँ इसी युग की हैं । यूरोप में यह व्यापारिक पूंजीवाद का युग है और भारत में वहां से अधिक विकसित व्यापारिके पूंजीवाद का युग है, इसीलिए यूरोप के व्यापारी भारत का माल खरीदने यहाँ आते हैं और उसे बाहर बेचकर मुनाफा कमाते हैं। उस समय यूरोप में आधुनिक युग शुरू हो गया और हम भारत में अभी मध्य काल में ही थे, ऐसा सोचना गलत है।"[13]

इस प्रकार डॉ रामविलास शर्मा ने बारहवीं सदी में व्यापारी पूंजीवाद की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है। जैसे-जैसे व्यापारिक पूंजीवाद का विकास होता है, वैसे-वैसे जनपदों के बीच का अलगाव भी दर होता चला जाता है। इसके साथ ही समाज का सामंती ढांचा चरमराता भी है। इस संदर्भ में डॉ शर्मा लिखते हैं "११वीं सदी में जनपदों का अलगाव खत्म होने लगता है, जातीय भाषाओं के अभ्युदय के लिए जमीन तैयार होती है। इतिहासकार जिसे मध्य युग की शुरुआत मानते हैं, वह वास्तव में आधुनिक युग की शुरुआत है। इस युग में उत्पादन का पुराना तरीका बना रहता है पर बहुत सा माल उत्पादकों के अपने काम में आने के लिए तैयार नहीं किया जाता वरन् बेचने के लिए तैयार किया जाता है। बिकाऊ माल देश में ही नहीं, विदेश में बेचने के लिए काफी बड़े पैमाने पर तैयार किया जाता है। कारीगरों और व्यापारियों के बड़े वर्ग निर्मित होते हैं।"14 इस प्रकार डॉ शर्मा ने 'आधुनिक काल ' की उस धारणा को एक सिरे से खारिज किया, जो परम्परा से चली आ रही थी।

****

संदर्भ – सूची

1.रविभूषण,रामविलास शर्मा का महत्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण , पृ. 79
2.शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ,2010,पृ. 143
3.डॉ.पाण्डेय मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ,2005 पृष्ठ 170
4.शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ. 53-54
5.शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ – 33
6.शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ - 41 |
7.शर्मा रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, 2017, पृ. 22
8.शर्मा रामविलास, हिंदी जाति का साहित्य , राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली,, पृष्ठ – 139
9.द्विवेदी हजारी प्रसाद, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, , पृ.18
10.वही 12
11.वही 22
12.अग्रवाल पुरुषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली , पृष्ठ - 67 |
13.शर्मा रामविलास , भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, भाग – 1, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली , पृष्ठ – 13 (भूमिका से) |
14.शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृष्ठ 141

An Analytical Study on the Unsegmented Neckband Crimes in India with Particular Reference to Corporate Zones

Abhishek Raizada
[1]Research Scholar, Department of Law, Sunrise University Alwar, Rajasthan, India
Dr. Waseem Ahmad Ansari[2]
[2]Professor, Department of Law, Sunrise University Alwar, Rajasthan, India

Abstract:-Unsegmented neckband crimes, characterized by their discreet and insidious nature, present a complex challenge within the socio-economic fabric of India, particularly within the corporate zones. This study endeavors to explore the dynamics of these crimes within the Indian context, with a specific emphasis on corporate zones, where the convergence of economic activity and organizational structures creates a unique environment for potential exploitation. Drawing upon a multidisciplinary framework encompassing criminology, sociology, and corporate governance literature, this study employs a mixed-methods approach to delve into the intricacies of unsegmented neckband crimes. Through qualitative case studies, interviews, and quantitative analysis, it seeks to achieve a comprehensive understanding of the phenomenon. Key objectives of this study include the identification of prevalent types of unsegmented neckband crimes occurring within Indian corporate zones, an examination of the underlying socio-economic factors contributing to their perpetration, an evaluation of existing legal and regulatory frameworks, an analysis of their impact on corporate entities, and the formulation of recommendations for enhancing preventive measures and response mechanisms.

Keywords: Unsegmented neckband crimes, India, Corporate zones, White-collar crime, Socio-economic factors, Legal frameworks, Prevention strategies, Impact analysis.

Introduction -There are two main types of companies in India's business sector: those that are owned by the government and those that are privately owned. This is because both parts have grown quickly in terms of both people and capital, especially since the early 1970s. The private sector is mostly made up of businesses that directly serve consumers, while the government sector is mostly made up of basic, heavy, and capital-intensive industries. The government sector makes up almost two-thirds of productive industry capital, but it only makes up less than one-third of net value added. This is because of a very basic difference. That's not true for the private industry either. Private sector members don't have more than one goal; a private business organization's only goal is to run as a business, which means making money and providing economic benefits, not helping people in need.

Indian business is about to go through a huge change. Trade-friendly rules and tax cuts have not only made it easier to do business in India, but they have also made it a great place for investors from around the world to put their money. In the last two years, India has moved up 32 spots in the Global Competitiveness Index and is now ranked 39th.It comes in second among its BRICS (Brazil, Russia, India, China, and South Africa) peers, with 28 points, just behind China. The UN Conference on Trade and Development's Global Investment Report 2016 says that India received US$44 billion in foreign direct investment (FDI) in 2015, up from US$35 billion in 2014. This makes it one of the top 10 places in the world to spend.

The business world is focused on making money. Do illegal things like tax evasion, insider trading, fraud, and bribes in order to make money. People from the business world commit crimes because they want to make money. The crimes that firms did brought to mind firms' crimes. Corporate crimes are economic and social offenses. These crimes are also known as "white collar crimes"

E.H. Sutherland came up with the idea of "white collar crime" in 1941. In addition to standard crimes like assault, robbery, sexual assault, murder, rape, kidnapping, and other violent acts, Sutherland said that people from higher social classes also do some antisocial things as part of their job or business. People from the top classes, as Sutherland calls them, include businesspeople as well.

Most developing countries have very high levels of white -collar crime. This is because in these places, state corruption is at its worst. Crimes like these are often linked to government leaders at all levels, from the bottom to the top. Most of the news in India3 is about bank scams, Hawala fraud, computer-generated crimes, crimes in electronic banking, corporate frauds, fake coins and money, doctors and drug companies cheating, business corruption, black money, misappropriation of government funds, match fixing, and other crimes.

Recently, there have been more frauds by business entries. The lies told by corporations will hurt the reputation of a country in a big way. India used to be a big name in IT and information technology, but that image was ruined when Ramalingam Raju of Satyam InfoTech admitted that he lied on the company's books. The

question of the role of accountants, shareholders, and top management has been brought up. It's a nonviolent crime group that wants to make money illegally.These crimes have a direct effect on the economy of the country and the public's trust. As a result, steps must be taken right away to stop, identify, investigate, and prosecute economic crimes so that they happen less often. People don't realize how dangerous white-collar crime is, which makes it hard to get to the bottom of it. It's more important to make people awake. The country's lawmakers need to be informed of how important it is to see that these kinds of high-tech and economic crimes hurt society. A lot of people are not guilty, and they don't realize how much economic crime can affect their lives, finances, companies, families, or privacy. To spot white-collar crime, you need to have a strong background in inspection or accounting. This is because con artists are very smart and can easily control situations.

Review of the Literature-It's helpful to look back at relevant research works in order to see what different researchers have contributed. Many important pieces of writing have been written about the interaction of white collar crimes in corporate sectors by famous lawyers, judges, law professors, and sociologists. These include many books, articles, journals, periodicals, encyclopedias, case comments, and reports that touch on different aspects of the desirability and concept of white collar crime as found by American sociologist Edwin

Sutherland first talked about "white collar" crimes in his 1939 book. Indian lawyers, such as Dr. Manju Koolwal, who study white-collar crime (in India and other countries). So, an attempt has been made to look over the literature that is connected.

Law Commission of India's 29th Report in 1966 to learn more about and study how to analyze India's special laws. Special types of crimes, like white-collar crimes, need special punishments that change the ideas of means rea, the liability of company leaders, and their vicarious liability. Law Commission of India's 47th report from 1972 is being looked over to figure out how liable a company and its leaders are. To understand how new technologies are changing things and how new white-collar crimes are popping up, researchers looked at the Santhanam Committee's study and also looked into socio-economic crimes. White-collar crimes are different because they don't directly hurt one person, but they hurt everyone.

This is usually done to set the scene for a research problem or to find holes and flaws in previous studies that make a new investigation necessary. A review of the writings of well-known experts and previous research shows that the researcher knows what is known and what is still unknown and untested. Many pieces of related literature are read, which helps the researcher avoid doing the same work twice and gives them useful hypotheses and suggestions for further study.

The literature surrounding unsegmented neckband crimes in India, particularly within corporate zones, reflects a growing body of research that underscores the multifaceted nature of this phenomenon and its implications for public safety, economic stability, and regulatory integrity. This review synthesizes key findings and insights from existing scholarly works, empirical studies, and policy documents to elucidate the evolving contours of neckband crimes and inform the analytical framework of this study.

Scope of the Study

The purpose of the study is to take a close look at White Collar Crimes in the business world, using data from main and secondary sources. This study will focus on things like the role of the government, the courts, and different law enforcement agencies in enforcing and putting in place different laws, policies, and rules to fight white-collar crimes in India. Also, they want to look into the responsibility of white-collar crime in India's business world. The study mostly looked at whole papers from the Law Commission of India. It was also meant to look into how white-collar crimes affect people's social, political, and economic growth. The purpose of the study is to test the hypothesis in terms of various legal provisions, policies, and enforcement agencies that deal with white-collar crimes. The researcher wants to find out which measures work best or if a new approach is needed to help India deal with its white-collar crime problem, which affects not only individuals but also society as a whole. There are enough white-collar crimes that break the law. People in the United States think that this kind of crime costs the country as much as $200 billion a year. Because of all the wrongdoing, these kinds of crimes are also on the rise every day in India. People who mostly commit "white-collar" crimes are businesspeople and government workers.

Statement of the Problem

Because corporate crimes are complicated and hard to spot, there aren't enough trials and punishments for white-collar crimes. Crime statistics don't show how common white-collar crimes are because they only look at cases that go to regular criminal courts. In the business world, white-collar crimes are handled by tribunals, administrative boards, and commissions of investigation. It is very hard to investigate white-collar crime in business, and it's also hard for countries to work together to punish white-collar criminals. You also have trouble with foreign cooperation when it comes to white-collar crime and economic crime. When looking into white-collar crimes in the business

world, the following problems come up:

•The first problem with white-collar crime is that there isn't usually a report.

•Reporting white-collar crime is the second problem.

•The third issue with white-collar crime is figuring out who committed the crime and who is responsible when a business is a legal body.

•The fourth problem is that investigators need to have specialized knowledge, training, and experience. • The fifth problem is that suspects' bank accounts are hard to get to and must be kept secret.

Objective of the Study

1.To look into the idea of white-collar crime as it exists today.

2.To look for a number of real-world issues with enforcing and punishing corporate white-collar crimes. A positive study of different laws that are meant to stop corporate white-collar crimes.

3.To find out how different organizations and authorities that deal with anti-white collar crimes work, what their roles are, and what effects they have.

4.To figure out what the Indian judiciary's role is in finding socioeconomic crimes in India.

5.To look into how to make more people aware of how White Collar Crimes are different from other types of crimes and how they affect people.

6.To look at and think about the White Collar Crimes sections in the Civil and Criminal Procedure Act. Indian Law Commission's 29th Report, 1966.

Research gap -Despite the burgeoning literature on cybersecurity, corporate crime, and technological innovations in India, there exists a notable research gap concerning the nuanced dynamics and implications of unsegmented neckband crimes, particularly within corporate zones. The synthesis of existing scholarship reveals several areas where further investigation is warranted to advance understanding and inform strategic interventions:

Lack of Empirical Studies: While anecdotal evidence and case studies abound, there is a paucity of rigorous empirical research examining the prevalence, incidence, and impact of unsegmented neckband crimes in India's corporate landscape. Existing studies often rely on qualitative methodologies or secondary data sources, limiting their ability to provide robust empirical insights into the modus operandi, victim profiles, and economic consequences of neckband crimes. Therefore, there is a pressing need for empirical studies employing quantitative research methods, longitudinal analyses, and comprehensive datasets to elucidate the scope and severity of neckband crimes and facilitate evidence-based policy formulation.

Research hypothesis

Taking into account the problems and goals listed above, the hypothesis that has been made and tried is:

1. The current rules are enough to deal with the problem of white-collar crime in the business world, or they need to be changed.
2. The "MensRea" covers white-collar crimes made by businesses.
3. A company's responsibility for making white-collar crimes, including both legal and illegal ones.
4. What effect does white-collar crime by corporations have on Indian society? Economic, Social, and Political
5. Only the economy affects white-collar crimes in the business world.
6. The Indian government's governing and law enforcement agencies are working together to stop white-collar crimes in the business world.

Research Methodology

This kind of research is only about ideas; it doesn't involve any field or actual studies. Both first-hand and second-hand sources were used to gather the information. The main source is official papers that have been made public, such as reports from the Law Commission of India and a committee set up by the central government, as well as national laws like different acts.

The primary data also includes decisions made by the high court and the Supreme Court of India on different White Collar Crimes (socio-economic crimes) problems.

The secondary sources include books written by national and international legal experts, law journals, articles written by famous people, seminars, workshops, and information found on the internet. The data gathered from these sources was looked at, interpreted, and evaluated in light of the study's research goals and hypothesis. In the conclusion chapter, conclusions and suggestions were made.

a. Type of data

The study only looks at ideas and doesn't involve any field or empirical research. It uses historical, exploratory, and collative methods to come to its findings.

b. Data Sources

With the study's research goals and hypothesis in mind, the data gathered from various sources was looked at, analyzed, and judged. In the last chapter, conclusions were taken and suggestions were made.

- The study is done by gathering both primary and secondary documentary sources.
- Statutes, judicial decisions (reports on judicial decisions), international conventions, and other sources of binding legal authority make up the main source.

Secondary sources include textbooks, books by different authors, magazines, articles, histories, reviews, commentaries, encyclopedias, journals, news papers, information from famous people on the internet, and so on.A variety of books, including e-books, written by Indian and foreign authors, as well as national and international law and IT journals will be

used for this study. For this study, different websites will also be used, such as legal databases like www.archive.org, www.lexisnexis.com, www.westlaw.com, www.heinonline.com, www.jstor.com, Wilson, and others. Also, journals written by professors from different universities and other resource people, like research scholars, on the same topic will be used.

c. Methods used:

The researchers used the following methods: i. the case study method

To do a full study of white-collar crimes in the business world with a focus on India. To look into and think about white-collar crime.

1. Case studies are a deep and detailed way to look at white-collar crimes in the business world.
2. Analysis of the data gathered using the research method

D. Looking at and figuring out the data-The secondary method data was processed so that it would be easy to look at the data in light of the research theory and find the answer to the research problem.

Researchers should look at India's current and past positions and concerns, as well as how the idea of crime has changed over time.

The research's main goals are to look into white-collar crimes in business areas and think critically about them. The researcher looked at the main and secondary sources that were needed to complete the study. They then thought about white-collar crimes, the law, and the current situation and the growth of new socio-economic crimes trends.

Limitations of the Study:-While this analytical study endeavors to provide a comprehensive examination of unsegmented neckband crimes in India with a specific focus on their manifestation within corporate zones, it is essential to acknowledge certain limitations inherent to the research approach and scope of inquiry. These limitations include:

Scope Constraints: The scope of this study is delimited to the examination of unsegmented neckband crimes within the context of corporate zones in India. Consequently, certain dimensions of neckband crimes, such as their impact on non-corporate sectors, individual victims, and critical infrastructure, may receive limited attention. As such, the findings and conclusions derived from this study may not be fully generalizable to other contexts beyond the corporate domain or outside the Indian context.

Data Limitations: The analysis relies on available secondary data sources, including scholarly literature, government reports, and industry publications, to elucidate the dynamics of neckband crimes in India. However, the availability, reliability, and granularity of data pertaining to neckband crimes may vary, thereby constraining the depth and precision of the analysis. Additionally, the absence of comprehensive datasets or longitudinal studies specifically focused on neckband crimes may impede the ability to conduct robust empirical analyses and draw definitive conclusions.

Methodological Constraints: Due to resource constraints and practical considerations, this study primarily adopts a qualitative research approach, drawing upon theoretical frameworks, case studies, and expert insights to analyze the phenomenon of unsegmented neckband crimes.

Conclusion:-Unsegmented neckband crimes pose a significant threat to the integrity and security of corporate zones in India, manifesting in various forms such as fraud, embezzlement, and insider trading. Through the course of this study, several key findings have emerged, shedding light on the intricate dynamics of these crimes and their impact on the corporate landscape. Firstly, it has become evident that the discreet and inconspicuous nature of unsegmented neckband crimes makes them particularly challenging to detect and prevent. Their occurrence within corporate zones is often facilitated by a combination of factors, including lax internal controls, inadequate oversight, and the pressure to meet financial targets. Moreover, socio-economic factors such as economic inequality, organizational culture, and regulatory loopholes contribute to the vulnerability of corporate zones to these crimes. Addressing these underlying issues is crucial for developing effective preventive strategies and fostering a culture of compliance and ethical conduct within corporate entities.

****

Reference

1. Chandrasekhar, R., & Sridhar, V. (2019). "Emerging Cybersecurity Threats and Opportunities: A Perspective from India." Journal of Cybersecurity and Privacy, 5(2), 123-136.
2. Das, A. (2020). "Legal Framework for Cybercrime Prevention and Control in India: A Critical Analysis." Indian Journal of Law and Technology, 12(1), 45-62.
3. Gupta, R. K. (2018). "Corporate Crime and Governance: An Empirical Study in India." Journal of Corporate Law and Governance, 10(3), 211-228.
4. National Cyber Security Coordinator (NCSC). (2021). "Annual Report on Cyber Security Incidents and Trends in India." New Delhi, India: Government of India.
5. Reserve Bank of India (RBI). (2019). "Report on Financial Fraud Trends and Mitigation Measures." Mumbai, India: Reserve Bank of India.
6. Securities and Exchange Board of India (SEBI). (2020). "Annual Report on Securities Market Fraud and Manipulation." Mumbai, India: Securities and Exchange Board of India.
7. Singh, J. P. (2017). "Understanding Organizational Culture and Corporate Misconduct: Insights from India." Journal of Business Ethics, 45(4), 389-402.
8. Srinivasan, K. (2019). "Ethical Leadership and Corporate Integrity: A Comparative Analysis of Indian Corporates." Journal of Business Ethics, 52(1), 75-89.
9. NASSCOM. (2021). "Cybersecurity Insights and Best Practices for Indian Corporates." New Delhi, India: NASSCOM.
10. Patra, S. (2018). "Cybercrime Legislation in India: Challenges and Opportunities." International Journal of Cyber Law and Cyber Warfare, 7(2), 112-125.
11. Kaur, A., & Raghavan, S. (2019). "Understanding the Landscape of Cybersecurity Threats in India: A Review." International Journal of Cybersecurity and Digital Forensics, 8(3), 112-125.
12. Sharma, R., & Kapoor, M. (2020). "Corporate Governance Practices and Fraudulent Activities: Evidence from Indian Corporates." Journal of Corporate Governance, 15(2), 89-104.
13. Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY). (2021). "National Cybersecurity Strategy for India." New Delhi, India: Government of India.
14. Indian Computer Emergency Response Team (CERT-In). (2020). "Annual Report on Cyber Threats and Incidents in India." New Delhi, India: CERT-In.
15. Verma, N., & Jain, S. (2018). "Assessment of Cybersecurity Readiness in Indian Corporate Sector: A Case Study Approach." International Journal of Information Security and Privacy, 7(4), 67-82.
16. Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry (FICCI). (2019). "Cybersecurity Best Practices for Indian Enterprises." New Delhi, India: FICCI.
17. Sen, D., & Mukherjee, S. (2017). "Exploring the Linkages between Corporate Governance Mechanisms and Cybersecurity: A Study of Indian Corporates." Journal of Corporate Governance and Compliance, 11(1), 45-60.
18. Data Security Council of India (DSCI). (2020). "Annual Report on Data Breaches and Privacy Incidents in India." New Delhi, India: DSCI.

वर्ष 01 अक्तूबर से दिसम्बर -2023 ISSN– 2993-4648

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh (RESEARCH ARETE JOURNAL)

प्रधान संपादक -डॉ. एन.पी.प्रजापति त्रैमासिक ऑनलाइन पत्रिका - शोध उत्कर्ष